दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

का० मार्क्स
फ्रे० एंगेल्स

संकलित रचनाएं

तीन खण्डों में

खण्ड ३

भाग १

प्रगति प्रकाशन - मास्को

प्रकाशक की ओर से

इस संग्रह में जो कृतियां शामिल हैं उनका अनुवाद कार्ल मार्क्स और फ़ेडरिक एंगेल्स की संकलित रचनाओं के तीन खण्डों वाले संस्करण (खण्ड ३) के मुताबिक़ किया गया है।

К. МАРКС и Ф. ЭНГЕЛЬС

Избранные произведения

в трёх томах

Том III, часть I

на языке хинди

सोवियत संघ में मुद्रित

$М\frac{10101-78}{014(01)-78}$ 637—77

विषय-सूची

कार्ल मार्क्स

गोथा-कार्यक्रम की आलोचना[1]

फ़्रेडरिक एंगेल्स द्वारा लिखित भूमिका[2]

प्रस्तुत पांडुलिपि – ब्राके के नाम व्याख्या-पत्र और कार्यक्रम के मसविदे की आलोचना – १८७५ में, गोथा की एकता-कांग्रेस[3] के कुछ ही पहले ब्राके के पास गाइब, आयेर, बेबेल तथा लीब्कनेख़्त को भेजने और फिर मार्क्स को वापस करने के लिये भेजी गयी थी। हाल्ले की पार्टी-कांग्रेस[4] ने चूंकि गोथा-कार्यक्रम की बहस को पार्टी की कार्य-सूची में रख लिया है, इसलिये अगर मैं इस बहस से संबद्ध इस महत्त्वपूर्ण – सम्भवतः सबसे महत्त्वपूर्ण – दस्तावेज़ के प्रकाशन में अब तनिक भी विलम्ब करूंगा, तो मेरा ख़याल है कि मैं इसे दबाने का अपराध करूंगा।

लेकिन इस पांडुलिपि का एक और कहीं अधिक दूरव्यापी महत्त्व भी है। इसमें लासाल द्वारा अपने आंदोलन में आरंभ से ही अपनाई नीति के बारे में मार्क्स के दृष्टिकोण को – लासाल के आर्थिक सिद्धांतों तथा उनकी कार्यनीति, दोनों ही के बारे में – पहली बार स्पष्टता और दृढ़ता के साथ प्रस्तुत किया गया है।

जिस निर्ममता के साथ यहां कार्यक्रम के मसविदे की शव-परीक्षा की गयी है, जिस निष्ठुरता के साथ प्राप्त परिणामों का निरूपण और मसविदे की ख़ामियों का अनावरण किया गया है – इस सबसे आज, पंद्रह वर्ष बाद, नाराज़गी पैदा नहीं हो सकती। ठेठ लासालवादी अब विच्छिन्न अवशेषों के रूप में केवल विदेशों में ही मौजूद रह गये हैं, और हाल्ले में गोथा-कार्यक्रम स्वयं अपने जनकों द्वारा भी एकदम अपर्याप्त मान तज दिया गया था।

फिर भी मैंने व्यक्तियों से संबंधित कुछ तीखे वाक्यों और मतों को, जहां इनसे अर्थ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था, निकाल दिया है और उनकी जगह बिंदु लगा दिये हैं। मार्क्स स्वयं भी यदि इस पांडुलिपि को आज प्रकाशित करते,

तो यही करते। कुछ अंशों में भाषा की उग्रता दो परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई थी। पहली बात तो यह कि मार्क्स और मैं किसी भी अन्य आंदोलन की अपेक्षा जर्मन आंदोलन के साथ अधिक घनिष्ठ रूप से संबद्ध रहे थे, इसलिए कार्यक्रम के इस मसविदे द्वारा अभिव्यक्त निश्चितरूपेण उलटे क़दम से हम लोगों का विशेष उद्विग्न होना अनिवार्य था। दूसरे, उस समय – इंटरनेशनल की हेग कांग्रेस[5] के मुश्किल से दो वर्ष बाद ही – हम बाकूनिन और उनके अराजकतावादी अनुयायियों के विरुद्ध, जिन्होंने जर्मनी में मज़दूर आंदोलन में होनेवाली हर चीज़ के लिए हम लोगों को ज़िम्मेदार बना रखा था, प्रचंड संघर्ष में रत थे; इसलिये हम यह अपेक्षा भी करते ही थे कि इस कार्यक्रम को गुप्त जन्म देने का दायित्व भी हम पर ही थोपा जायेगा। ये बातें अब नहीं हैं और इसलिये अब संबंधित अंशों की भी कोई आवश्यकता नहीं है।

प्रेस क़ानून से उत्पन्न कारणों से भी कुछ वाक्यों को केवल बिंदुओं द्वारा ही दर्शाया गया है। जहां कहीं मुझे अपेक्षाकृत नरम भाषा का चयन करना पड़ा है, उसे बड़े कोष्ठकों के भीतर रख दिया गया है। अन्यथा मूलपाठ को शब्दशः प्रकाशित किया गया है।

लंदन, ६ जनवरी १८९१

फ़्रे० एंगेल्स

«Die Neue Zeit», Bd. 1, № 18, 1890—1891 में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

कार्ल मार्क्स

वि० ब्राके के नाम पत्र

लंदन, ५ मई १८७५

प्रिय ब्राके,

एकता-कार्यक्रम के बारे में इन आलोचनात्मक टिप्पणियों को पढ़ने के बाद उन्हें गाइब और आयेर, बेबेल तथा लीब्कनेख़्त के विचारार्थ भेजने का कष्ट करें। मैं अत्यंत व्यस्त हूं और डाक्टर ने मेरे लिए काम करने की जो सीमा बांध रखी है, उसे मैं कभी का पार कर चुका हूं। इसलिये इतना लम्बा खर्रा लिखना कोई "ख़ुशी" का काम न था। तथापि ऐसा करना आवश्यक था, ताकि मेरे द्वारा बाद में उठाये जानेवाले क़दमों को पार्टी में हमारे मित्र गलत न समझें। यह पत्र इन्हीं लोगों के लिये है।

एकता-कांग्रेस के बाद एंगेल्स और मैं इस आशय की एक छोटी-सी घोषणा प्रकाशित कर देंगे कि सिद्धांतों के इस कार्यक्रम से हमारा मत सर्वथा भिन्न है और हमारा इससे कोई सरोकार नहीं है।

ऐसा करना अपरिहार्य है, क्योंकि विदेशों में पार्टी के शत्रुओं द्वारा तत्परतापूर्वक पोषित यह धारणा—एकदम भ्रांत धारणा—प्रचलित है कि हम यहां से तथाकथित आइज़ेनाख़ पार्टी[6] का गुप्त संचालन करते हैं। मिसाल के तौर पर, एक पुस्तक[7] में, जो हाल ही में प्रकाशित हुई है, बाकूनिन मुझे अब भी न केवल इस पार्टी के सभी कार्यक्रमों, आदि के लिये, वरन् जन-पार्टी[8] के साथ अपना सहयोग शुरू करने के दिन से लीब्कनेख़्त द्वारा उठाये हर क़दम के लिये भी, ज़िम्मेदार ठहराते हैं।

इसके अलावा, यह मेरा कर्त्तव्य है कि मैं—कूटनीतिक मौन तक से—ऐसे कार्यक्रम को मान्यता न दूं जो मेरी राय में एक सरासर आपत्तिजनक कार्यक्रम है, जो पार्टी को पस्तहिम्मत करता है।

असली आंदोलन का हर क़दम दर्जनों कार्यक्रमों से अधिक महत्त्वपूर्ण है। इसलिये अगर यह सम्भव नहीं था—और तत्कालीन स्थितियां इसके प्रतिकूल थीं—कि आइज़ेनाख़ कार्यक्रम से आगे बढ़ा जाये, तो बस सामान्य शत्रु के विरुद्ध कार्रवाई के लिये एक समझौता भर कर लेना चाहिये था। लेकिन सिद्धांतों के एक

कार्यक्रम को बनाकर (बजाय इसके कि इसे तब तक के लिये स्थगित कर दिया जाये जब तक कि ख़ासे लंबे समय की संयुक्त कार्रवाई द्वारा इसके लिए ज़मीन तैयार नहीं हो जाती) आप सारी दुनिया के आगे ऐसे मानदंड स्थापित कर देते हैं, जिनसे लोग पार्टी आंदोलन के स्तर को मापते हैं।

लासालवादी नेता इसलिये हमारे पास आये कि परिस्थितियों ने उन्हें आने के लिये मजबूर किया। अगर उन्हें आरम्भ में ही बता दिया जाता कि सिद्धांतों के बारे में कोई सौदेबाज़ी नहीं होगी, तो उन्हें संयुक्त कार्रवाई के लिये कार्यक्रम या संगठन की योजना से ही संतुष्ट होना पड़ता। इसके बजाय आप उन्हें आदेश-पत्रों से लैस होकर आने देते हैं, अपनी ओर से इन आदेश-पत्रों को संगत मानते हैं, और इस प्रकार स्वयं उन लोगों के आगे बिलाशर्त घुटने टेक देते हैं, जिनको स्वयं सहायता की दरकार है और तुर्रा यह कि वे **समझौते की कांग्रेस के पहले** अपनी कांग्रेस कर रहे हैं, जबकि ख़ुद हमारी पार्टी अपनी कांग्रेस post festum* कर रही है। स्पष्टतः मंशा सभी तरह की आलोचना को दबाने और हमारी पार्टी को सोच-विचार का मौक़ा न देने की है। यह सुविदित है कि एकता होने की बात ही मज़दूरों को संतोषजनक लगती है, लेकिन यह विश्वास करना ग़लत है कि इस क्षणिक सफलता को अत्यधिक मूल्य देकर नहीं प्राप्त किया गया है।

अंततः इस बात को भी छोड़ दें कि कार्यक्रम लासालवादी विश्वासों को प्रतिष्ठित करता है, तो भी यह किसी काम का नहीं है।

मैं जल्दी ही 'पूंजी' के फ़्रांसीसी संस्करण के अन्तिम भाग आपके पास भेजूंगा। फ़्रांसीसी सरकार की पाबन्दी के कारण इसकी छपाई का काम एक लम्बे अरसे तक रुका रहा। पुस्तक इस सप्ताह या अगले सप्ताह के आरम्भ में तैयार हो जायेगी। पहले छः भाग आपको मिले कि नहीं? कृपया बर्नहार्ड बेकर का पता लिख भेजें, आख़िरी भाग उनके पास भी भेजने हैं।

«Volksstaat» **प्रकाशनगृह**[9] का रवैया कुछ अजीब ही है। मसलन आज दिन तक कोलोन कम्युनिस्ट मुक़दमे** से सम्बन्धित पुस्तक की एक भी प्रति मेरे पास नहीं भेजी गयी है।

साभिवादन,
आपका **कार्ल मार्क्स**

---

*शब्दशः महफ़िल बिखर जाने के बाद, यानी कुछ देर से। —सं०

**यहां कार्ल मार्क्स की कृति 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन' की ओर संकेत है। —सं०

कार्ल मार्क्स

जर्मन मज़दूर पार्टी के कार्यक्रम पर आलोचनात्मक टिप्पणियां

१

१. "श्रम ही सारी सम्पदा और समस्त संस्कृति का स्रोत है, **और चूंकि** उपयोगी श्रम केवल समाज में और समाज के ज़रिये ही सम्भव है, इसलिए श्रम की आय अक्षुण्ण रूप से समान अधिकार के साथ समाज के सभी सदस्यों की है।"

पैराग्राफ़ का पहला भाग: "श्रम ही सारी सम्पदा और समस्त संस्कृति का स्रोत है।"

सारी सम्पदा का श्रम ही **स्रोत नहीं है। प्रकृति** को भी उपभोग्य मूल्यों का (और भौतिक सम्पदा में और है भी क्या!) श्रम जितना ही स्रोत कहा जा सकता है, जो स्वयं प्रकृति की एक शक्ति – मानव-श्रमशक्ति – की अभिव्यक्ति मात्र है। उपरोक्त वाक्यांश बच्चों की हर प्राथमिक पोथी में मिल जाता है; और जहां तक इसका **आशय** यह है कि श्रम कुछ सामग्रियों और औज़ारों द्वारा किया जाता है, यह सही है। लेकिन एक समाजवादी कार्यक्रम में ऐसे पूंजीवादी वाक्यांशों को चुपचाप उन **परिस्थितियों** पर पर्दा डालने की इजाज़त नहीं दी जा सकती जिनके कारण ही वे अर्थमय बन पाते हैं। और चूंकि आदमी आरम्भ से ही प्रकृति के प्रति, जो श्रम की सभी वस्तुओं और साधनों का आदिस्रोत है, स्वामी जैसा व्यवहार करता है, उसके साथ अपनी सम्पत्ति जैसा व्यवहार करता है, इसलिये उसका श्रम उपभोग्य मूल्यों का, और इस कारण सम्पदा का भी, स्रोत बन जाता है। पूंजीपति अगर झूठें ही श्रम पर **अलौकिक सृजन-शक्ति** का आरोप लगाते हैं तो वे ऐसा सकारण करते हैं, क्योंकि ठीक इसी बात से कि श्रम प्रकृति पर निर्भर होता है, यह बात पैदा होती है कि जिस मनुष्य के पास अपनी श्रम-शक्ति के अलावा और कोई सम्पत्ति नहीं है, उसे समाज और संस्कृति की सभी

अवस्थाओं में दूसरे मनुष्यों का दास होना पड़ेगा, जिन्होंने अपने को श्रम की भौतिक परिस्थितियों का मालिक बना लिया है। वह केवल उनकी आज्ञा से ही काम कर सकता है, इसलिये जी भी वह उनकी आज्ञा से ही सकता है।

चलिये, इस वाक्य को अब ऐसे ही चलता – बल्कि लंगड़ाता – छोड़ दें। इससे किस निष्कर्ष की अपेक्षा की जा सकती थी? प्रकटतः यह कि

"चूंकि श्रम ही सारी सम्पदा का स्रोत है, इसलिये समाज में कोई भी सम्पदा का, श्रम की उपज के अलावा अन्य किसी रूप में, अधिग्रहण नहीं कर सकता। इसलिये, यदि वह स्वयं काम नहीं करता, तो वह दूसरों के श्रम पर जीता है और अपनी संस्कृति भी दूसरों के श्रम की बदौलत प्राप्त करता है।"

इसके बजाय **"और चूंकि"** की शाब्दिक कील द्वारा एक अन्य प्रस्थापना जोड़ दी गयी है, ताकि निष्कर्ष इससे निकाला जाये, न कि पहली से।

पैराग्राफ़ का दूसरा भाग : "उपयोगी श्रम केवल समाज में और समाज के ज़रिये ही सम्भव है।"

पहली प्रस्थापना के अनुसार श्रम ही सारी सम्पदा और समस्त संस्कृति का स्रोत था; इसलिये श्रम के बिना समाज ही सम्भव नहीं है। अब, उल्टे, हम सीखते हैं कि समाज के बिना "उपयोगी" श्रम संभव नहीं है।

बिल्कुल ऐसे ही यह भी कहा जा सकता था कि केवल समाज में ही अनुपयोगी और समाज के लिए हानिकर श्रम तक लाभदायी धंधे की शाखा बन सकता है, कि केवल समाज में ही आदमी काहिल बनकर रह सकता है, आदि आदि। संक्षेप में, मज़े में रूसो की पूरी नक़ल की जा सकती थी।

और "उपयोगी" श्रम है क्या? निश्चित रूप से केवल वह श्रम, जो अपेक्षित उपयोगी परिणाम उत्पन्न करे। एक जंगली आदमी – और वनमानुष की अवस्था से निकलने के बाद मनुष्य जंगली ही था – जो पत्थर से पशु को मारता है, जो फल इकट्ठा करता है, आदि, "उपयोगी" श्रम ही करता है।

तीसरे – निष्कर्ष : "और चूंकि उपयोगी श्रम केवल समाज में और समाज के ज़रिये ही सम्भव है, इसलिये श्रम की आय अक्षुण्ण रूप से समान अधिकार के साथ समाज के सभी सदस्यों की है।"

कितना सुन्दर निष्कर्ष है! अगर उपयोगी श्रम केवल समाज में और समाज के ज़रिये ही सम्भव है, तो श्रम की आय भी समाज की ही है – और उससे हर मजदूर को केवल उतना ही देय होगा जितने की श्रम की "शर्त" – समाज – को क़ायम रखने के लिये आवश्यकता नहीं है।

वास्तव में, किसी एक समय में **विद्यमान हरेक समाज की अवस्था के समर्थकों ने** सदा ही इस प्रस्थापना का इस्तेमाल किया है। सबसे पहले सरकार और उससे जुड़ी हर चीज़ के दावे आते हैं, क्योंकि सामाजिक व्यवस्था को क़ायम रखनेवाला सामाजिक अंग सरकार ही है; इसके बाद भांति-भांति की निजी सम्पत्तियों के दावे आते हैं, क्योंकि निजी सम्पत्ति के विभिन्न प्रकार समाज की आधारशिलायें हैं, आदि। साफ़ है कि ऐसे खोखले फ़िक़रों को मनमाने ढंग से तोड़ा-मरोड़ा जा सकता है।

पैराग्राफ़ के पहले और दूसरे भागों में बोधगम्य सम्बन्ध केवल निम्न शब्दों में हो सकता है:

"श्रम केवल सामाजिक श्रम के रूप में ही", अर्थात् "समाज में और समाज के ज़रिये ही" "सम्पदा और संस्कृति का स्रोत बनता है"।

यह प्रस्थापना निर्विवाद रूप से सही है, क्योंकि यद्यपि विच्छिन्न श्रम (इसकी भौतिक परिस्थितियां पूर्वकल्पित हैं) भी उपभोग्य मूल्य उत्पन्न कर सकता है, पर वह न सम्पदा उत्पन्न कर सकता है, न संस्कृति।

लेकिन इतनी ही निर्विवाद यह दूसरी प्रस्थापना है:

"जिस अनुपात में श्रम का सामाजिक रूप में विकास होता है, और वह इस प्रकार सम्पदा और संस्कृति का एक स्रोत बन जाता है, उसी अनुपात में मज़दूरों के अन्दर दरिद्रता और विपन्नता की, और ग़ैरमज़दूरों में सम्पदा और संस्कृति की वृद्धि होती है।"

यही समस्त इतिहास का आज तक नियम रहा है। इसलिये, "श्रम" और "समाज", आदि के बारे में अस्पष्ट सूक्तियां पेश करने के बजाय यहां जो करने को था, वह यह कि ठोस रूप से यह सिद्ध किया जाये कि वर्तमान पूंजीवादी समाज में अन्ततः वे भौतिक, आदि परिस्थितियां क्योंकर पैदा हो गयी हैं जो मज़दूरों को इस सामाजिक अभिशाप को मिटाने में समर्थ और मिटाने के लिए विवश करती हैं।

तथापि शैली और विषयवस्तु में फूहड़पन से भरा यह सारा पैराग्राफ़ असल में यहां केवल पार्टी की पताका के सिरे पर "श्रम की अक्षुण्ण आय" के लासालवादी मंत्र को नारे के तौर पर अंकित करने के लिये ही है। "श्रम की आय", "समान अधिकार", आदि को मैं बाद में फिर लूंगा, क्योंकि यही चीज़ कुछ भिन्न रूप में आगे भी आती है।

> २. "वर्तमान समाज में श्रम के साधन पूंजीपति वर्ग के इजारे में हैं; मज़दूर वर्ग की तद्जनित परवशता ही दीनता और दासत्व के सभी रूपों का कारण है।"

इंटरनेशनल की नियमावली से उधार लिया यह वाक्य अपने इस "सुधरे" रूप में ग़लत है।

वर्तमान समाज में श्रम के साधन ज़मींदारों **और** पूंजीपतियों के इजारे में हैं (भू-सम्पत्ति की इजारेदारी तो पूंजी की इजारेदारी का आधार भी है)। संबद्ध अंश में इंटरनेशनल की नियमावली इजारेदारों के इस या उस किसी वर्ग का उल्लेख नहीं करती। उसमें **"श्रम के साधनों, अर्थात् जीवन के स्रोतों के इजारे"** की चर्चा है। "जीवन के स्रोतों" के जोड़ने से यह काफ़ी साफ़ हो जाता है कि श्रम के साधनों में भूमि शामिल है।

यह संशोधन इसलिये शामिल किया गया कि लासाल अब सामान्यतः ज्ञात कारणों से **केवल** पूंजीपति वर्ग पर, न कि ज़मींदारों पर, चोट करते थे। इंगलैण्ड में तो पूंजीपति आम तौर पर उस ज़मीन तक का मालिक नहीं होता जिस पर उसका कारख़ाना बना होता है।

> ३. "श्रम का निस्तार श्रम के साधनों को समाज की संयुक्त सम्पत्ति के पद पर आसीन करने और श्रम की आय के उचित वितरण के साथ कुल श्रम के सामूहिक नियमन का तक़ाज़ा करता है।"

"श्रम के साधनों को समाज की संयुक्त सम्पत्ति के पद पर आसीन करने" को स्पष्टतः "समाज की संयुक्त सम्पत्ति में रूपांतरण" कहना चाहिए था, किन्तु यह सरसरी टीका ही है।

"श्रम की आय" क्या है? श्रम की उपज या उसका मूल्य? और अन्तोक्त मामले में यह उपज का कुल मूल्य है या मूल्य का केवल वह अंश, जो श्रम ने उत्पादन के प्रयुक्त साधनों के मूल्य में नया-नया जोड़ा है?

"श्रम की आय" एक अस्पष्ट धारणा है, जिसे लासाल ने निश्चित आर्थिक धारणाओं की जगह रखा है।

"उचित वितरण" क्या है?

क्या पूंजीपति यह दावा नहीं करते कि वर्तमान वितरण "उचित" है? और उत्पादन की वर्तमान पद्धति के आधार पर क्या यह दरअसल एकमात्र "उचित" वितरण नहीं है? आर्थिक सम्बन्ध क्या क़ानूनी धारणाओं से नियमित

होते हैं, या क्या, इसके विपरीत, क़ानूनी सम्बन्ध आर्थिक सम्बन्धों से नहीं पैदा होते हैं? क्या "उचित" वितरण के बारे में समाजवादी संकीर्णतावादियों के भी अत्यन्त ही विपरीत विचार नहीं हैं?

यह समझने के लिये कि इस सम्बन्ध में "उचित" वितरण वाक्यांश का क्या आशय है, हमें पहले पैराग्राफ़ को और इसे एकसाथ लेना चाहिये। अंतोक्त एक ऐसे समाज की पूर्वकल्पना करता है, जिसमें "श्रम के साधन समाज की संयुक्त सम्पत्ति हैं और कुल श्रम का नियमन सामूहिक है", और पहले पैराग्राफ़ से हमें मालूम होता है कि "श्रम की आय अक्षुण्ण रूप से समान अधिकार के साथ समाज के सभी सदस्यों की है"।

"समाज के सभी सदस्यों की"? जो काम नहीं करते, उनकी भी? तो "श्रम की अक्षुण्ण आय" का फिर क्या बच रहता है? समाज के केवल उन सदस्यों की, जो काम करते हैं? तो फिर समाज के सभी सदस्यों के "समान अधिकार" का क्या बचता है?

किन्तु "समाज के सभी सदस्य" और "समान अधिकार" स्पष्टत: कोरे वाग्जाल हैं। बीजरूप बात यह है कि इस कम्युनिस्ट समाज में हर श्रमिक को लासालवादी "श्रम की अक्षुण्ण आय" प्राप्त होनी चाहिये।

आइये, सबसे पहले हम "श्रम की आय" को श्रम द्वारा उत्पन्न उपज के अर्थ में लेते हैं; तब श्रम की सामूहिक आय **कुल सामाजिक उपज** है।

इससे अब इनको निकालना होगा:

पहले, इस्तेमाल कर डाले गये उत्पादन साधनों को बदलने का ख़र्च।

दूसरे, उत्पादन के प्रसार के लिये अतिरिक्त अंश।

तीसरे, दुर्घटनाओं, प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न व्याघातों, आदि के लिये रक्षित या बीमे की निधियां।

"श्रम की अक्षुण्ण आय" से इन कटौतियों को करना एक आर्थिक आवश्यकता है और इनका परिमाण उपलब्ध साधनों और शक्तियों के अनुसार और किसी हद तक सम्भाव्यताओं के आकलन द्वारा निर्धारित होगा, किंतु औचित्य द्वारा ये कटौतियां किसी भी प्रकार गणनीय नहीं हैं।

अब सम्पूर्ण उपज का दूसरा भाग रह जाता है, उपभोग की वस्तुओं का काम देने के लिये।

इसके पहले कि इसका व्यक्तियों में बंटवारा किया जाये, इससे ये कटौतियां और करनी होंगी:

पहली, उत्पादन से अलग प्रशासन का सामान्य खर्च।

यह हिस्सा मौजूदा समाज की तुलना में शुरू से ही काफ़ी ज़्यादा सीमित रहेगा और जिस अनुपात में नया समाज विकास करेगा उसी मात्रा में यह कम होता जायेगा।

दूसरी, जो स्कूलों, स्वास्थ्य-सेवाओं, आदि जैसी **आवश्यकताओं की सामान्य तुष्टि के लिए अपेक्षित है।**

यह हिस्सा मौजूदा समाज की तुलना में शुरू से ही काफ़ी बढ़ जायेगा और जिस अनुपात में नया समाज विकास करेगा उसी मात्रा में यह बढ़ता जायेगा।

तीसरी, काम करने में असमर्थ लोगों, आदि के लिए निधियां, संक्षेप में आज जो तथाकथित सरकारी निर्धन-सहायता में सम्मिलित है, उसके लिये।

अब आकर ही हम "वितरण" पर पहुंचते हैं। लासालवादी प्रभाव के कारण कार्यक्रम केवल इस "वितरण" को ही अपने संकीर्ण ढंग से अपनी दृष्टि में रखता है, अर्थात् हम उपभोग की वस्तुओं के उस भाग पर आते हैं, जो समाज के अलग-अलग उत्पादकों में वितरित किया जाता है।

"श्रम की अक्षुण्ण आय" अब तक अनजाने ही "क्षुण्ण" आय में रूपांतरित हो चुकी है, यद्यपि एक अलग व्यक्ति के नाते उत्पादक जिस मूल्य से वंचित किया गया है, समाज के सदस्य के रूप में वही चीज़ उसे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाती है।

ठीक जिस तरह "श्रम की अक्षुण्ण आय" का वाक्यांश लुप्त हो गया है, उसी तरह अब "श्रम की आय" वाला वाक्यांश भी एकदम ग़ायब हो जाता है।

उत्पादन के साधनों के सामूहिक स्वामित्व पर आधारित सहकारी समाज के भीतर उत्पादक अपनी पैदावारों का विनिमय नहीं करते; इसी तरह यहां पैदावारों में लगा श्रम भी उनके **मूल्य के रूप में**, उनमें निहित भौतिक गुण के रूप में प्रकट नहीं होता, क्योंकि अब, पूंजीवादी समाज के विपरीत, वैयक्तिक श्रम परोक्ष रूप में नहीं, प्रत्युत कुल श्रम के एक संघटक अंग के रूप में प्रत्यक्ष रूप में अवस्थित है। "श्रम की आय" का वाक्यांश, जो अपनी संदिग्धार्थकता के कारण आज भी आपत्तिजनक है, इस प्रकार बिल्कुल ही अर्थहीन बन जाता है।

यहां हमारा वास्ता उस कम्युनिस्ट समाज से नहीं है, जो अपनी ही बुनियादी पर **विकसित** हुआ है, बल्कि, इसके विपरीत, उससे है, जो पूंजीवादी समाज से **उद्भित हो रहा है;** इस कारण जो आर्थिक, नैतिक और बौद्धिक, हर मानी में अभी भी उस पुराने समाज की छापें लिये हुए है, जिसके गर्भ से वह निकला

है। इस प्रकार वैयक्तिक उत्पादक को–कटौतियों के बाद–समाज से ठीक उतना ही वापस मिलता है, जितना कि वह उसे देता है। उसने समाज को जो दिया है, वह श्रम का उसका अपना वैयक्तिक अंश है। मिसाल के तौर पर, सामाजिक काम का दिन वैयक्तिक काम के घंटों का योग है; वैयक्तिक उत्पादक का वैयक्तिक श्रम-काल सामाजिक काम के दिन को अनुदत्त उसका भाग, उसमें उसका अंश है। उसे समाज से एक प्रमाण-पत्र मिलता है कि उसने इतना श्रम प्रदान किया है (आम निधियों के लिये उसके श्रम की कटौती करने के बाद), और इस प्रमाण-पत्र से उसे सामाजिक भण्डार से इतनी ही लागत की उपभोग की वस्तुयें मिल जाती हैं जितनी लागत का श्रम ख़र्च हुआ है। समाज को उसने एक रूप में श्रम की जितनी मात्रा दी है, उतनी ही वह दूसरे रूप में वापस पा जाता है।

प्रकट है कि यहां वही सिद्धांत चलता है, जो मालों के विनिमय को–जहां तक कि यह विनिमय समान मूल्यों का है–नियमित करता है। अन्तर्वस्तु और रूप यहां बदल गये हैं, क्योंकि बदली हुई परिस्थितियों में अपने श्रम के अलावा कोई कुछ दे नहीं सकता और क्योंकि, दूसरी ओर, उपभोग की वैयक्तिक वस्तुओं के सिवा व्यक्तियों के स्वामित्व में और कुछ नहीं जा सकता। किन्तु जहां तक वैयक्तिक उत्पादकों में उपभोग की वस्तुओं के वितरण का सवाल है, यहां माल के तुल्य मूल्यों के विनिमय का सिद्धांत ही चलता है–एक रूप में श्रम की एक मात्रा का दूसरे रूप में श्रम की उतनी ही मात्रा से विनिमय होता है।

इसलिये **समान अधिकार** यहां अब भी सिद्धांत रूप में **पूंजीवादी अधिकार** ही है, यद्यपि सिद्धांत और व्यवहार में अब टकराव नहीं है, जबकि मालों के विनिमय में तुल्य मूल्यों के विनिमय का अस्तित्व केवल **औसत पर**, न कि हर अलग-अलग मामले में है।

इस प्रगति के बावजूद यह **समान अधिकार** अभी भी एक पूंजीवादी परिसीमा में जकड़ा रहता है। उत्पादकों का अधिकार उनके प्रदत्त श्रम का **सानुपातिक** होता है; समानता इसी तथ्य में सन्निहित है कि माप एक **समान मानक**–श्रम–द्वारा की जाती है।

लेकिन एक मनुष्य दूसरे से शारीरिक या मानसिक दृष्टि से श्रेष्ठतर है और इसलिये इतने ही समय में अधिक श्रम का प्रदाय करता है, या वह अधिक समय तक श्रम कर सकता है; और माप का काम देने के लिये श्रम का निर्धारण उसकी अवधि या तीव्रता द्वारा किया जाना चाहिये, अन्यथा वह माप का मानक

नहीं रहता। यह **समान** अधिकार असमान श्रम के लिये एक असमान अधिकार है। यह किन्हीं भी वर्ग-भेदों को नहीं मानता, क्योंकि हर कोई हर किसी की तरह मात्र एक श्रमिक है; किन्तु यह असमान वैयक्तिक सामर्थ्य को, अतः उत्पादक कार्यक्षमता को प्राकृतिक विशेषाधिकारों के रूप में मौन स्वीकृति प्रदान करता है। **इस प्रकार, हर अधिकार की भांति, यह अपने अन्तर्य में असमानता का अधिकार है।** स्वभाव से ही अधिकार की सार्थकता समान मानक के लागू किये जाने में ही हो सकती है; किन्तु असमान व्यक्ति (और यदि वे असमान न हुए होते, तो वे अलग-अलग व्यक्ति न होते) एक समान मानक से केवल वहीं तक मापे जा सकते हैं जहां तक कि उन्हें एक समान दृष्टिकोण में ले आया जाये, उन्हें केवल एक **निश्चित** पहलू से देखा जाये, उदाहरण के लिए, इस मामले में उन्हें **केवल श्रमिक** माना जाता है और उनमें कोई और बात नहीं देखी जाती– अन्य सभी बातों को नजरअंदाज़ कर दिया गया है। इसके अलावा एक श्रमिक शादीशुदा है, तो दूसरा नहीं, एक के दूसरे से ज़्यादा बच्चे हैं, आदि आदि। इस प्रकार, समान श्रम के निष्पादन और फलस्वरूप सामाजिक उपभोग-निधि में समान अंश से एक को वास्तव में दूसरे से अधिक प्राप्त होगा, एक दूसरे की अपेक्षा अधिक धनी होगा, आदि आदि। इन सब दोषों से बचने के लिए अधिकार को समान के बजाय असमान रखना होगा।

किंतु कम्युनिस्ट समाज की पहली अवस्था में इन दोषों का होना अनिवार्य है, क्योंकि यह वह समय है जब वह पूंजीवादी समाज से दीर्घकालीन प्रसववेदना के बाद अभी-अभी उत्पन्न हुआ है। अधिकार कभी भी समाज के आर्थिक ढांचे और उसके द्वारा निर्धारित सांस्कृतिक विकास से ऊंचा नहीं हो सकता।

कम्युनिस्ट समाज की उच्चतर अवस्था में, व्यक्ति की श्रम-विभाजन के प्रति दासत्वपूर्ण अधीनता और उसी के साथ-साथ मानसिक तथा शारीरिक श्रम के अंतर्विरोध का लोप हो जाने के बाद, श्रम के जीवन के मात्र एक साधन ही नहीं, प्रत्युत जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता बन चुकने के बाद; व्यक्ति के सर्वांगिण विकास के साथ-साथ उत्पादक शक्तियों के भी बढ़ जाने, और सामाजिक संपदा के सभी स्रोतों के अधिक वेग से प्रवहमान होने के बाद–इनके बाद ही कहीं जाकर पूंजीवादी अधिकार के संकीर्ण क्षितिज को पूर्णतः लांघा जा सकेगा और समाज अपनी पताका पर अंकित कर सकेगा: "प्रत्येक से उसकी क्षमतानुसार, प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार!"

मैंने एक ओर "श्रम की अक्षुण्ण आय" और दूसरी ओर "समान अधिकार"

तथा "उचित वितरण" को यह दिखलाने के लिए अधिक विस्तार के साथ लिया है कि एक ओर तो हमारी पार्टी पर जड़सूत्रों के रूप में ऐसे मतों को, जो किसी समय कुछ मानी रखते थे, लेकिन जो अब लुप्त-प्रयोग लफ़्ज़ी कूड़ा बनकर रह गये हैं, फिर थोपने की कोशिश करना, और दूसरी ओर, जनवादियों तथा फ्रांसीसी समाजवादियों में अत्यंत प्रचलित विचारधारात्मक तथा अधिकार-संबंधी और अन्य निरर्थक बातों के ज़रिये उस यथार्थवादी दृष्टिकोण को, जिसे पार्टी में आरोपित करने के लिए इतना अधिक प्रयास करना पड़ा था, मगर जिसने अब उसमें जड़ जमा ली है, फिर विकृत करना कितना बड़ा अपराध है।

अब तक किये गये इस विश्लेषण से एकदम अलग भी तथाकथित **वितरण** के बारे में होहल्ला करना और उसी पर ख़ास ज़ोर देना सामान्यरूपेण भी ग़लत था।

किसी भी समय उपभोग की वस्तुओं का वितरण स्वयं उत्पादन की परिस्थितियों के वितरण का एक परिणाम मात्र है। किन्तु अंतोक्त का वितरण स्वयं उत्पादन पद्धति का एक लक्षण है। मिसाल के तौर पर, उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति इस तथ्य पर आधारित है कि उत्पादन की भौतिक परिस्थितियां, पूंजी तथा भूमि की संपत्ति के रूप में, अश्रमिकों के हाथों में हैं, जबकि जनसाधारण केवल उत्पादन की व्यक्तिगत परिस्थिति – श्रम-शक्ति – के मालिक हैं। यदि उत्पादन के तत्वों का वितरण इसी तरह का है, तो उपभोग की वस्तुओं का वर्तमान वितरण इसका स्वतः उत्पन्न परिणाम है। यदि उत्पादन की भौतिक परिस्थितियां स्वयं श्रमिकों की सामूहिक संपत्ति हैं, तो परिणामस्वरूप उपभोग की वस्तुओं का वर्तमान से भिन्न वितरण भी उत्पन्न होगा। कुत्सित समाजवाद ने (और अपनी बारी में इससे जनवाद के एक भाग ने) वितरण को उत्पादन पद्धति से स्वतंत्र समझने और उसकी विवेचना करने का तरीक़ा पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों से ग्रहण कर लिया है; और इसीलिए समाजवाद को मुख्यतः वितरण से संबंधित बताकर पेश किया जा रहा है। वास्तविक संबंध को बहुत पहले ही स्पष्ट कर दिये जाने के बाद फिर क्यों पीछे लौटा जाये?

> ४. "श्रम का निस्तार मज़दूर वर्ग का ही कार्य होना चाहिए, जिसकी तुलना में अन्य सभी वर्ग **केवल एक प्रतिक्रियावादी समूह** हैं।"

दोहे का पहला छंद तो इंटरनेशनल की नियमावली के आरम्भ के शब्दों से लिया गया, पर "सुधारा गया" है। वहां यह कहा गया है: "मज़दूर वर्ग का

निस्तार स्वयं मज़दूरों का ही काम होना चाहिए"*; यहां इसके विपरीत, "मज़दूर वर्ग" को निस्तार करना है, किस का? – "श्रम" का। जिसके पल्ले पड़े, सो समझे इसे!

बराबरी पर लाने के लिए दोहांतक, इसके विपरीत, पहले दर्जे का लासालवादी उद्धरण है: "जिसकी (मज़दूर वर्ग की) तुलना में अन्य सभी **वर्ग केवल एक प्रतिक्रियावादी समूह** हैं"।

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में कहा गया है: "पूंजीपति वर्ग के मुक़ाबले में आज जितने भी वर्ग खड़े हैं उन सब में सर्वहारा ही **वास्तव में क्रान्तिकारी वर्ग** है। दूसरे वर्ग आधुनिक उद्योग के समक्ष ह्रासोन्मुख होकर अन्ततः विलुप्त हो जाते हैं; सर्वहारा वर्ग ही उसकी मौलिक और विशिष्ट उपज है।"**

पूंजीपति वर्ग की कल्पना यहां बड़े पैमाने के उद्योग के वाहक रूप में सामंती जागीरदारों और निम्न-मध्यम वर्ग की तुलना में, जो उन सभी सामाजिक स्थितियों को बरक़रार रखने के इच्छुक हैं जो लुप्त-प्रयोग उत्पादन पद्धतियों की उपज हैं, एक क्रांतिकारी वर्ग के रूप में की गई है। इस प्रकार **पूंजीपति वर्ग सहित** वे केवल एक प्रतिक्रियावादी समूह का निर्माण नहीं करते।

दूसरी ओर, सर्वहारा पूंजीपति वर्ग की तुलना में क्रान्तिकारी है, क्योंकि बड़े पैमाने के उद्योग के आधार पर स्वयं विकसित होने के बाद यह उत्पादन से उस पूंजीवादी चरित्र को दूर करने का यत्न करता है, जिसे पूंजीपति वर्ग चिरंतन बनाना चाहता है। किंतु 'घोषणापत्र' में यह भी कहा गया है कि "सर्वहारा में आसन्न रूपांतरण को देखते हुए" "निम्न-मध्यम वर्ग" क्रांतिकारी बन रहा है।

अतः इस दृष्टि से यह कहना भी बकवास है कि पूंजीपति वर्ग सहित, और यही नहीं, बल्कि सामंती जागीरदारों के साथ-साथ यह निम्न-मध्यम वर्ग मज़दूर वर्ग की तुलना में "केवल एक प्रतिक्रियावादी समूह है"।

क्या किसी ने गत चुनावों के दौरान दस्तकारों, छोटे उद्योगपतियों, आदि तथा **किसानों** से यह कहा है: "हमारी तुलना में तुम, पूंजीपति वर्ग तथा सामंती जागीरदारों सहित, केवल एक प्रतिक्रियावादी समूह हो"?

लासाल को 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' ज़बानी याद था, जैसे कि उनके

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १। – **सं०**

** देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। – **सं०**

निष्ठावान् चेलों को उनकी दिव्य-वार्ताएं याद हैं। इसलिए अगर उन्होंने इसे इस बुरी तरह झुठलाया है, तो यह केवल पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध निरंकुशतावादी और सामंत विरोधियों के साथ गठबंधन पर अच्छा मुलम्मा चढ़ाने के लिए ही हुआ है।

इसके अलावा, उपरोक्त पैराग्राफ़ में लासाल की देववाणी को इंटरनेशनल की नियमावली के विकृत उद्धरण के साथ किसी संबंध के बिना ही बलात् घसीट लिया गया है। इस तरह यहां यह एक साफ़ बेहूदगी है, एक ऐसी टुच्ची अशिष्टता, जिसमें बर्लिन का मारात* माहिर है और जो बिस्मार्क महोदय को तनिक भी नागवार न मालूम होगी।

> ५. "मज़दूर वर्ग सबसे पहले **वर्तमान जातीय राज्य** के ढांचे के भीतर यह जानते हुए अपने निस्तार का प्रयास करता है कि उसके प्रयत्नों का – जो सभी सभ्य देशों के मज़दूरों के लिए एकसमान हैं – अनिवार्य परिणाम जनगण का अंतर्राष्ट्रीय भाईचारा होगा।"

'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' और समस्त पूर्ववर्ती समाजवाद के विपरीत, लासाल ने मज़दूर आंदोलन की संकीर्णतम जातीय दृष्टिकोण से कल्पना की। इसमें उन्हीं का – और सो भी इंटरनेशनल के काम के बाद! – अनुकरण किया जा रहा है।

यह तो पूर्णतः स्वयं सिद्ध है कि लड़ पाने के लिए मज़दूर वर्ग को अपने को अपने यहां **एक वर्ग के रूप में** संगठित करना होगा और यह कि तत्काल उसका अपना देश ही उसके संघर्ष का मंच है। यहां तक उसका वर्ग-संघर्ष जातीय है – अपने अन्तर्य की दृष्टि से नहीं, प्रत्युत जैसा कि 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में कहा गया है, "रूप" की दृष्टि से। किन्तु "वर्तमान जातीय राज्य का ढांचा", मिसाल के तौर पर जर्मन साम्राज्य, स्वयं आर्थिक रूप से "विश्व-मंडी के ढांचे के भीतर" और राजनीतिक रूप से "राज्यों की प्रणाली के ढांचे के भीतर" है। हर व्यापारी जानता है कि जर्मन व्यापार साथ-साथ वैदेशिक व्यापार भी है और बिस्मार्क महोदय का बड़प्पन, सच पूछिये, तो निश्चित रूप से इसी बात में सन्निहित है कि वह एक तरह की **अन्तर्राष्ट्रीय** नीति पर चलते हैं।

और जर्मन मज़दूर पार्टी अपने अंतर्राष्ट्रीयतावाद को संकुचित कर उसे किस

---

* सम्भवत: *«Neuer Social-Demokrat»* समाचारपत्र के सम्पादक वि० हैस्सेलमैन। – सं०

चीज़ में बदल डालती है? इस बात की चेतना में कि उसके प्रयत्नों का परिणाम "**जनगण का अन्तर्राष्ट्रीय भाईचारा**" होगा। यह पूंजीवादी शांति तथा स्वतंत्रता लीग[10] से इस इरादे से लिया गया एक नारा है कि उसे शासक वर्गों और उनकी सरकारों के विरुद्ध संयुक्त संघर्ष में मेहनतकश वर्गों के अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे की बराबरी पर रख दिया जाये। सो – जर्मन मज़दूर वर्ग के **अन्तर्राष्ट्रीय कामों** के बारे में एक शब्द भी नहीं! और इस तरीक़े से यह पार्टी अपने ही पूंजीपति वर्ग से – जो उसके विरुद्ध पहले ही अन्य सभी देशों के पूंजीपतियों के साथ भाईचारे के सूत्र से बंधा हुआ है – और बिस्मार्क की षड्यंत्रकारी अंतर्राष्ट्रीय नीति से लोहा लेगी!

वस्तुतः कार्यक्रम का अंतर्राष्ट्रीयतावाद तो मुक्त व्यापार पार्टी के अंतर्राष्ट्रीयतावाद से भी **कहीं नीचे स्तर का** है। इस पार्टी का भी दावा है कि उसके प्रयत्नों का नतीजा "जनगण का अंतर्राष्ट्रीय भाईचारा" होगा। लेकिन यह व्यापार को अंतर्राष्ट्रीय रूप देने के लिए भी कुछ **करती है** और किसी भी तरह इस चेतना मात्र से अपने को संतुष्ट नहीं करती कि सभी जनगण अपने-अपने देश में व्यापार कर रहे हैं।

मेहनतकश वर्गों का अंतर्राष्ट्रीय क्रिया-कलाप '**अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ**' के अस्तित्व पर किसी भी तरह निर्भर नहीं है। यह इस क्रिया-कलाप के लिए एक केंद्रीय निकाय बनाने का केवल पहला प्रयास – जो प्रेरणा उसने दी है उसे देखते हुए स्थायी रूप से सफल प्रयास – था, पर जो **अपने पहले ऐतिहासिक रूप** में पेरिस कम्यून[11] के पतन के बाद साध्य नहीं रहा था।

बिस्मार्क के «*Norddeutsche*» को अपने मालिक के लिए यह परम संतोषदायी घोषणा करने का पूरा अधिकार था कि नये कार्यक्रम में जर्मन मज़दूर पार्टी ने अंतर्राष्ट्रीयतावाद को तिलांजलि दे दी है[12]।

२

"इन आधारभूत सिद्धांतों पर चलते हुए जर्मन मज़दूर पार्टी सभी वैध साधनों द्वारा **स्वतंत्र राज्य – और –** समाजवादी समाज के लिए, मज़दूरी के **लौह नियम सहित** मज़दूरी-प्रणाली – और – हर प्रकार के शोषण के उन्मूलन, समस्त सामाजिक तथा राजनीतिक असमानता के निराकरण के लिए संघर्ष करती है।"

"स्वतंत्र" राज्य को मैं बाद में लूंगा।

तो, भविष्य में जर्मन मज़दूर पार्टी को लासाल के "मज़दूरी के लौह नियम" में विश्वास करना होगा! इसलिए कि बात भुला न दी जाये, "मज़दूरी के लौह नियम **सहित** मज़दूरी-प्रणाली के उन्मूलन" (इसे होना यह चाहिए: उजरती श्रम की प्रणाली) की बकवास की गयी है। अगर मैं उजरती श्रम की प्रणाली का उन्मूलन कर देता हूं, तो क़ुदरती तौर पर मैं उसके नियमों का भी उन्मूलन कर देता हूं, फिर चाहे वे "लोहे" के हों या रबड़ के। किन्तु उजरती श्रम की प्रणाली के विरुद्ध लासाल का संघर्ष लगभग संपूर्णतः इस तथाकथित नियम पर ही टिका हुआ है। इसलिए, यह सिद्ध करने के लिए कि लासाल का पंथ जीत गया है, "मज़दूरी-प्रणाली" का "मज़दूरी के लौह नियम **सहित**" उन्मूलन करना होगा – उसके बिना नहीं।

यह जानी हुई बात है कि "मज़दूरी के लौह नियम" में लासाल का अपना मात्र एक शब्द "लौह" है, जो गेटे के "विराट् शाश्वत लौह नियमों" से उधार लिया गया है*। **"लौह"** शब्द एक लेबल है, जिससे सच्चे भक्त एक दूसरे को पहचानते हैं। लेकिन अगर मैं इस नियम को लासाल की मुहर के ही साथ और फलतः उनके ही अर्थ में लूं, तो मुझे इसे उनकी व्याख्या के साथ भी लेना होगा। और वह क्या है? जैसा कि लासाल की मृत्यु के कुछ ही बाद लांगे दर्शा चुके हैं, यह है माल्थस का जनसंख्या का सिद्धांत (स्वयं लांगे द्वारा प्रचारित)। लेकिन अगर यह सिद्धांत सही है, तो फिर चाहे मैं उजरती श्रम का सौ बार भी ख़ात्मा कर दूं, फिर भी मैं इस लौह नियम का उन्मूलन **नहीं** कर सकता, क्योंकि तब यह नियम न केवल उजरती श्रम की प्रणाली को ही, वरन् **प्रत्येक** सामाजिक प्रणाली को नियंत्रित करता है। सीधे इसी के आधार पर अर्थशास्त्री पचास वर्ष से अधिक से यह सिद्ध करने में लगे हुए हैं कि समाजवाद ग़रीबी का उन्मूलन नहीं कर सकता, **जिसका मूल प्रकृति में है,** वरन् उसे केवल **व्यापक** कर सकता है, समाज के संपूर्ण तल पर एकसाथ वितरित कर सकता है!

लेकिन यह सब मुद्दे की बात नहीं है। नियम के इस **मिथ्या** लासालवादी निरूपण से **एकदम अलग** सचमुच में जो निर्लज्जतापूर्ण प्रतिगमन हुआ है वह इसमें हुआ है:

---

* गेटे की 'दिव्य' शीर्षक कविता से। – **सं०**

लासाल की मृत्यु के बाद से **हमारी** पार्टी में यह वैज्ञानिक समझ प्रस्थापित हुई है कि **मज़दूरी** वह **नहीं** है, जैसी कि वह **प्रतीत** होती है, यानी वह **श्रम का मूल्य** या **दाम** नहीं है, वरन् **श्रम-शक्ति के मूल्य** या **दाम** का एक प्रच्छन्न रूप मात्र है। इससे मज़दूरी की अब तक की पूंजीवादी धारणा और इसके साथ-साथ इस धारणा के विरुद्ध अब तक होनेवाली सारी आलोचना भी सदा के लिए उलट दी गयी और यह स्पष्ट हो गया कि मज़दूर को अपनी ख़ुद की गुज़र के लिए काम करने की, अर्थात् **जीने** की छूट केवल वहीं तक है जहां तक कि वह पूंजीपति के लिए (फलतः अतिरिक्त मूल्य के उसके सह-उपभोक्ताओं के लिए भी) कुछ समय फोकट काम करता है; कि समूची पूंजीवादी उत्पादन पद्धति काम के दिन की वृद्धि द्वारा, या श्रम की उत्पादकता के विकास द्वारा, या श्रम-शक्ति की तीव्रता की वृद्धि, आदि के द्वारा इस फोकट श्रम की वृद्धि पर ही आधारित है; कि इसके फलस्वरूप, उजरती श्रम की प्रणाली दासता की प्रणाली है, और दरअसल ऐसी दासता की जो श्रम की सामाजिक उत्पादक शक्तियों के विकास के साथ-साथ कठोरतर होती जाती है—श्रमिक को वेतन चाहे ज़्यादा मिले या कम। और हमारी पार्टी में इस समझ के अधिकाधिक पुख़्ता हो जाने के बाद फिर लासाल के मतों पर आया जाता है, यद्यपि यह ज्ञात होगा कि लासाल को **यह समझ नहीं थी** कि मज़दूरी क्या चीज़ है, बल्कि उन्होंने पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों के रास्ते पर चलते हुए प्रतीयमान रूप को ही सार समझ लिया था।

यह तो ऐसे ही हुआ जैसे उन ग़ुलामों में, जिन्होंने अंततः ग़ुलामी के रहस्य को जान लिया है और बग़ावत कर दी है, अब भी पुरानी धारणा से बंधा कोई ग़ुलाम विद्रोह के कार्यक्रम में अंकित कर दे: दासता का अंत हो, क्योंकि दास-प्रथा में दासों की ख़ुराक एक निश्चित अधिकतम स्तर से, जो बहुत कम है, ज़्यादा नहीं हो सकती।

मात्र यही तथ्य कि हमारी पार्टी के प्रतिनिधि उस समझ पर ऐसा भयानक हमला करने का अपराध कर सके जो हमारी पार्टी के सदस्यों में फैल चुकी है, क्या स्वयं सिद्ध नहीं कर देता कि समझौते के इस कार्यक्रम को रचकर उन्होंने कितने आपराधिक हलकेपन और कितनी निर्लज्जता का काम किया है!

पैराग्राफ़ के अनिश्चित अंतिम वाक्यांश "समस्त सामाजिक तथा राजनीतिक असमानता के निराकरण" के बजाय यह कहा जाना चाहिए था कि वर्ग-विभेदों के उन्मूलन के साथ तद्जनित समस्त सामाजिक तथा राजनीतिक असमानता स्वयं लुप्त हो जायेगी।

३

"**सामाजिक प्रश्न के हल का पथ प्रशस्त करने** के लिए जर्मन मज़दूर पार्टी **मेहनतकश जनता के जनवादी नियंत्रण में राजकीय सहायता** से उत्पादकों की सहकारी समितियों की स्थापना की मांग करती है। उद्योग तथा कृषि के लिए उत्पादकों की सहकारी समितियां ऐसे पैमाने पर **स्थापित की जानी चाहिये कि उनसे समग्र श्रम का समाजवादी संगठन उत्पन्न हो जाये।**"
लासालवादी "मज़दूरी के लौह नियम" के बाद उसी पैग़म्बर का उपचार!

इसका पथ भी इसके अनुरूप ही "प्रशस्त" किया जाता है। विद्यमान वर्ग-संघर्ष के स्थान पर आता है अख़बारी क़लमघिस्सुओं का मुहावरा "सामाजिक **प्रश्न**", जिसके "**हल**" का "पथ प्रशस्त किया जाता" है। समाज के रूपांतरण की क्रांतिकारी प्रक्रिया से उद्भूत होने के बजाय "समग्र श्रम का समाजवादी संगठन" उत्पादकों की उन सहकारी समितियों को दी जानेवाली "राजकीय सहायता" से उत्पन्न होता है," जिन्हें श्रमिक नहीं, **राज्य "स्थापित करता है"**। यह लासाल की कल्पना के ही अनुरूप है कि राजकीय ऋणों से बिल्कुल एक नई रेलवे लाइन की ही तरह एक नये समाज का भी निर्माण किया जा सकता है!

थोड़ी-सी हया बच रहने के कारण "राजकीय सहायता" को "मेहनतकश जनता" के जनवादी नियंत्रण में रख दिया गया है।

पहली बात तो यह है कि जर्मनी में "मेहनतकश जनता" का अधिकतर भाग किसानों का है, न कि सर्वहारा का।

दूसरे, "जनवादी" का जर्मन भाषा में अर्थ "volksherrschaftlich" ("जनता के शासन द्वारा") है। लेकिन "मेहनतकश जनता के जन-शासन द्वारा नियंत्रण" का क्या अर्थ है? और विशेषकर ऐसी मेहनतकश जनता के प्रसंग में, जो इन मांगों द्वारा, जो वह राज्य के सामने पेश कर रही है, अपनी पूरी चेतना को प्रकट कर रही है कि न वह राज करती है और न राज करने योग्य हो पाई है!

यहां लूई फ़िलिप के शासनकाल में बुशे द्वारा फ़ांसीसी समाजवादियों के **विरोध में** प्रस्तुत तथा "*Atelier*"[13] के प्रतिक्रियावादी मज़दूरों द्वारा स्वीकृत नुसख़े की आलोचना की चर्चा करना अनावश्यक होगा। मुख्य दोष इस विशेष नीमहकीमी नुसख़े को कार्यक्रम के भीतर घुसा लेने में नहीं, प्रत्युत वर्ग आंदोलन के दृष्टिकोण से संकीर्णतावादी आंदोलन की दिशा में सामान्यतः पीछे हटने में है।

जब मज़दूर एक सामाजिक पैमाने पर, और सबसे पहले एक राष्ट्रीय पैमाने पर, अपने ही देश में, सामूहिक उत्पादन की परिस्थितियां उत्पन्न करना चाहते हैं, तो इसका आशय केवल यह है कि वे उत्पादन की वर्तमान परिस्थितियों में क्रांति लाना चाहते हैं, और राजकीय सहायता से सहकारी समितियों की स्थापना से इसका तनिक भी संबंध नहीं है। लेकिन जहां तक मौजूदा सहकारी समितियों का संबंध है, उनका मूल्य **केवल** वहीं तक है जहां तक वे मज़दूरों की स्वतंत्र रचनाएं हैं, न कि सरकारों या पूंजीपतियों की संरक्षिताएं।

४

अब मैं जनवादी अध्याय पर आता हूं।

(क) "**राज्य का स्वतंत्र आधार।**"

सबसे पहले, अध्याय २ के अनुसार, जर्मन मज़दूर पार्टी "स्वतंत्र राज्य" के लिए संघर्ष करती है।

स्वतंत्र राज्य—यह क्या चीज है?

मज़दूरों का, जो दीन प्रजाजनों की संकुचित मनोवृत्ति से छूटकारा पा गये हैं, लक्ष्य राज्य को "स्वतंत्र" कर देने का किसी भी प्रकार नहीं है। जर्मन साम्राज्य में "राज्य" लगभग उतना ही "स्वतंत्र" है, जितना कि रूस में। स्वतंत्रता राज्य को समाज के ऊपर हावी निकाय से उसके पूर्णतः अधीनस्थ निकाय में परिवर्तित करने में सन्निहित है, और आज भी राज्य के रूप जिस हद तक वे "राज्य की स्वतंत्रता" को सीमित करते हैं, उसी हद तक ज़्यादा या कम स्वतंत्र हैं।

जर्मन मज़दूर पार्टी—कम से कम अगर वह इस कार्यक्रम को स्वीकार कर लेती है—यह प्रकट करती है कि उसके समाजवादी विचार कितने सतही हैं; वर्तमान समाज को (और यह किसी भी भावी समाज के लिए भी सही है) वर्तमान **राज्य** का (या भावी समाज के मामले में भावी राज्य का) "**आधार**" मानने के बजाय यह राज्य को वस्तुतः एक स्वतंत्र सत्ता मानती है, जो स्वयं अपने "**बौद्धिक, नैतिक तथा स्वातंत्र्यवादी आधारों**" से सम्पन्न है।

"वर्तमान राज्य", "वर्तमान समाज" शब्दों का कार्यक्रम में जो उच्छृंखलतापूर्ण दुरुपयोग हुआ है, उस राज्य के बारे में, जिसके आगे वह अपनी मांगें पेश करता है, जो इससे भी ज़्यादा उच्छृंखल भ्रांत धारणा वह उत्पन्न करता है, उसके बारे में क्या कहा जाये?

"वर्तमान समाज" पूंजीवादी समाज है, जो सभी सभ्य देशों में मध्ययुगीन मिलावट से कमोबेश मुक्त, प्रत्येक देश के विशेष ऐतिहासिक विकास से कमोबेश रूपांतरित, कमोबेश विकसित रूप में विद्यमान है। इसके विपरीत, "वर्तमान राज्य" देश के सीमांत के साथ बदल जाता है। प्रशियाई-जर्मन साम्राज्य में यह स्विट्ज़रलैंड से भिन्न है, इंगलैंड में यह संयुक्त राज्य अमरीका से भिन्न है। "वर्तमान राज्य" इसलिए एक कोरी कल्पना है।

तथापि, विभिन्न सभ्य देशों के विभिन्न राज्यों में, उनके रूप की बहुमुखी विविधता के बावजूद, यह समानता है कि वे सभी आधुनिक पूंजीवादी समाज पर आधारित हैं; बस किसी का किसी से कम या ज़्यादा पूंजीवादी विकास हुआ है। इसलिए उनमें कुछ तात्त्विक लक्षणों की भी समानता है। इस मानी में भविष्य के विपरीत, जिसमें राज्य का वर्तमान मूलाधार, पूंजीवादी समाज, मृत हो चुका होगा, "वर्तमान राज्य" की बात करना संभव है।

तब सवाल पैदा होता है: कम्युनिस्ट समाज में राज्य का क्या रूपांतरण होगा? दूसरे शब्दों में, वहां ऐसे कौनसे सामाजिक काम शेष रहेंगे, जो राज्य के वर्तमान कामों के सदृश होंगे? इस प्रश्न का उत्तर केवल वैज्ञानिक ढंग से ही दिया जा सकता है; और "जनता" शब्द का "राज्य" शब्द के साथ लाख मेल बैठाकर भी समस्या के बाल भर भी पास नहीं पहुंचा जा सकता।

पूंजीवादी और कम्युनिस्ट समाज के बीच एक के दूसरे में क्रान्तिकारी रूपांतरण का काल है। इसका समवर्ती एक राजनीतिक संक्रमण काल भी है, जिसमें राज्य **सर्वहारा के क्रान्तिकारी अधिनायकत्व** के सिवा और कुछ नहीं हो सकता।

कार्यक्रम न इसको लेता है, न कम्युनिस्ट समाज के भावी राज्य को।

इसकी राजनीतिक मांगों में सुपरिचित पुरानी जनवादी मंत्रावली – सार्विक मताधिकार, प्रत्यक्ष विधि-निर्माण, जनाधिकार, जन-मिलीशिया, आदि – के सिवा और कुछ नहीं है। ये पूंजीवादी जन-पार्टी की, शांति तथा स्वतंत्रता लीग की गूंज मात्र हैं। ये सब वे मांगें हैं, जिनकी **सिद्धि हो भी चुकी है**, बशर्ते कि उन्हें अतिरंजित करके हवाई ढंग से पेश न किया जाये। अलबत्ता जिस राज्य में वे क्रियान्वित हुई हैं, वह जर्मन साम्राज्य के सीमांत के भीतर नहीं, वरन्

स्विट्ज़रलैंड, संयुक्त राज्य अमरीका, आदि में है। इस प्रकार का "भविष्य का राज्य" एक **वर्तमान राज्य** है, यद्यपि वह जर्मन साम्राज्य के "ढांचे" के बाहर मौजूद है।

लेकिन एक चीज़ भुला दी गई है। जर्मन मज़दूर पार्टी चूंकि स्पष्टतः घोषित करती है कि वह "वर्तमान राष्ट्रीय राज्य" के भीतर काम करती है, यानी अपने ही राज्य, प्रशियाई-जर्मन साम्राज्य के भीतर–अन्यथा इसकी अधिकांश मांगें निरर्थक ही होंगी, क्योंकि उसी चीज़ की मांग की जाती है जो पास में है नहीं–इसलिए इसे मुख्य बात को नहीं भुला देना चाहिए था, और वह यह कि ये सभी सुंदर-सुंदर छोटी-छोटी चीजें तथाकथित जन-प्रभुसत्ता की मान्यता पर आधारित हैं और इसलिए एक **जनवादी जनतंत्र** में ही फबती हैं।

आप में चूंकि इस बात का साहस नहीं है–और यह समझदारी की ही बात है, क्योंकि परिस्थितियां सावधानी का तकाज़ा करती हैं–कि जनवादी जनतंत्र की मांग करें, जैसा कि फ़्रांसीसी मज़दूरों के कार्यक्रमों में लूई फ़िलिप के ज़माने में और लूई नेपोलियन के ज़माने में किया गया था, इसलिए आपको एक ऐसे राज्य से, जो संसदीय रूपों से अलंकृत, सामंती मिलावट से अधिमिश्रित, पूंजीपति वर्ग द्वारा प्रभावित और नौकरशाही द्वारा विरचित एक पुलिस-संरक्षित सैनिक निरंकुश शासन के अलावा कुछ भी नहीं है, ऐसी चीज़ों की, जो केवल एक जनवादी जनतंत्र में ही मानी रखती हैं, मांग करने का ढोंग भी नहीं करना चाहिए था, जो न "खरा"* है और न उचित और तुर्रा यह कि आप इसी राज्य को आश्वासन देते हैं कि आपका ख़याल है कि आप उसे "वैध उपायों द्वारा" इन चीज़ों को मानने के लिए विवश करेंगे।

कुत्सित जनवाद तक, जिसे जनवादी जनतंत्र में ही स्वर्णयुग नज़र आता है और जिसे सपने में भी यह बात नज़र नहीं आती कि पूंजीवादी समाज के राज्य के इस अंतिम रूप में ही वर्ग-संघर्ष निर्णायक अंत तक लड़ा जाने को है, यह कुत्सित जनवाद तक उस जनवाद से बेअंदाज़ ऊंचा है जो अपने को उन्हीं सीमाओं के भीतर रखता है, जिनकी अनुमति पुलिस देती है और तर्क जिनकी अनुमति नहीं देता।

यह तथ्य कि "राज्य" शब्द से आशय वास्तव में सरकारी मशीन से, या राज्य से है जहां तक कि वह श्रम-विभाजन द्वारा समाज से पृथक्कृत एक विशेष

* शब्दश्लेष – "खरा" आइज़ेनाख़वादियों पर कसी जानेवाली एक फबती थी। – सं०

अंग के रूप में गठित हुआ है, इन शब्दों से प्रकट हो जाता है: "जर्मन मजदूर पार्टी **राज्य के आर्थिक आधार के रूप में** एकल वर्द्धमान आय कर की मांग करती है", आदि। कर सरकारी मशीन के ही आर्थिक आधार हैं, किसी और चीज के नहीं। "भविष्य के राज्य" में, जो स्विट्ज़रलैंड में विद्यमान है, यह मांग लगभग पूरी हो चुकी है। आय कर विभिन्न सामाजिक वर्गों की आय के विभिन्न स्रोतों और इस प्रकार पूंजीवादी समाज की पूर्वकल्पना करता है। इसलिए यह कोई उल्लेखनीय बात नहीं है कि लीवरपूल के वित्त-सुधारक ग्लैडस्टन के भाई की अगुआई में पूंजीपति लोग वही मांग पेश कर रहे हैं, जो कार्यक्रम करता है।

(ख) "जर्मन मजदूर पार्टी राज्य के बौद्धिक और नैतिक आधार के रूप में मांग करती है:

"१. राज्य द्वारा सार्विक तथा **समान प्राथमिक शिक्षा**। सार्विक तथा अनिवार्य स्कूली हाज़िरी। निःशुल्क शिक्षण।"

समान प्राथमिक शिक्षा? इन शब्दों में क्या भाव है? क्या यह ख़याल किया जाता है कि वर्तमान समाज में (और वास्ता सिर्फ़ इसी से ही है) शिक्षा सभी वर्गों के लिए **समान** हो सकती है? या यह मांग की जाती है कि उच्च वर्ग भी शिक्षा के न्यूनतम स्तर – प्राथमिक स्कूल – पर बलात् ले आये जायेंगे, एकमात्र वह स्तर जो न केवल मज़दूरों, बल्कि किसानों की भी आर्थिक स्थितियों के अनुरूप है?

"सार्विक अनिवार्य स्कूली हाजिरी। निःशुल्क शिक्षण।" प्रथमोक्त जर्मनी तक में विद्यमान है, दूसरा स्विट्ज़रलैंड में और प्राथमिक स्कूलों के मामले में संयुक्त राज्य अमरीका में है। अमरीका के कुछ राज्यों में अगर उच्च शिक्षण संस्थाएं भी "निःशुल्क" हैं, तो वास्तव में इसका अर्थ केवल सामान्य करों की प्राप्तियों से उच्च वर्गों की शिक्षा का ख़र्च अदा करना ही है। प्रसंगवश, ५ (क) के अंतर्गत की मांग "निःशुल्क न्याय-व्यवस्था" के बारे में भी यही बात सही है। फ़ौजदारी न्याय-व्यवस्था हर कहीं निःशुल्क है; दीवानी न्याय-व्यवस्था का संबंध लगभग पूरी तरह संपत्ति के बारे में होनेवाले विवादों से है और इसलिए यह लगभग केवल संपत्तिधारी वर्गों से ही मतलब रखती है। क्या वे अपनी मुक़दमेबाज़ी राष्ट्रीय कोष के बल पर करेंगे?

स्कूल-संबंधी पैराग्राफ़ में प्राथमिक स्कूल के साथ-साथ कम से कम तकनीकी स्कूलों (सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक) की मांग की जानी चाहिए थी।

"**राज्य द्वारा प्राथमिक शिक्षा**" की बात एकदम आपत्तिजनक है। सामान्य क़ानून द्वारा प्राथमिक स्कूलों पर व्यय, शिक्षकों की योग्यता, शिक्षण की शाखाएं, आदि का निर्धारण और, जैसा कि संयुक्त राज्य अमरीका में किया जाता है, इन क़ानूनी निर्देशों का राजकीय निरीक्षकों के अधीक्षण में पालन, राज्य को जनता का शिक्षक नियुक्त करने से बहुत भिन्न चीज़ है! बल्कि सरकार और चर्च को स्कूल पर कोई भी प्रभाव डालने से समान रूप से वंचित कर देना चाहिए। विशेषकर प्रशियाई-जर्मन साम्राज्य में (और इसमें इस सड़ियल ढोंग की आड़ नहीं लेनी चाहिए कि बात एक "भविष्य के राज्य" की हो रही है; हम देख चुके हैं कि इस लिहाज़ से स्थिति क्या है) तो असल में, इसके विपरीत, राज्य को जनता द्वारा बहुत सख़्त शिक्षा दी जाने की ज़रूरत है।

लेकिन, अपनी समस्त जनवादी झंकार के बावजूद, सारा ही कार्यक्रम राज्य में लासाली पंथ के दासतापूर्ण विश्वास या, जो इससे कोई बेहतर बात नहीं है, जनवादी चमत्कारों में एक विश्वास से पूरी तरह दूषित है, या फिर यह चमत्कारों में इन दोनों प्रकारों के विश्वासों में समझौता है, जिनमें दोनों ही समाजवाद से कोसों दूर हैं।

"**विज्ञान की स्वतंत्रता**"—प्रशियाई संविधान के एक पैराग्राफ़ में कहा गया है। तो भला यहां क्यों?

"**अंतःकरण की स्वतंत्रता**"! "कुल्टुरकाम्फ़"[14] के इस ज़माने में अगर कोई उदारतावादियों को उनके पुराने सूत्रों की याद दिलाना चाहे, तो वह निश्चय ही निम्नलिखित रूप में किया जा सकता था: "हर किसी के लिए पुलिस की दख़लंदाज़ी के बिना अपनी धार्मिक और साथ ही साथ शारीरिक आवश्यकताओं को पूरा करना संभव होना चाहिए।" लेकिन मज़दूर पार्टी को इस संबंध में हर हालत में अपनी यह चेतना प्रकट करनी ही चाहिए थी कि पूंजीवादी "अंतःकरण की स्वतंत्रता" हर संभव प्रकार की **अंतःकरण की धार्मिक स्वतंत्रता** की छूट के सिवा कुछ नहीं है और यह कि अपनी ओर से तो मज़दूर पार्टी वस्तुतः अंतःकरण को धर्म के इन्द्रजाल से मुक्त करने का यत्न करती है। लेकिन आप "**पूंजीवादी**" स्तर को पार नहीं करना चाहते।

अब मैं समाप्ति पर आ गया हूं, क्योंकि कार्यक्रम में अब जो परिशिष्ट आता है, वह उसका लाक्षणिक अंग नहीं है। इसलिए मैं यहां अपनी बात बहुत संक्षेप से कह सकता हूं।

२. **"सामान्य काम का दिन।"**

किसी भी अन्य देश में मज़दूर पार्टी ने अपने को ऐसी अनिश्चित मांग तक सीमित नहीं रखा है, बल्कि सदा काम के दिन की ऐसी अवधि निश्चित की है, जिसे वह अपनी परिस्थितियों में सामान्य समझती है।

३. "महिला-श्रम का परिसीमन तथा बाल-श्रम की मनाही।"

काम के दिन के मानकीकरण में महिला-श्रम का परिसीमन भी सम्मिलित होना चाहिए, इसलिए कि इसका संबंध काम के दिन की अवधि, मध्यावकाशों, आदि से है; अन्यथा इसका आशय महिला-श्रम का उद्योगों की उन शाखाओं में, जो स्त्री-शरीर के लिए विशेष रूप से अस्वास्थ्यकर हैं या स्त्री-जाति के लिए नैतिक रूप से आपत्तिजनक हैं, अपवर्जन ही हो सकता है। यदि आशय यही था, तो ऐसा कहा जाना चाहिए था।

"बाल-श्रम की मनाही"! यहां **आयु-सीमा** का उल्लेख एकदम अनिवार्य था।

बाल-श्रम की **पूर्ण मनाही** बड़े पैमाने के उद्योग के अस्तित्व के साथ असंगत है और इसलिए एक थोथी सदिच्छा मात्र है।

इसकी सिद्धि – यदि वह संभव हो, तो – प्रतिक्रियावादी होगी, क्योंकि विभिन्न आयु-समुदायों के अनुसार कार्य-काल के कड़े नियमन तथा बालकों के संरक्षण के लिए अन्य सुरक्षा-उपायों द्वारा उत्पादक श्रम का शिक्षा के साथ यथाशीघ्र संयोग वर्तमान समाज के रूपांतरण के सबसे प्रभावी साधनों में एक है।

४. "फ़ैक्टरी, वर्कशाप तथा गृह-उद्योग की राजकीय देखभाल।"

प्रशियाई-जर्मन राज्य को देखते हुए इस बात की निश्चित मांग की जानी चाहिए थी कि निरीक्षक केवल न्यायालय द्वारा ही अलग किये जा सकते हैं; कि कोई भी मज़दूर कर्त्तव्य की उपेक्षा के लिए उन पर मुक़दमा चलवा सकता है; कि वे डाक्टरी पेशे के होने चाहिए।

५. "जेल-श्रम का नियमन।"

मज़दूरों के आम कार्यक्रम में यह एक तुच्छ मांग है। किसी भी सूरत में, यह स्पष्ट कहा जाना चाहिए था कि मज़दूरों की यह मंशा नहीं है कि वे होड़

के डर से साधारण अपराधियों के साथ पशुवत् व्यवहार होने दें, और विशेषकर यह कि कोई उन्हें उनकी बेहतरी के एकमात्र उपाय, उत्पादक श्रम से वंचित करना नहीं चाहता। समाजवादियों से कम से कम इसकी अपेक्षा तो की ही जा सकती थी।

६. "एक प्रभावी दायित्व-क़ानून।"

यह बताया जाना चाहिए था कि "प्रभावी" दायित्व-क़ानून से आशय क्या है।

प्रसंगवश, ध्यान देने की बात है कि सामान्य काम के दिन का ज़िक्र करते समय फ़ैक्टरी क़ानून के उस भाग को नज़रंदाज़ कर दिया गया है, जिसका संबंध स्वास्थ्य-विनियमों तथा सुरक्षा-उपायों, आदि से है। दायित्व-क़ानून केवल तभी अमल में आता है जब ये विनियम भंग किये जाते हैं।

संक्षेप में, इस परिशिष्ट पर भी फूहड़ संपादन की छाप लगी है।

Dixi et salvavi animam meam*.

कार्ल मार्क्स द्वारा अप्रैल-मई १८७५ के शुरू में लिखित।

«Die Neue Zeit» पत्रिका,
Bd. 1, №18, 1890—1891 में
कुछ अंश निकालकर
प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

* मैंने बात कह दी है और अपनी आत्मा को बचा लिया है। – सं०

फ़्रेडरिक एंगेल्स

अगस्त बेबेल के नाम पत्र

लंदन, १८–२८ मार्च १८७५

प्रिय बेबेल,

आपका २३ फ़रवरी का पत्र मिला और यह जानकर ख़ुशी हुई कि आपका स्वास्थ्य बहुत अच्छा है।

आपने मुझसे पूछा है कि एकता के इस मामले के बारे में हमारा क्या ख़याल है। दुर्भाग्यवश हमारा हाल आपके जैसा ही रहा है। न लीब्कनेख़्त और न किसी और ने ही हमें कोई ख़बर भेजी है, और इसलिए हमें भी सिर्फ़ वही मालूम है, जो अख़बारों में है, और कोई एक सप्ताह पहले कार्यक्रम के मसविदे के प्रकाशित होने के समय तक उनमें कुछ भी न था। इस मसविदे ने निश्चय ही हमें कोई कम चकित नहीं किया है।

हमारी पार्टी ने लासालवादियों को मेल के या कम से कम सहयोग के प्रस्ताव इतनी बार दिये और हाज़ेनक्लेवेरों, हैस्सेलमैनों तथा त्योल्केओं द्वारा वह इतनी बार और तिरस्कारपूर्वक दुतकारी गई है कि कोई बच्चा भी यही निष्कर्ष निकालता: यदि ये महानुभाव अब आगे आकर स्वयं मेल का प्रस्ताव कर रहे हैं, तो इनकी हालत बहुत तंग होनी चाहिए। लेकिन इन लोगों के सुविदित चरित्र को ध्यान में रखते हुए यह हमारा कर्त्तव्य है कि हम हर संभव गारंटी अनुबंधित करने के लिए इनकी इस हालत का उपयोग करें, ताकि ये हमारी पार्टी के बल पर मज़दूरों में अपनी कमज़ोर स्थिति फिर से न स्थापित कर पायें। उनके साथ अत्यंत उपेक्षा और अविश्वास के साथ पेश आना चाहिए था और मेल को इस बात पर निर्भर कर देना चाहिए था कि किस हद तक वे अपने संकीर्णतावादी नारों और अपनी "राजकीय सहायता" को छोड़ने और १८६९ के आइज़ेनाख़ कार्यक्रम या वर्तमान स्थिति के अनुकूल उसके संशोधित रूप को तत्त्वत: स्वीकार करने के लिए तैयार

हैं। हमारी पार्टी को सैद्धांतिक क्षेत्र में और इसलिए कार्यक्रम के लिए जो निर्णायक है, उसमें लासालवादियों से **बिल्कुल कुछ नहीं सीखना है**, लेकिन लासालवादियों को अवश्य हमारी पार्टी से कुछ सीखना है। एकता की पहली शर्त यह होनी चाहिए थी कि वे संकीर्णतावादी, लासालवादी न रहें; सबसे ऊपर यह कि राजकीय सहायता की रामबाण औषधि यदि पूर्णतः तजी नहीं जाती, तो किसी भी सूरत में वह उनके द्वारा अन्य कई संभव उपायों में से एक गौण संक्रमणकालीन उपाय के रूप में स्वीकारी जानी चाहिए। कार्यक्रम का मसविदा सिद्ध करता है कि सैद्धांतिक दृष्टि से हमारे लोग लासालवादी नेताओं से सैकड़ों गुना ऊंचे हैं, पर राजनीतिक चालाकी में वे उनसे इतने ही नीचे भी हैं; "खरे" एक बार फिर खोटों द्वारा निर्दयतापूर्वक छले गये हैं।

पहली बात तो यह कि लासाल की शब्दाडंबरपूर्ण, पर ऐतिहासिक दृष्टि से झूठी यह उक्ति स्वीकार कर ली जाती है कि मजदूर वर्ग के मुक़ाबले में अन्य सभी वर्ग केवल एक प्रतिक्रियावादी समूह हैं। यह कथन केवल कुछ आपवादिक मामलों में ही सही है: उदाहरण के लिए, कम्यून जैसी सर्वहारा क्रांति में, या किसी ऐसे देश में जहां न केवल पूंजीपति वर्ग ने ही राज्य तथा समाज को अपने सांचे में ढाल लिया है, बल्कि जहां उसके पीछे पीछे जनवादी निम्नपूंजीपति वर्ग भी इस ढलाई को उसकी चरमपरिणति तक ले जा भी चुका है। जर्मनी में अगर, मिसाल के लिए, जनवादी निम्नपूंजीपति वर्ग इस प्रतिक्रियावादी समूह का अंग होता, तो समाजवादी-जनवादी मजदूर पार्टी क्योंकर वर्षों इसके—जन-पार्टी के—हाथ में हाथ डाले चल सकी? *«Volksstaat»* अपनी लगभग समग्र राजनीतिक सामग्री निम्नपूंजीवादी-जनवादी *«Frankfurter Zeitung»*[15] से कैसे ले सकता है? और यह कैसे होता है कि इस कार्यक्रम में पूरी सात ऐसी मांगें सम्मिलित हैं जो जनपार्टी और निम्नपूंजीवादी जनवाद के कार्यक्रम से प्रत्यक्षतः और शब्दशः मेल खाती हैं? मेरा आशय १ से ५ तक और १ से २ तक की सात राजनीतिक मांगों से है, जिनमें से एक भी ऐसी नहीं है, जो **पूंजीवादी**-जनवादी नहीं है।[16]

दूसरे, यह सिद्धान्त कि मजदूर आंदोलन एक अंतर्राष्ट्रीय आंदोलन है, व्यवहार में आजकल बिल्कुल त्याग दिया गया है, और सो भी उन लोगों द्वारा, जिन्होंने इस सिद्धांत का पांच वर्षों तक कठिनतम परिस्थितियों में शान के साथ पालन किया था। यूरोपीय आंदोलन की अगुआई में जर्मन मजदूरों की स्थिति **मूलतः** युद्ध के दौरान[17] उनके सच्चे अंतर्राष्ट्रीय आचरण के कारण है; किसी और देश के सर्वहारा वर्ग का आचरण इतना अच्छा नहीं हो सकता था। और अब

उनके द्वारा यह सिद्धांत उस घड़ी त्यागा जाने को है, जब विदेशों में हर जगह ही ज्यों-ज्यों सरकारें किसी भी संगठन में इसकी हर प्रयासित अभिव्यक्ति को कुचलने की चेष्टा कर रही हैं, त्यों-त्यों मज़दूर इस पर ज़ोर दे रहे हैं! और तब मज़दूर आंदोलन के अंतर्राष्ट्रीयतावाद का क्या कुछ बच रहता है? एक धूमिल संभावना – अपने निस्तार के लिए यूरोपीय मज़दूरों के किसी भावी सहयोग तक की नहीं, वरन् पूंजीवादी शांति लीग के "यूरोप के संयुक्त राज्य" की, भावी "जनगण के अंतर्राष्ट्रीय भाईचारे" की संभावना!

बेशक ख़ुद इंटरनेशनल की चर्चा करना बिल्कुल अनावश्यक था। लेकिन निश्चय ही कम से कम १८६९ के कार्यक्रम से पीछे तो न हट जाना चाहिये था और इस आशय की कोई बात कही जानी चाहिये थी: **यद्यपि** जर्मन मज़दूर पार्टी **सबसे पहले** अपने लिए निर्धारित राज्यीय सीमांत के भीतर ही काम कर रही है (यूरोपीय सर्वहारा की ओर से कुछ कहने का अधिकार, विशेषकर कुछ ग़लत कहने का अधिकार, इसे नहीं है), तथापि यह सभी देशों के मज़दूरों के साथ अपनी एकजुटता के प्रति सचेत है और इस एकजुटता से उत्पन्न दायित्वों को पूरा करने के लिए यह आगे भी, जैसे कि यह अब तक रहती आई है, सदैव तत्पर रहेगी। इस तरह के दायित्व अपने को इंटरनेशनल का अंग मानने या उसकी स्पष्ट घोषणा के बिना भी रहते ही हैं; मिसाल के लिए, हड़तालों में सहायता देना और हड़तालतोड़क न बनना; इसका ध्यान रखना कि पार्टी के मुखपत्र जर्मन मज़दूरों को विदेशों के मज़दूर आन्दोलन से अवगत रखें; राजवंशीय युद्धों के ख़तरे या उनके फूट पड़ने के विरुद्ध आन्दोलन; इन युद्धों के दौरान १८७० और १८७१ के आदर्शानुकूल आचरण, आदि।

तीसरे, हमारे लोगों ने लासालवादी "मज़दूरी के लौह नियम" को अपने पर लद जाने दिया है, जो एक सर्वथा पुरातन आर्थिक मत पर आधारित है, अर्थात् यह कि मज़दूर औसतन केवल **न्यूनतम** मज़दूरी पाता है, क्योंकि माल्थस के जनसंख्या-सिद्धान्त के अनुसार मज़दूरों की संख्या सदा बहुत अधिक होती है (लासाल का तर्क यही था)। मार्क्स ने अब 'पूंजी' में पूरे विस्तार से सिद्ध कर दिया है कि मज़दूरी को नियमित करनेवाले क़ानून बड़े जटिल हैं, कि परिस्थितियों के अनुसार कभी कोई नियम, तो कभी कोई और नियम प्रभावी रहता है और इस प्रकार वे किसी भी अर्थ में लौह नहीं हैं, बल्कि इसके विपरीत बड़े लचकीले हैं, और यह कि इस मामले को किसी भी तरह दो शब्दों में नहीं हल किया जा सकता, जैसा कि लासाल का ख़याल था। इस नियम के समर्थन

में माल्थसी तर्क का, जिसकी लासाल ने माल्थस तथा रिकार्डो से नक़ल की है (रिकार्डो की एक ग़लतबयानी के साथ), जिस रूप में वह उदाहरणार्थ 'श्रमिक पोथी' («Arbeiterlesebuch») में पृष्ठ ५ पर लासाल की एक और पुस्तिका से उद्धृत होकर मिलता है, मार्क्स ने 'पूंजी का संचय' विषयक खंड में विस्तार से खंडन किया है*। इस प्रकार लासाल के "लौह नियम" को अपनाकर हम झूठे आधार के साथ एक झूठी प्रस्थापना को स्वीकार कर लेते हैं।

चौथे, कार्यक्रम अपनी **एकमात्र सामाजिक** मांग के रूप में लासाल की राजकीय सहायता को उसके नग्नतम रूप में, जैसे लासाल ने उसे बुशे से चुराया था, सामने रखता है। और सो भी ब्राके द्वारा इस मांग की निरर्थकता की भली प्रकार व्याख्या होने के बाद[18] और हमारी पार्टी के – यदि सब नहीं, तो – लगभग सभी वक्ताओं के लासालवादियों का सामना करने के लिए इस "राजकीय सहायता" के विरोध में उतर जाने के बाद! हमारी पार्टी इससे अधिक अपनी अवमानना नहीं कर सकती थी। अंतर्राष्ट्रीयतावाद को अमांद गोएग के तल तक गिरा दिया गया और समाजवाद को पूंजीवादी-जनतंत्रवादी बुशे के तल तक, जिसने अपनी मांग **समाजवादियों के विरोध में** उनसे बाज़ी मारने के लिए पेश की थी!

लेकिन लासालवादी मानी में "राजकीय सहायता" अधिक से अधिक उन कई उपायों में से केवल **एक** है, जिनका उद्देश्य उस लक्ष्य की सिद्धि है, जिसे यहां बड़े फुसफुसे तरीक़े से "सामाजिक समस्या के हल का पथ प्रशस्त करना" बताया गया है – मानो सैद्धांतिक दृष्टि से **हल न हुई** कोई सामाजिक **समस्या** हमारे लिए अभी भी बाक़ी है! इसलिए अगर कोई कहे: "जर्मन मज़दूर पार्टी उद्योग तथा कृषि में राष्ट्रीय पैमाने पर सामूहिक उत्पादन की स्थापना द्वारा उजरती श्रम के, और इसके साथ वर्ग-विभेदों के उन्मूलन के लिए संघर्ष करती है; इस लक्ष्य की सिद्धि के लिए यह हर उपयुक्त उपाय का समर्थन करती है", तो कोई लासालवादी इस पर आपत्ति नहीं कर सकता।

पांचवें, मज़दूर वर्ग को ट्रेड-यूनियनों द्वारा एक वर्ग के रूप में संगठित करने के बारे में एक शब्द भी नहीं है। और यह एक बड़ी आवश्यक बात है, क्योंकि यही सर्वहारा का असली वर्ग संगठन है, जिसमें यह पूंजी के साथ अपने दैनंदिन का संघर्ष चलाता है, जिसमें यह अपने को प्रशिक्षित करता है और जिसे आज

---

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', खण्ड १, मास्को। – सं०

घोरतम प्रतिक्रिया (जैसा कि पेरिस में इस समय है) द्वारा भी अब नष्ट नहीं किया जा सकता। जर्मनी में भी इस संगठन ने जितना महत्त्व प्राप्त कर लिया है, उसको देखते हुए हमारे मत में कार्यक्रम में इसका उल्लेख करना और यदि संभव हो, तो पार्टी संगठन में इसके लिए जगह रखना एकदम आवश्यक होगा।

हमारे लोगों द्वारा यह सब लासालवादियों को ख़ुश करने के लिए किया गया है। और दूसरे पक्ष ने क्या दिया है? यह कि ढेर सारी काफ़ी गड्मड् **शुद्ध जनवादी मांगें** कार्यक्रम में आ गई हैं, जिनमें से कुछ तो मात्र फ़ैशन की बातें हैं, जैसे मिसाल के लिए, "जनता द्वारा विधि-निर्माण", जो स्विट्ज़रलैंड में मौजूद है और जिसका अगर कुछ असर हो भी, तो लाभ से ज़्यादा हानि ही होगी। "जनता द्वारा **प्रशासन**", इसमें कुछ बात होगी। सारी स्वतंत्रता की पहली शर्त – सभी सरकारी कर्मचारी अपने सरकारी कामों के लिए हर नागरिक के प्रति सामान्य अदालतों में और सामान्य क़ानून के अनुसार उत्तरदायी हों – का भी इतना ही अभाव है। इस बात के बारे में कि विज्ञान की स्वतंत्रता और अंतःकरण की स्वतंत्रता जैसी मांगें हर उदारवादी पूंजीवादी कार्यक्रम में मिलती हैं और यहां कुछ अजीब-सी लगती हैं, मैं और कुछ नहीं कहूंगा।

स्वतंत्र जनता का राज्य स्वतंत्र राज्य में रूपांतरित हो गया है। वैयाकरणिक अर्थ में लिया जाये, तो स्वतंत्र राज्य वह है, जिसमें अपने नागरिकों के संबंध में राज्य स्वतंत्र है, यानी एक निरंकुश सरकार वाला राज्य। राज्य विषयक सारी बात ही उड़ा दी जानी चाहिए, विशेषकर कम्यून के बाद, जो शब्द के सही अर्थ में राज्य रहा ही नहीं था। "**जनता के राज्य**" के बारे में अराजकतावादियों ने हमारी इतनी ताड़ना की है कि इससे हम ऊब गये हैं, यद्यपि प्रूदों के विरुद्ध मार्क्स की पुस्तक में* पहले ही और उसके बाद 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'** में सीधे सीधे घोषित किया गया है कि समाजवादी व्यवस्था के आगमन के साथ राज्य स्वयं विलयित हो जायेगा (sich auflöst) और विलुप्त हो जायेगा। इसलिए, राज्य चूंकि मात्र एक संक्रमणकालीन संस्था है, जिसका उपयोग अपने शत्रुओं को बलपूर्वक दबाने के लिए संघर्ष में, क्रान्ति में किया जाता है, इसलिए

---

*आशय मार्क्स की 'दर्शन की दरिद्रता। "दरिद्रता का दर्शन" का उत्तर' से है। – सं०

**देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। – सं०

जनता के स्वतंत्र राज्य की बात करना कोरी बकवास है: सर्वहारा अभी भी जब तक राज्य का **उपयोग करता है,** स्वतंत्रता के हितों में नहीं करता, वरन् अपने शत्रुओं को दबाने के लिए करता है, और जैसे ही स्वतंत्रता की बात करना संभव हो जाता है, वैसे ही स्वयं राज्य का अस्तित्व भी जाता रहता है। इसलिए हमारा प्रस्ताव है कि "राज्य" की जगह हर कहीं "समुदाय" (Gemeinwesen)— एक बढ़िया पुराना जर्मन शब्द, जो फ़्रेंच शब्द "कम्यून" का बड़ी अच्छी तरह अर्थ दे सकता है—का प्रयोग किया जाये।

"सभी वर्ग-विभेदों का उन्मूलन" की जगह "समस्त सामाजिक तथा राजनीतिक असमानता का निराकरण" भी एक बड़ा संदेहास्पद वाक्यांश है। देश-देश, प्रांत-प्रांत और इलाक़े-इलाक़े तक के बीच ज़िंदगी की हालतों में सदा कुछ असमानता रहेगी, जिसे कम तो किया जा सकता है, पर पूर्णतः निर्मूल कभी नहीं किया जा सकता। पहाड़ों के निवासियों के जीवन की परिस्थितियां मैदानों में रहनेवाले लोगों से सदा भिन्न होंगी। समानता के अधिक्षेत्र के रूप में समाजवादी समाज का विचार प्राचीन "स्वाधीनता, समानता, बंधुता" पर आधारित एक एकांगी फ़्रांसीसी विचार है—एक ऐसा विचार जो अपने ख़ुद के काल और देश में तो **विकास की एक मंज़िल** के नाते उचित था, किंतु प्राचीन समाजवादी विचारधारा के सभी एकांगी विचारों की ही तरह जिसे अब ख़त्म कर दिया जाना चाहिए, क्योंकि ये लोगों के दिमाग़ में सिर्फ़ उलझन ही पैदा करते हैं और इसलिए कि अब विषय को प्रस्तुत करने के अधिक निश्चित तरीक़े निकाले जा चुके हैं।

अब मैं बस करूंगा, यद्यपि इस कार्यक्रम के, जो इसके अलावा बड़ी ही नीरस और निर्जीव शैली में लिखा गया है, लगभग हर शब्द की आलोचना हो सकती थी। इसका स्वरूप ही ऐसा है कि अगर यह स्वीकार कर लिया गया, तो मार्क्स और मैं इस आधार पर बनी **नई** पार्टी को अपनी निष्ठा **हरगिज़ नहीं** दे सकते, और हमें इस बात पर गंभीरता के साथ विचार करना होगा कि इसके प्रति हमारा—सार्वजनिक रूप से भी—दृष्टिकोण क्या हो। आपको याद रखना चाहिए कि बाहर **हमें** जर्मन समाजवादी-जनवादी मज़दूर पार्टी के हर शब्द और काम का उत्तरदायी बनाया जाता है। बकूनिन ने अपनी कृति 'राज्यत्व और अराजकता' में यही किया है, जहां हमें *«Demokratisches Wochenblatt»*[19] के शुरू होने के बाद से लीब्कनेख़्त द्वारा कहे या लिखे हर असावधानीपूर्ण शब्द के लिए ज़िम्मेदार ठहराया गया है। लोगों का ख़याल है कि हम यहां से सारे मामले का

संचालन करते हैं, जबकि मेरी तरह ही आपको मालूम है कि हमने पार्टी के भीतरी मामलों में शायद ही कभी हस्तक्षेप किया हो, और जब किया है तब भारी भूलों को – और **केवल सैद्धांतिक** भूलों को, जो हमारी राय में की गई थीं – ही यथाशक्ति ठीक करने के लिए। लेकिन आप स्वयं अनुभव करेंगे कि यह कार्यक्रम एक मोड़ का द्योतक है, जो इसे मान्यता देनेवाली पार्टी के प्रति किसी भी प्रकार के उत्तरदायित्व से इनकार करने के लिए हमें बड़ी आसानी से मज़बूर कर सकता है।

किसी पार्टी का अधिकृत कार्यक्रम उस पार्टी की करनी से सामान्यरूपेण कम महत्त्व का होता है। किन्तु एक **नया** कार्यक्रम फिर भी सब के सामने बुलंद किया झंडा तो होता ही है, और बाहरी दुनिया पार्टी को उसी से परखती है। इसलिए इसमें किसी भी हालत में कोई पीछे की ओर क़दम नहीं होना चाहिए, जैसा कि आइज़ेनाख़ कार्यक्रम की तुलना में इसमें है। ध्यान में यह भी रखना चाहिए था कि दूसरे देशों के मजदूर इस कार्यक्रम के बारे में क्या कहेंगे, लासालवाद के आगे समस्त जर्मन समाजवादी सर्वहारा द्वारा इस तरह घुटने टेकने से क्या प्रभाव उत्पन्न होगा।

साथ ही मुझे विश्वास है कि **इस** आधार पर हुई एकता साल भर भी नहीं चलेगी। क्या हमारी पार्टी के सबसे बुद्धिमान लोग मज़दूरी के लौह नियम और राजकीय सहायता के कंठस्थ लासाली सूत्रों की तोतारटंत में लग जायें? मिसाल के लिए, आपको यह करते देखूं! और अगर उन्होंने ऐसा किया, तो उनके श्रोता उनकी बोलती बंद कर देंगे। और मुझे यक़ीन है कि सूदख़ोर शाइलाक के एक पौंड गोश्त पर अड़ने की तरह लासालवादी ठीक **इन्हीं** मुद्दों पर अड़ेंगे। फूट फिर होगी, लेकिन हम हैस्सेलमैन, हाज़ेनक्लेवेर और त्योल्के मंडली को फिर "खरा" बना चुके होंगे; फूट से हम कमज़ोर और लासालवादी मज़बूत होकर निकलेंगे; हमारी पार्टी अपनी राजनीतिक पवित्रता गंवा देगी और फिर कभी लासालवादी लफ़्फ़ाज़ी के ख़िलाफ़, जिसे एक बार वह अपनी ही पताका पर अंकित कर चुकी है, वह पूरे दिल के साथ खड़ी न हो सकेगी; और लासालवादी तब फिर कहें कि उनकी पार्टी ही सबसे सच्ची, मज़दूरों की पार्टी है, जबकि हमारे समर्थक पूंजीवादी हैं, तो इसको कार्यक्रम पुष्ट करेगा। उसमें सभी समाजवादी उपाय **उनके** हैं, और **हमारी** पार्टी ने उसमें जो भी बातें रखी हैं, वे निम्नपूंजीवादी जनवाद की मांगें हैं, जिसको फिर भी **उसी ने** इसी कार्यक्रम में "प्रतिक्रियावादी समूह" का अंग बताया है।

मैंने इस पत्र को यहीं पड़ा रहने दिया था, क्योंकि आप आख़िर पहली अप्रैल को बिस्मार्क के जन्म-दिवस के उपलक्ष्य में रिहा होने को थे ही, और इसे चोरी से भीतर भेजने की कोशिश में इसके पकड़े जाने के ख़तरे को मैं उठाना नहीं चाहता था। और अब ब्राके का एक पत्र अभी अभी आया है। उन्हें कार्यक्रम के बारे में गम्भीर शंकाएं हैं और वह हमारी राय जानना चाहते हैं। इसलिए मैं यह पत्र आपको भेजने के लिए उन्हें ही भेज रहा हूं, ताकि वह इसे पढ़ लें और मुझे यह सब फिर से न लिखना पड़े। इसके अलावा सही सही बात मैंने राम को भी बता दी है, लीब्कनेख़्त को मैंने बस संक्षेप में ही लिखा है। सारी चीज़ के बारे में यह कहिये कि वक़्त गुज़र जाने तक हमें **एक शब्द भी** न बताने के लिए मैं उन्हें कभी क्षमा नहीं कर सकता (जबकि राम तथा अन्य लोगों का ख़याल था कि उन्होंने हमें एकदम सही सूचना दे दी है)। यद्यपि उन्होंने हमेशा ही ऐसा किया है—जिसके कारण हम, मार्क्स तथा मैं दोनों का उनके साथ इतना सारा अप्रिय पत्र-व्यवहार हुआ है, लेकिन इस बार तो यह सच, बहुत ही बुरी बात है और **हम निश्चय ही सहयोग नहीं करेंगे**।

गरमियों में यहां आने का मौक़ा निकालें। कहने की ज़रूरत नहीं, आप मेरे साथ ही ठहरेंगे, और अगर मौसम अच्छा हुआ, तो हम एक-दो दिन के लिए समुद्र तट जायेंगे, जिससे लंबे कारावास के बाद आपको बड़ा लाभ होगा।

तुम्हारा मित्र,
फ़्रे० एं०

मार्क्स ने हाल ही में अपना फ़्लैट बदल दिया है। उनका पता है: ४१, माइटलैंड पार्क, क्रेसंट, लन्दन, नार्थ-वेस्ट।

पहली बार A. Bebel, «*Aus meinem Leben*», T. II, Stuttgart, 1911 में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

कार्ल काउत्स्की के नाम पत्र

लन्दन, २३ फ़रवरी १८९१

प्रिय काउत्स्की,

मैंने आपको परसों तुरन्त जो बधाई-सन्देश भेजा था, वह शायद आपको मिल चुका होगा। तो अब फिर अपने पुराने विषय, मार्क्स के पत्र की ओर लौटा जाये।*

यह भय कि यह पत्र हमारे दुश्मनों के हाथों में एक हथियार बन सकता है, निराधार सिद्ध हुआ है। निस्सन्देह हर चीज़ तथा सब चीजों को कुत्सापूर्ण अर्थ दिये जा रहे हैं। परन्तु कुल मिलाकर इस निर्मम आत्मालोचना ने हमारे विरोधियों पर सर्वथा घबराहट पैदा करनेवाला प्रभाव पैदा किया है और उनमें यह भावना पैदा की है—इस तरह की हिम्मत करनेवाली पार्टी के पास कैसी आन्तरिक शक्ति होगी! यह उन विरोधी अख़बारों को, जो आपने मेरे पास भेजे हैं (उनके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद) तथा मेरे पास उपलब्ध दूसरे अख़बारों को देखने से मालूम हो जाता है। और सच बात तो यह है कि दस्तावेज़ प्रकाशित करते समय मैं भी यही सोचता था। उसका शुरू-शुरू में यहां-वहां कुछ लोगों पर अप्रिय प्रभाव निश्चित रूप से पड़ेगा, यह मैं जानता था, परन्तु इससे बचना असम्भव था और मेरी राय में इसकी तुलना में दस्तावेज़ की अन्तर्वस्तु का पलड़ा ज्यादा भारी था। मैं यह भी जानता था कि पार्टी इसे झेलने में सर्वथा समर्थ है और मैंने यह अनुमान भी लगा लिया था कि वह पन्द्रह वर्ष पहले इस्तेमाल की गयी इस अप्रच्छन्न भाषा को आज भी झेल लेगी; कि कोई भी इस शक्ति-

---

*कार्ल मार्क्स, 'गोथा कार्यक्रम की आलोचना' (इस खण्ड के पृ० ७–३२ देखें)।–सं०

परीक्षा की ओर न्यायोचित गर्व के साथ संकेत करेगा और कहेगा – कहां है ऐसी और कोई पार्टी जो इस तरह का साहस कर सकती है? इस बीच यह कहने का काम सैक्सोनियाई और वियेनाई *«Arbeiter-Zeitung»* तथा *«Züricher Post»* के लिए छोड़ दिया गया है।[20]

«Neue Zeit»[21] के अंक २१ में आपने प्रकाशन का दायित्व ग्रहण किया है, यह आपका सराहनीय कार्य है, परन्तु आपको यह नहीं भूलना चाहिए कि आख़िर मैंने ही आपको पहली प्रेरणा दी थी और यही नहीं, आपको कुछ हद तक विवश किया था। इसलिए मुख्य दायित्व का मैं ही दावा करता हूं। जहां तक तफ़सीलों का सम्बन्ध है, उनके बारे में यक़ीनन भिन्न दृष्टिकोण हो सकता है। आपने तथा दीत्स ने जिस-जिस चीज़ पर आपत्ति की है, उसे मैंने निकाल और बदल दिया है। और यदि दीत्स ने और भी निशान लगाये होते, तब भी मैं उनके प्रति यथासम्भव समझदारी का परिचय देता; मैं आपको हमेशा इसका प्रमाण देता रहा हूं। परन्तु जहां तक मुख्य मुद्दे का सम्बन्ध है, कार्यक्रम एक बार बहस के लिए सामने आने पर इस दस्तावेज़ को प्रकाशित करना **मेरा कर्त्तव्य** था। ख़ास तौर पर हाल्ले में लीब्कनेख़्त की रिपोर्ट[22] के बाद, जिसमें उन्होंने अंशतः मार्क्स द्वारा की गयी आलोचना के उद्धरणों को निर्लज्जतापूर्वक अपना बताकर उनका उपयोग किया तथा अंशतः नाम बताये बिना उनके विरुद्ध वाद-विवाद किया, मार्क्स यक़ीनन इस उलट-फेर के मुक़ाबले में मूल पाठ को प्रस्तुत कर देते। उनके स्थान पर यह कार्य करना मेरा कर्त्तव्य है। दुर्भाग्यवश उस समय मेरे पास यह दस्तावेज़ नहीं थी; यह बाद में काफ़ी तलाश करने के बाद मिली।

आप कहते हैं कि बेबेल ने आपको लिखा है कि लासाल के प्रति मार्क्स के व्यवहार ने पुराने लासालपंथियों में कटुता पैदा कर दी है। यह हो सकता है। बात यह है कि ये लोग असल क़िस्सा नहीं जानते और लगता है कि ऐसा कुछ नहीं हुआ है जो इन लोगों को इस बारे में प्रबुद्ध करता। यदि ये लोग यह नहीं जानते कि लासाल की सारी महानता इसी चीज़ पर आधारित थी कि मार्क्स ने अपने अनुसंधान के परिणामों को वर्षों तक लासाल को अपने परिणाम के रूप में प्रस्तुत करने दिया, कि लासाल अर्थशास्त्र में अपनी दोषपूर्ण शिक्षा के कारण उन्हें विकृत करते रहे तो इसमें मेरा दोष नहीं है। परन्तु मैं मार्क्स का साहित्यिक प्रबन्धक हूं और इस रूप में मुझे अपना कर्त्तव्य पूरा करना है।

लासाल को इतिहास का अंग बने २६ वर्ष हो चुके हैं। यदि समाजवाद विरोधी क़ानून[23] के अन्तर्गत उनकी ऐतिहासिक आलोचना नहीं हो सकी थी तो

अब समय आ गया है कि वह अपनी बात कहे और मार्क्स के प्रसंग में लासाल की स्थिति स्पष्ट की जाये। जो दंतकथा लासाल की वास्तविक छवि को छुपाये हुए है और उनका गुणगान करती है, वह निश्चय ही पार्टी की आस्था का प्रतीक नहीं बन सकती। आन्दोलन के लिए लासाल की सेवाओं का महत्व कितना ही बढ़ाकर आंका जाये, उसमें उनकी ऐतिहासिक भूमिका दुहरे स्वरूप की है। समाजवादी लासाल के साथ-साथ लफ़्फ़ाज़ लासाल मौजूद हैं। हाट्सफेल्ड मुक़दमे[24] के वकील लासाल आन्दोलनकर्त्ता तथा संगठनकर्त्ता लासाल के माध्यम से प्रकट होते हैं—साधनों के चयन में एक ही तरह का मानवद्वेष, अपने को ऐसे संदिग्ध तथा भ्रष्ट लोगों से घेरने का एक ही तरह का रुझान, जिनका मात्र साधनों के रूप में उपयोग तथा फिर परित्याग किया जा सके। १८६२ तक लासाल व्यवहार में विशिष्ट प्रशियाई बाज़ारू जनवादी थे तथा उनमें सशक्त बोनापार्तपंथी रुझान थे (मैंने अभी अभी मार्क्स के नाम उनके पत्र पढ़े हैं), फिर उन्होंने सहसा विशुद्ध वैयक्तिक कारणों से पलटा खाया और अपना आन्दोलन शुरू कर दिया; दो वर्ष भी नहीं बीते थे कि वह मांग करने लगे कि मज़दूर पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध राजतंत्र का पक्ष लें, फिर वह बिस्मार्क के साथ, जिसका चरित्र उन जैसा ही था, इस तरह षड्यंत्र करने लगे कि यदि उन्हें सौभाग्यवश गोली से न उड़ा दिया गया होता तो यक़ीनन आन्दोलन के साथ असल गद्दारी हो जाती। उनकी आन्दोलनात्मक रचनाओं में मार्क्स से ग्रहण की गयी सही चीज़ें अपनी लासालपंथी, निरपवाद रूप से असत्य तर्कों से इस तरह गुंथी हुई हैं कि उन्हें पृथक करना सम्भव नहीं है। मज़दूरों का जो हिस्सा मार्क्स द्वारा किये गये मूल्यांकन से आहत हुआ अनुभव करता है, वह लासाल को केवल उनके दो वर्षों के आन्दोलन के माध्यम से ही जानता है और यह भी रंगीन चश्मे पहन कर। परन्तु ऐतिहासिक आलोचना इस तरह के पूर्वाग्रहों के सामने सदैव श्रद्धाभाव की मुद्रा धारण किये खड़ी नहीं रह सकती। मार्क्स तथा लासाल के बीच सम्बन्धों की असलियत को हमेशा के लिए प्रकाश में लाना अन्ततः मेरा कर्त्तव्य था। यह काम हो चुका है। फ़िलहाल मैं इस पर सन्तोष कर बैठ सकता हूं। इसके अलावा मुझे दूसरे बहुत-से काम करने हैं। और लासाल के बारे में मार्क्स के प्राथमिक निर्मम निर्णय का अपना प्रभाव पड़ेगा तथा वह दूसरों को साहस प्रदान करेगा। परन्तु यदि मुझे यह करना पड़ा तो मेरे लिए इसके अलावा और कोई विकल्प नहीं रहेगा—मुझे लासाल-सम्बन्धी दन्तकथा का सदा-सर्वदा के लिए सफ़ाया करना पड़ेगा।

राइख़स्टाग धड़े में उठायी जा रही इस तरह की आवाज़ें कि «*Neue Zeit*» पर सेंसर लगाया जाना चाहिए, वास्तव में मज़ेदार मामला है। यह क्या है– समाजवाद विरोधी क़ानून के ज़माने में इस धड़े के अधिनायकत्व का (जो निस्सन्देह आवश्यक था तथा बहुत अच्छी तरह लागू किया गया था) हौवा अथवा वोन श्वीटज़र के कठोर संगठन की याद? यह जर्मन समाजवादी विज्ञान को बिस्मार्क के समाजवाद विरोधी क़ानून से मुक्ति के बाद स्वयं सामाजिक-जनवादी पार्टी के अधिकारियों द्वारा तैयार और लागू किये जानेवाले समाजवाद विरोधी क़ानून के अन्तर्गत रखने का वस्तुतः भव्य विचार है। परन्तु प्रकृति का यह नियम है कि पेड़ आसमान में नहीं उगते।*

«*Vorwärts*»[25] में प्रकाशित लेख मुझे बहुत परेशान नहीं करता। जो कुछ हुआ है, उसके बारे में मैं लीब्कनेख़्त से पूरी तफ़सील का इन्तज़ार करूंगा और तब मैं दोनों का यथासम्भव मैत्रीपूर्ण स्वर में उत्तर दूंगा। «*Vorwärts*» में केवल चन्द ग़लतियां (उदाहरणार्थ, यह कि हम एकता नहीं चाहते थे, कि घटनाओं ने मार्क्स को ग़लत साबित किया, आदि) हैं जिन्हें शुद्ध करने की ज़रूरत है तथा उसमें चन्द स्पष्ट बातें हैं जिनकी पुष्टि होनी चाहिए। मेरा इरादा यह है कि अपनी ओर से मैं इस उत्तर के साथ बहस ख़त्म कर दूं, बशर्ते नये प्रहार या झूठे दावे मुझे इसे जारी रखने के लिए विवश न करें।

दीत्स से कहिए कि मैं उत्पत्ति** पर काम कर रहा हूं। पर आज फ़िशर से चिट्ठी मिली है जिसमें उन्होंने तीन नयी भूमिकाओं[26] की मांग की है!

भवदीय,

फ़्रे० एं०

सबसे पहले रूसी में 'बोल्शेविक' पत्रिका, अंक २२, १९३१ में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

---

*मूल में यह जर्मन कहावत दी गयी है – Es ist dafür gesorgt, dass die Baüme nicht in den Himmel wachsen. – सं०

**एंगेल्स अपनी कृति 'परिवार, निजी सम्पत्ति तथा राज्य की उत्पत्ति' का चौथा जर्मन संस्करण तैयार कर रहे थे (देखें प्रस्तुत खण्ड, भाग २)। – सं०

फ़ेडरिक एंगेल्स

'प्रकृति की द्वन्द्वात्मक गति' की भूमिका[27]

आधुनिक प्रकृति विज्ञान ने, जिसने अकेले ही प्राचीन युगों के प्रतिभाशाली वैज्ञानिकों के प्राकृतिक-दार्शनिक अन्तर्ज्ञान तथा अरबों की अति महत्त्वपूर्ण किन्तु बिखरी हुई खोजों के मुक़ाबले में, जो अधिकांशतः बिना फल प्रदान किये ही विलुप्त हो गयीं, वैज्ञानिक, क्रमबद्ध और सर्वतोमुखी विकास प्राप्त किया है – यह प्रकृति विज्ञान अधिक हाल के समूचे इतिहास की भांति उस शक्तिशाली युग से आरम्भ होता है, जिसे हम जर्मन अपने ऊपर आयी उस समय की राष्ट्रीय विपदा के नाम पर धर्मसुधार का काल कहते हैं और फ़्रांसीसी लोग पुनर्जागरण-काल तथा इतालवी लोग चिन्क्वेचेंटो* कहते हैं, यद्यपि इनमें से कोई भी नाम वस्तुस्थिति की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं करता। यह वह युग था जिसका उदय पन्द्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ था। राजशाही ने नगरों के बर्गरों के समर्थन से सामन्ती अभिजात वर्ग की सत्ता चूर कर दी और मूलतः राष्ट्रीयता पर आधारित उन महान राजतन्त्रों की स्थापना की जिनके अन्तर्गत आधुनिक यूरोपीय राष्ट्र और आधुनिक पूंजीवादी समाज विकसित हुए। और जिस समय बर्गरों और सामन्ती सरदारों की लड़ाई चल ही रही थी, उसी समय जर्मनी के किसान युद्ध ने[28] रंगमंच पर विद्रोही किसानों को ही नहीं (किसानों का इस तरह रंगमंच पर अवतरित होना अब नयी बात नहीं रह गयी थी) बल्कि उनके पीछे-पीछे, हाथों में लाल झण्डा और लबों पर सम्पत्ति के सम्मिलित स्वामित्व का नारा लिये आधुनिक सर्वहारा के अग्रदूतों को भी उतार कर मानो आनेवाले वर्ग-संघर्षों का पूर्वाभास दिया। बैज़न्तिया के ध्वंसावशेषों से निकली पाण्डुलिपियों ने, रोम के खण्डहरों से निकाली गयी प्राचीन एवं अनोखी मूर्तियों ने आश्चर्यचकित पाश्चात्य

---

* चिन्क्वेचेंटो का शाब्दिक अर्थ है पांच सौवें, अर्थात् सोलहवीं शताब्दी।– सं०

जगत् को एक नयी दुनिया के, प्राचीन यूनान की दुनिया के दर्शन कराये। इस दुनिया की जाज्वल्यमान् प्रतिमाओं के आगे मध्य युग के प्रेत छूमन्तर हो गये। इटली में कला ने कल्पनातीत समृद्धि प्राप्त की। यह कला मानो प्राचीन क्लासिकीय युग का प्रतिबिम्ब थी और दुबारा उस ऊंचाई पर कभी नहीं पहुंची। इटली, फ़्रांस और जर्मनी में नये साहित्य का, पहले आधुनिक साहित्य का उदय हुआ। इसके थोड़े ही समय बाद अंग्रेज़ी और स्पेनी साहित्य के क्लासिकीय युग आये। पुराने orbis terrarum* की सीमाएं भंग हो गयी थीं। दुनिया की खोज तो दर-असल अब हुई थी और आगामी काल के विश्व व्यापार के लिए तथा दस्तकारी के उस मैनुफ़ेक्चर में संक्रमण के लिए ज़मीन तैयार हुई थी, जो आगे चलकर बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग का प्रारम्भ-बिन्दु बना। चर्च का आध्यात्मिक अधिनायकत्व चकनाचूर हो गया। अधिकांश जर्मन जातियों ने प्रोटेस्टेंट मत स्वीकार करके इस अधिनायकत्व को प्रत्यक्षतः तिलांजलि दे दी। अरबों से प्राप्त और नव-अन्वेषित यूनानी दर्शन से आहार पाकर पुष्ट स्वतंत्र चिन्तन की एक उल्लासयुक्त नयी भावना लैटिन जातियों में अधिकाधिक घर करने लगी, और १८वीं शताब्दी के भौतिकवाद के लिए मार्ग प्रशस्त करने लगी।

मानवजाति ने इतनी बड़ी प्रगतिशील क्रान्ति अभी तक नहीं देखी थी। यह वह युग था, जो महामानवों की मांग करता था और जिसने महामानवों को जन्म भी दिया। वे चिन्तन-शक्ति में, आवेग एवं चरित्र में, बहुज्ञता एवं विद्या में महामानव थें। पूंजीपति वर्ग के आधुनिक शासन के संस्थापक स्वयं पूंजीवादी परिसीमाओं से सर्वथा मुक्त थे। परिसीमाओं की तो बात दूर रही, उनके चरित्र में युग की साहसिकता कूट-कूट कर भरी हुई थी – किसी में कम, किसी में ज़्यादा। उस युग का ऐसा शायद ही कोई महत्वपूर्ण व्यक्ति हो जिसने देश-देश की यात्रायें न की हों, जो चार या पांच भाषाओं में पारंगत न रहा हो, और जिसने अनेक क्षेत्रों में ख्याति उपलब्ध न की हो। लियोनार्डो डा विंसी महान चित्रकार ही न थे, वह महान गणितज्ञ, यांत्रिकीविद् और इंजीनियर भी थे। भौतिकविज्ञान की अतिविविध शाखाएं बड़ी-बड़ी खोजों के लिये उनकी आभारी हैं। अल्ब्रेख़्त दूरेर चित्रकार, उत्कीर्णक, मूर्तिकार और वास्तुकार थे। इसके अलावा उन्होंने क़िलेबन्दी की वह प्रणाली निकाली जिसमें ऐसे अनेक विचार सन्निविष्ट थे जिनको काफ़ी

---

* शब्दशः "भूमंडल", प्राचीन रोम के निवासी पृथ्वी के लिए इन शब्दों का उपयोग करते थे। – सं०

आगे चलकर मोंतालम्बेर तथा क़िलेबन्दी के आधुनिक जर्मन विज्ञान ने अपनाया। मैकियावेली राजनीतिज्ञ, इतिहासकार और कवि तो थे ही, साथ ही आधुनिक काल के प्रथम उल्लेखनीय सैन्य इतिहास के लेखक भी थे। लूथर ने न केवल चर्च की बल्कि जर्मन भाषा की भी अवगी की घुड़सालों[29] को साफ़ किया। वह आधुनिक जर्मन गद्य के जन्मदाता बने। साथ ही उन्होंने उस विजयगान का पाठ एवं राग तैयार किया जो १६वीं शताब्दी का 'मार्सेइयेज़' गीत बन गया।[30] इसका कारण यह था कि उस युग के नायक अभी तक श्रम-विभाजन की दासता में नहीं बंधे थे जिसके एकांगीपन पैदा करनेवाले, संकुचनकारी प्रभाव हम उनके उत्तरवर्त्तियों में प्रायः पाते हैं। किन्तु उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि समकालीन आन्दोलनों के बीच, व्यावहारिक संघर्ष के बीच ही प्रायः उन सभी के जीवन और क्रिया-कलाप चला करते थे। वे किसी न किसी पक्ष को लेकर लड़ते थे। कुछ बोल और लिख कर लड़ते थे तो कुछ तलवार लेकर, और कुछ दोनों ही तरीक़े से। इसी से उनमें चरित्र की पूर्णता एवं ओज था जो उन्हें पूर्ण मानव बनाता है। किताबी कीड़े बहुत कम पाये जाते थे। वे दूसरी या तीसरी कोटि के व्यक्ति थे, या भीरु कूपमण्डूक थे जो अपने ऊपर आंच के डर से संघर्ष से अलग रहते थे।

प्रकृति विज्ञान भी उस समय आम क्रान्ति के वातावरण में चल रहा था और स्वयं आद्यन्त क्रान्तिकारी था। इसका कारण यह है कि उसे लड़कर जीने का अधिकार प्राप्त करना था। आधुनिक दर्शनशास्त्र के प्रणेता महान इटालियनों के साथ-साथ उसने इन्क्विज़ीशन* के अग्निकुण्डों और कारागारों के लिए अपने शहीद मुहैया भी किये। यह एक मिसाली बात है कि प्रकृति के स्वतंत्र अन्वेषण का दमन करने में प्रोटेस्टेंट लोग कैथोलिकों को मात दे रहे थे। सेर्वीटस रक्त-संचार का पता लगाने ही वाले थे जब काल्विन ने उन्हें ज़िन्दा जलवा डाला। और जहां कैथोलिक इन्क्विज़ीशन ने ज्योर्दानो ब्रूनो को केवल आग में भस्म करके सन्तोष कर लिया था, वहां काल्विन ने सेर्वीटस को दो घंटे तक जीता ही आग में भुनवाया था।

उस अमर कृति का प्रकाशन, जिसके द्वारा कोपेर्निक ने प्रकृति के मामलों में चर्च के प्राधिकार को चुनौती दी थी, हालांकि हिचकिचाते-हिचकिचाते और एक प्रकार से मृत्यु-शय्या पर पहुंच चुकने के बाद ही,[31] वह क्रान्तिकारी क़दम

* "धर्म-द्रोह" के दमन के लिए मध्ययुग में चर्च द्वारा स्थापित क्रूर अदालतें। – सं०

था जिसके ज़रिये प्रकृति विज्ञान ने अपनी स्वतंत्रता घोषित की। यह गोया लूथर द्वारा पोप के फ़रमान के जलाये जाने की पुनरावृत्ति थी। उसी समय से प्रकृति विज्ञान धर्मदर्शन से मुक्त रहा है, यद्यपि दोनों के अपने-अपने दावों के झगड़े अभी हमारे काल तक चलते रहे हैं और कुछ लोगों के दिमाग़ों में ये झगड़े अभी ख़त्म होने से बहुत दूर हैं। परन्तु उस समय से ज्ञान-विज्ञान ने लम्बे डगों से प्रगति की है और हम यह भी कह सकते हैं कि प्रस्थान-बिन्दु से दूरी (समय में) के वर्ग के अनुपात में उसकी प्रगति का वेग बढ़ा। मानो दुनिया को यह दिखा देना था कि कार्बनिक पदार्थ की उच्चतम उपज, मानव मस्तिष्क के लिए रायज गति का नियम अब से अकार्बनिक पदार्थ के लिए रायज गति के नियम का उलटा है।

प्रकृति विज्ञान का जो प्रथम चरण अब आरम्भ हुआ, उसका मुख्य कार्य उपलब्ध सामग्री का पूर्ण अध्ययन करना था। अनेक क्षेत्रों में तो एकदम आदि से ही श्रीगणेश करना था। प्राचीन काल ने यूक्लिडीय ज्यामिति और टोलेमी का सौरमण्डल विरासत में दिया था। अरबों ने दशमलव अंकन पद्धति, प्रारंभिक बीजगणित, आधुनिक संख्यांक और कीमियागरी दी थी। ईसाई मध्य युग ने कुछ भी नहीं दिया था। ऐसी स्थिति में यह अनिवार्य था कि सबसे प्रारम्भिक प्रकृति विज्ञान, अर्थात् भूगोलीय एवं खगोलीय पिंडों की यांत्रिकी ने प्रथम स्थान ग्रहण कर लिया, और उसके साथ-साथ सहायक के रूप में गणितीय विधियों की खोज एवं सिद्धि ने स्थान पाया। इस क्षेत्र में बहुत बड़ा काम हुआ। इस युगान्त में, न्यूटन और लिनीयस जिसके विशिष्ट प्रतिनिधि हैं, हम पाते हैं कि विज्ञान की ये शाखाएं एक निश्चित परिणति पर पहुंच गयीं। सबसे महत्त्वपूर्ण गणितीय विधियों की बुनियादी रूपरेखा निश्चित कर दी गयी – मुख्यतः देकार्त ने विश्लेषणात्मक ज्यामिति का प्रणयन किया, नेपियर ने लघुगणक निकाले, और लीबनिज़ और सम्भवतः न्यूटन ने अवकलन और समाकलन गणित को जन्म दिया। यही बात घन पिंडों की यांत्रिकी के सम्बन्ध में हुई। इसके मुख्य नियमों का सर्वदा के लिए स्पष्टीकरण कर दिया गया। अन्ततः सौरमण्डल के खगोल-विज्ञान में केप्लर ने ग्रहों की गति के नियमों का पता लगाया और न्यूटन ने भूतद्रव्य की गति के सामान्य नियमों के दृष्टिबिन्दु से उनका निरूपण किया। प्रकृति विज्ञान की अन्य शाखाएं अभी इस प्रारम्भिक निष्पत्ति पर पहुंचने से भी बहुत दूर थीं। इस चरण की समाप्ति के निकट आकर ही द्रव एवं गैसीय पिंडों की यांत्रिकी का अध्ययन

थोड़ा आगे बढ़ा।* भौतिकी का अपने यथार्थ रूप में श्रीगणेश ही हुआ था, इससे आगे वह नहीं बढ़ा था। इसमें अपवाद केवल प्रकाशिकी था, जिसकी असाधारण प्रगति का कारण खगोल-विज्ञान की व्यावहारिक आवश्यकताएं थीं। रसायन ने फ़्लोजिस्टनीय सिद्धान्त[32] द्वारा कीमियागरी से पल्ला छुड़ाना शुरू ही किया था। भूविज्ञान खनिज-विज्ञान की भ्रूणावस्था से आगे नहीं बढ़ा था, इसलिये जीवाश्म-विज्ञान का अस्तित्व अभी हो ही नहीं सकता था। अन्त में जीव-विज्ञान के क्षेत्र में लोग अभी उपलब्ध अपार सामग्री को एकत्रित करने और प्राथमिक वर्गीकरण करने में ही लगे हुए थे, जिसका सम्बन्ध केवल वनस्पति और प्राणि-विज्ञान से ही नहीं बल्कि शरीररचना-विज्ञान और शरीरक्रिया-विज्ञान से भी था। जीवन के विभिन्न रूपों की परस्पर तुलना करने, उनके भौगोलिक वितरण तथा जलवायु-सम्बन्धी, आदि जीवन-अवस्थाओं की जांच-पड़ताल करने की तो अभी बात भी नहीं हो सकती थी। इस क्षेत्र में केवल वनस्पति-विज्ञान और प्राणि-विज्ञान लिनीयस की बदौलत किसी सन्निकटीय निष्कर्ष पर पहुंचे थे।

किन्तु इस चरण की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके अन्दर एक विशिष्ट प्रकार का सामान्य विश्व दृष्टिकोण विकसित हुआ जिसका केन्द्रबिन्दु यह मत है कि **प्रकृति सर्वथा अपरिवर्तनीय** है। प्रकृति का आविर्भाव चाहे जिस तरह से भी हुआ हो, पर एक बार आविर्भूत हो जाने के बाद वह अपने सम्पूर्ण जीवनकाल में जैसी की तैसी बनी रहती है। ग्रह और उनके उपग्रह रहस्यमय "प्रथम प्रणोद" द्वारा एक बार गतिशील कर दिये जाने के बाद शाश्वत काल के लिए, या कम से कम प्रलय के क्षण तक, अपने निर्धारित दीर्घवृत्त में घूमते रहते हैं। सितारे अपनी-अपनी जगहों पर सदा के लिये स्थिर और अचल रहते हैं और "सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण" द्वारा एक दूसरे को अपनी-अपनी जगह पर क़ायम रखते हैं। पृथ्वी शाश्वत काल से, अथवा, यदि आप कहना चाहें तो, अपनी सृष्टि के काल से, बिना परिवर्तन के क़ायम है। आज के "पांच महाद्वीप" सदा से चले आ रहे हैं और उनमें सदा से वे ही पहाड़, घाटियां और नदियां, वही जलवायु और वे ही वनस्पति और प्राणी रहे हैं। इनमें केवल वही परिवर्तन या स्थानांतरण आये, जिन्हें मनुष्य के हाथों ने किया है। वनस्पतियों तथा जीवों की जातियां उनके आविर्भाव के समय सदा-सर्वदा के लिये क़ायम हो गयीं। एक प्रकार का

*हाशिये पर एंगेल्स की टीप: "तोरिचेली आल्प्स-पर्वतीय धाराओं के नियंत्रण के सम्बन्ध में।" — सं०

जीवन निरन्तर समान जीवन को उत्पन्न करता जाता है। वस्तुतः लिनीयस ने मानो बहुत बड़ी बात मान ली थी जब उन्होंने स्वीकार किया कि सम्भवतः जहां-तहां कुछ नयी जातियां संकरण द्वारा भी पैदा हुईं। जहां यह माना गया कि मानवजाति के इतिहास का विकास काल में होता है, वहीं इसके विपरीत यह समझा गया कि प्रकृति का इतिहास केवल दिक् के प्रसार में उद्‌घाटित होता है। प्रकृति में हर प्रकार के परिवर्तन, हर प्रकार के विकास का निषेध किया गया। अपने प्रारम्भकाल में अति क्रान्तिकारी प्रकृति विज्ञान ने सहसा अपने को एक घोर रूढ़िग्रस्त प्रकृति के समक्ष खड़ा पाया जिसमें आज भी सब कुछ वैसे ही विद्यमान है जैसे आदि में था और संसार के अन्त तक अथवा शाश्वत काल के लिए सब कुछ वैसा ही रहेगा।

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रकृति विज्ञान ज्ञान में एवं अपनी सामग्री की छानबीन तक में प्राचीन यूनान से जितना ही ऊपर था, उतना ही वह इस सामग्री पर वैचारिक अधिकार प्राप्त करने के मामले में, प्रकृति के सम्बन्ध में आम दृष्टिकोण के मामले में उससे नीचे था। यूनानी दार्शनिकों के लिए विश्व मूलतः एक ऐसी चीज़ था जो विश्रृंखलता की स्थिति से निकली थी, आविर्भूत हुई थी, विकसित हुई थी। पर विवेच्य काल के प्रकृतिविज्ञानियों के लिए वह जड़ीभूत, अपरिवर्तनीय वस्तु थी और उनमें अधिकांश के लिए तो वह एक ही बार में रची गयी वस्तु थी। विज्ञान अब भी धर्मदर्शन के जाल में गहरा फंसा हुआ था। सभी जगह चरम वस्तु के रूप में वह किसी बाह्य प्रणोद को ढूंढ़ता और पाता था जिसे स्वयं प्रकृति द्वारा नहीं समझा जा सकता था। यदि आकर्षण की, जिसे न्यूटन ने सार्वत्रिक गुरुत्वाकर्षण का भारी-भरकम नाम दिया था, भूतद्रव्य के सारगत गुण के रूप में कल्पना कर भी ली गयी हो तो प्रश्न उठता है कि वह दुर्बोध स्पर्शरेखीय बल कहां से आया जिससे ग्रहों की कक्षाएं निकलीं? पशुओं और पेड़-पौधों की अगणित जातियां कहां से आयीं? और सबसे बड़ी बात तो यह है कि मनुष्य कहां से आया जबकि इतना निश्चित है कि वह शाश्वत काल से विद्यमान न था? ऐसे प्रश्नों का उत्तर प्रकृति विज्ञान प्रायः सभी वस्तुओं के सृष्टिकर्त्ता को जिम्मेदार बताकर दिया करता था। इस युग के आरम्भ में कोपेर्निक ने समूचे धर्मदर्शन को ख़ारिज कर दिया था। इस युग के अन्त में न्यूटन ने एक दैवी प्रथम प्रणोद की प्रस्थापना प्रस्तुत की। इस काल में प्रकृति विज्ञान जिस सर्वोच्च सामान्य वैचारिक सूत्र तक पहुंचा वह यह था कि प्रकृति के सारे इन्तज़ाम में प्रयोजन व्याप्त है। वह वोल्फ़ के छिछले प्रयोजनवाद तक पहुंचा, जिसके

अनुसार बिल्लियां इसलिए बनायी गयीं कि चूहों का भक्षण करें, चूहे इसलिए बने कि बिल्लियां उन्हें खायें और समूची प्रकृति इसलिए बनी कि सृष्टिकर्त्ता की बुद्धि प्रकाशित हो। उस युग के दर्शन के लिए यह बहुत ही बड़े श्रेय की बात है कि उसने समकालीन प्रकृति ज्ञान की सीमित अवस्था द्वारा अपने को पथभ्रष्ट नहीं होने दिया। स्पिनोज़ा से लेकर महान फ़्रांसीसी भौतिकवादियों तक वह विश्व की व्याख्या विश्व से ही करने पर अटल रहा और ब्योरेवार ढंग से इसे प्रमाणित करने का काम भावी प्रकृति विज्ञान के ऊपर छोड़ दिया।

अठारहवीं शताब्दी के भौतिकवादियों को मैं इस युग में इसलिए सम्मिलित करता हूं कि उन्हें प्रकृति विज्ञान की उपरोक्त सामग्री के अतिरिक्त और कुछ उपलब्ध न था। कांट की युगान्तरकारी कृति उनके लिए अज्ञात थी, और लाप्लास उनके बहुत बाद में आये।[33] हमें भूलना न चाहिए कि प्रकृति-सम्बन्धी यही पुरातन दृष्टिकोण विज्ञान की प्रगति के कारण छलनी हो जाने के बावजूद १९वीं शताब्दी के पूरे पूर्वार्द्ध पर हावी रहा* और सार रूप में अब भी स्कूलों में पढ़ाया जाता है।**

---

*हाशिये पर एंगेल्स की टीप: "प्रकृति-संबंधी पुरातन दृष्टिकोण वह आधार बना दिया गया जिसे ग्रहण कर प्रकृति विज्ञान का समग्र रूप से विवेचन और सामान्यीकरण संभव हुआ: फ़्रांसीसी विश्वकोशवादियों[34] द्वारा, शुद्ध यांत्रिक तरीक़े से, एक चीज़ के पास दूसरी चीज़; फिर एक ही समय सेंत-साइमन और जर्मन प्राकृतिक दर्शन द्वारा जिसे हेगेल ने पूर्णता प्रदान की।" – **सं०**

** १८६१ तक में एक ऐसा आदमी भी, जिसने अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों से इस दृष्टिकोण के उन्मूलन के लिए ज़रूरी मसाला प्रदान किया था, किस तरह इस दृष्टिकोण से चिपका रह सकता था, इसका पता निम्नांकित विख्यात शब्दों से लग सकता है:

"हमारे सौरमण्डल की सारी व्यवस्थाओं का, जहां तक कि हम उन्हें समझने में समर्थ हैं, लक्ष्य विद्यमान को अक्षुण्ण रखना है, उसका लक्ष्य अपरिवर्तनशील अविरतता है। जिस तरह अति प्राचीन काल से इस धरती तल पर कोई पशु या कोई पेड़-पौधा अधिक सर्वांगपूर्ण नहीं बना अथवा सामान्यत: भिन्न नहीं हुआ, जिस तरह सभी जीवों में हम **पार्श्ववर्त्ती** ही अवस्थायें पाते हैं, **पूर्ववर्त्ती** अथवा **परवर्त्ती** नहीं, जिस तरह हम लोगों की अपनी जाति शरीर के लिहाज़ से सदा एक जैसी रही है, उसी तरह सहअस्तित्वमान् ब्रह्माण्डीय पिंडों में चाहे जितनी भी विविधता क्यों न हो, हमारा यह अनुमान कर लेना उचित न होगा कि ये रूप विकास की विभिन्न मंज़िलें मात्र हैं। इसके विपरीत, प्रत्येक सर्जित वस्तु अपने आप में **समान रूप से** सर्वांगपूर्ण है।" (मैडलर, 'सुबोध खगोल', बर्लिन, १८६१, पांचवां संस्करण, पृ० ३१६)।

प्रकृति-सम्बन्धी इस जड़ीभूत दृष्टिकोण की पहली ईंट खिसकानेवाला व्यक्ति कोई प्रकृति-विज्ञानी न था, वह एक दार्शनिक था। १७५५ में **कांट** की पुस्तक 'प्रकृति-इतिहास और गगनमण्डल का सामान्य सिद्धान्त' निकली। प्रथम प्रणोद के प्रश्न का उन्मूलन कर दिया गया। पृथ्वी और समूचा सौरमण्डल ऐसी वस्तु के रूप में प्रकट हुए जो कालक्रम में **आविर्भूत** हुए थे। यदि अधिकतर प्रकृति-विज्ञानियों को चिन्तन से उतनी चिढ़ न होती (न्यूटन ने इस चिढ़ को "भौतिकी, अधिभूतवाद से सावधान रहना!"[35] कहकर व्यक्त किया था) तो कांट की महती प्रतिभा से सम्पन्न इस एक ही खोज से वे ऐसे निष्कर्ष निकालने को विवश हुए होते, जिनके फलस्वरूप वे अनगिनत भटकावों में पड़ने से तथा ग़लत दिशाओं में भटककर अपरिमित समय और श्रम नष्ट करने से बच जाते। क्योंकि कांट की खोज में आगे की सारी प्रगति का प्रस्थान-बिन्दु विद्यमान था। यदि पृथ्वी आविर्भूत वस्तु है तो उसकी वर्तमान भूतत्त्वीय, भौगोलिक और जलवायवीय अवस्था तथा उसके पेड़-पौधे और प्राणी भी अवश्य इसी प्रकार आविर्भूत हुए हैं; तो दिक् में अस्तित्व का ही नहीं, वरन् काल-क्रम में भी उसका एक इतिहास होना चाहिए। यदि इस दिशा में तत्काल, निर्णायक रूप से अन्वेषण का काम और आगे बढ़ाया जाता, तो प्रकृति विज्ञान आज की अपेक्षा कहीं आगे बढ़ा हुआ होता। लेकिन दर्शन कितना फलप्रद हो सकता है? कांट की कृति का उस वक़्त तक कोई फल नहीं निकला जब तक कि, वर्षों बाद, लाप्लास और हेर्शल ने उसकी अंतर्वस्तु को प्रतिपादित और अधिक ब्योरे के साथ प्रमाणित नहीं किया और इस प्रकार "नीहारिका-परिकल्पना"* को धीरे-धीरे मान्य नहीं बना दिया। इसके बाद होनेवाली कुछ और खोजों ने इस सिद्धान्त की विजय का झण्डा गाड़ दिया। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण खोजें ये थीं: स्थिर नक्षत्रों की अपनी गति, ब्रह्माण्डीय अवकाश में प्रतिरोधक माध्यम का प्रदर्शन, ब्रह्माण्डीय पदार्थ की रासायनिक एकरूपता तथा कांट द्वारा परिकल्पित तापदीप्त नीहारिका पुंजों के अस्तित्व का वर्णक्रमीय विश्लेषण द्वारा प्रमाण प्रस्तुत किया जाना।**

पर यह शंका उठायी जा सकती है कि यदि उदित होती इस धारणा को

---

* यह परिकल्पना कि आकाशीय पिण्डों की उत्पत्ति तापदीप्त नीहारिकाओं से हुई है। – **सं०**

** हाशिये पर एंगेल्स की टीप: "ज्वार-भाटे के कारण घूर्णन में मन्दन – यह भी कांट की ही पूर्वधारणा थी, जो अब जाकर समझी जाने लगी है।" – **सं०**

कि प्रकृति केवल **अस्तित्वमान्** ही नहीं है, बल्कि **अस्तित्व में आती है** और **अस्तित्व से बाहर चली जाती है,** एक और स्थान से समर्थन नहीं मिला होता तो क्या अधिकतर प्रकृति-विज्ञानी परिवर्तनशील पृथ्वी के अपरिवर्तनशील जीवों की जन्मदात्री होने के अन्तर्विरोध को इतनी जल्दी ज्ञात कर लेते? भूविज्ञान का उदय हुआ और उसने न केवल एक के बाद एक करके बनी तथा एक के ऊपर एक जमी पार्थिव परतों को दिखलाया, बल्कि इन परतों में दबे लुप्त जानवरों के खोल और अस्थि-पंजर तथा लुप्त पेड़-पौधों के तने, पत्ते और फल भी दिखलाये। लोगों को यह मानने का निश्चय करना ही पड़ा कि समग्र रूप से पृथ्वी ही नहीं, बल्कि उसका वर्तमान धरातल तथा उसके ऊपर रहनेवाली वनस्पतियों और प्राणियों का एक कालक्रमिक इतिहास रहा है। आरम्भ में तो यह बात काफ़ी अनिच्छापूर्वक मानी गयी। पृथ्वी पर क्रांतियों का कुविए का सिद्धान्त शब्दों में क्रान्तिकारी परन्तु तत्त्वतः प्रतिक्रियावादी था। एक बार के दैवी सृजन के स्थान पर इस सिद्धान्त ने बार-बार के सृजन के एक पूरे क्रम की धारणा प्रस्तुत की। दैवी चमत्कार को उसने प्रकृति का एक महत्वपूर्ण लीवर बना दिया। सर्वप्रथम ल्येल ने सृष्टिकर्त्ता की मर्ज़ी के कारण होनेवाली आकस्मिक क्रांतियों के स्थान पर पृथ्वी के मंथरगति से होनेवाले रूपान्तरण के क्रमिक प्रभावों को स्थापित कर भूविज्ञान को पहली बार कुछ अक़ल दी।*

अपरिवर्तनीय जैव जातियों की मान्यता के साथ ल्येल का सिद्धान्त उनके पूर्ववर्त्तियों के सिद्धान्तों से भी अधिक बेमेल था। पृथ्वी की सतह तथा जीवन की सारी अवस्थाओं के क्रमिक रूपान्तरण के विचार का प्रत्यक्ष परिणाम यह हुआ कि जीव क्रमशः रूपान्तरित हुए और बदलते परिवेश के साथ बदले; जैव जातियों में परिवर्तनीयता का सिद्धांत आया। पर परम्परा केवल कैथोलिक चर्च में ही प्रबल शक्ति नहीं है, प्रकृति विज्ञान में भी है। स्वयं ल्येल ने वर्षों तक इस अन्तर्विरोध को नहीं देखा। उनके शिष्यों ने तो उसे और भी कम देखा। इसका कारण यही बताया जा सकता है कि प्रकृति विज्ञान में तब तक श्रम-विभाजन

---

*ल्येल के मत की, कम से कम अपने पहले रूप में, ख़ामी यह थी कि उन्होंने पृथ्वी पर क्रियाशील शक्तियों की स्थिर–गुण और परिमाण में स्थिर–रूप में कल्पना की थी। पृथ्वी का धीरे-धीरे ठण्डा होते जाना उन्हें अज्ञात है, पृथ्वी किसी एक दिशा में नहीं विकसित होती है, बल्कि वह क्रमहीन और आकस्मिक ढंग से परिवर्तित होती जाती है।

का बोलबाला हो गया था, उसने प्रत्येक व्यक्ति को कमोबेश अपने-अपने क्षेत्र के अन्दर बन्द कर दिया था। बहुत थोड़े ही लोग बच रहे थे जिन्हें इस श्रम-विभाजन ने व्यापक दृष्टिकोण से वंचित नहीं कर दिया था।

भौतिकी ने इस बीच ज़बर्दस्त प्रगति की थी। इस प्रगति के परिणामों को तीन अलग-अलग व्यक्तियों ने १८४२ में, जो प्रकृति-विज्ञान की इस शाखा के लिए युगान्तरकारी वर्ष था, प्रायः साथ-साथ उपस्थित किया। हीलब्रोन में मायर ने और मैंचेस्टर में जूल ने ऊष्मा का यांत्रिक ऊर्जा में और यांत्रिक ऊर्जा का ऊष्मा में रूपान्तरण प्रदर्शित किया। ऊष्मा का यांत्रिक तुल्यांक निर्धारित हो जाने से यह परिणाम निर्विवाद बन गया। इसके साथ ही ग्रूव ने, जो पेशे से प्रकृति-विज्ञानी नहीं थे, बल्कि इंगलैंड के एक वकील थे, उपलब्ध भिन्न-भिन्न भौतिकीय परिणामों के विशदीकरण मात्र से यह सिद्ध कर दिया कि निश्चित अवस्थाओं के अन्तर्गत समस्त तथाकथित भौतिक ऊर्जाएं—यांत्रिक ऊर्जा, ऊष्मा, प्रकाश, विद्युत, चुम्बकत्व, और यहां तक कि तथाकथित रासायनिक ऊर्जा भी—ऊर्जा की क्षति हुए बिना, एक दूसरे में रूपान्तरित हो जाती हैं। इस तरह उन्होंने एक और बार, भौतिकी की पद्धति से, देकार्त का यह सिद्धान्त प्रमाणित कर दिया कि विश्व में विद्यमान गति की मात्रा स्थिर है। इस तरह विभिन्न भौतिक ऊर्जाएं, जो मानो भौतिकी की अपरिवर्तनीय "जातियां" थीं, निश्चित नियमों के अनुसार एक दूसरे में परिवर्तित होनेवाले, भूतद्रव्य की गति के विभेदित रूपों में बदल गयीं। इस या उस मात्रा में भौतिक ऊर्जाओं की विद्यमानता में जो अनायासपन दिखाई देता था, वह उनके अन्तःसम्बन्धों और परिवर्तनों के प्रमाण द्वारा विज्ञान से उन्मूलित हो गया। जिस तरह खगोल-विज्ञान के साथ इसके पहले हुआ था, उसी तरह भौतिकी भी एक ऐसे परिणाम पर पहुंच गयी जो अनिवार्यतः यह इंगित करता था कि गतिमान भूतद्रव्य का सनातन चक्र ही चरम निष्पत्ति है।

लावोइज़िए और ख़ासकर डाल्टन के बाद से रसायन की जो अद्भुत तेज़ प्रगति हुई, उसने प्रकृति-सम्बन्धी पुरानी धारणाओं पर एक और पहलू से प्रहार किया। अभी तक जीवित शरीर में ही बननेवाले यौगिकों के अजैव विधियों से उत्पन्न किये जाने से यह सिद्ध हो गया कि रसायन के नियम जैव कार्यों के लिए उतने ही मान्य हैं जितने अजैव कार्यों के लिए। इस तरह कांट द्वारा कभी न पटने योग्य मानी जानेवाली अजैव और जैव प्रकृति के बीच की खाई भी बहुत हद तक पट गयी।

जैव अन्वेषण के क्षेत्र में भी, मुख्यतः पिछली शताब्दी के मध्य से नियमित रूप से आयोजित वैज्ञानिक यात्राओं और अभियानों ने दुनिया के सभी भागों में यूरोपीय उपनिवेशों के वहां रहनेवाले विशेषज्ञों द्वारा और सम्यक् अन्वेषण ने, तथा इनके अतिरिक्त जीवाश्म-विज्ञान, शरीररचना-विज्ञान और शरीरक्रिया-विज्ञान की, विशेषकर ख़ुर्दबीन के नियमित उपयोग तथा कोशिका की खोज के बाद से हुई आम प्रगति ने इतना ढेर-सा मसाला इकट्ठा कर दिया था कि अब तुलनात्मक विधि * का उपयोग करना सम्भव एवं साथ ही साथ आवश्यक भी हो गया था। एक ओर विभिन्न प्राणिसमूहों और पादपसमूहों की जीवनावस्थाएं तुलनात्मक प्राकृतिक भूगोल-विज्ञान के ज़रिए निर्धारित की गयीं। दूसरी ओर, विभिन्न जीवियों की उनके सजातीय अंगों के अनुसार परस्पर तुलना की गयी। यह तुलना केवल उनकी परिपक्व अवस्था में ही नहीं, बल्कि विकास की सभी अवस्थाओं में की गयी। जितनी ही गहराई और यथातथ्यता के साथ यह अनुसन्धान-कार्य किया गया, उतना ही अधिक अपरिवर्तनीय रूप में स्थिर जैव प्रकृति की व्यवस्था खंड-खंड होती गयी। केवल यही नहीं हुआ कि वनस्पतियों और पशुओं की पृथक् जातियां अधिकाधिक अविभाज्य रूप में घुलमिल गयीं, बल्कि एम्फ़िआक्सस और लेपिडोसिरेन[36] जैसे अनेक प्राणियों का पता चला, जिन्होंने पहले के सभी वर्गीकरण को हास्यास्पद बना दिया। ** अन्ततोगत्वा ऐसे भी जीव मिले, जिनके बारे में यह बताना ही सम्भव न था कि वे वनस्पति जगत के हैं या पशु जगत के। जीवाश्म-विज्ञान की सूची के रिक्त स्थान अधिकाधिक भरते गये। इससे वे लोग भी, जो सबसे अधिक हिचकिचा रहे थे, यह स्वीकार करने को विवश हुए कि समग्र जैव जगत तथा अलग-अलग जीवियों के विकास के इतिहास में मार्के की समानता है। यह समानता ही एरियाद्ने का वह सूत्र थी, जिसे पकड़कर वनस्पति-विज्ञान एवं प्राणि-विज्ञान के लिए उस भूलभुलैये के बाहर निकलना सम्भव हुआ जिसमें वे अधिकाधिक फंसते जाते दिखाई देते थे। यह एक उपलक्षक बात है कि जिस समय कांट ने सौरमण्डल की शाश्वतता पर प्रहार किया, प्रायः उसी समय क० फ़े० वोल्फ़ ने, १७५९ में, जातियों की स्थिरता पर पहली चोट की और वंशानुक्रम का सिद्धान्त प्रतिपादित किया।[38] पर वोल्फ़ ने अपनी असाधारण प्रतिभा द्वारा जिस चीज़ का पूर्वाभास मात्र दिया था, उसे ओकेन, लामार्क और बायर

* हाशिये पर एंगेल्स की टीप: "औणिकी"। – सं०

** हाशिये पर एंगेल्स की टीप: "सेराटोड्स। आर्केओप्टेरिक्स, आदि"[37]। – सं०

ने स्पष्ट आकार दिया, और ठीक सौ वर्ष बाद, १८५९ में, डार्विन ने उसका झण्डा गाड़ दिया।[39] प्रायः साथ ही साथ यह प्रमाणित किया गया कि प्रोटोप्लाज्म और कोशिका, जिनके बारे में यह पहले ही सिद्ध किया जा चुका था कि वे सभी जीवों के चरम आकृतिक संघटक हैं, स्वतंत्र रूप से रहनेवाले निम्नतम जैव रूप हैं। इसने जैव और अजैव प्रकृति का अन्तर तो अल्पतम कर ही दिया, साथ ही जीवों के वंशानुक्रम के सिद्धान्त के मार्ग में आड़े आ रही एक सबसे बड़ी मौलिक कठिनाई को भी दूर कर दिया। प्रकृति की नवीन धारणा अब अपनी सभी प्रमुख विशेषताओं के साथ पूर्ण हो गयी: सारी अनमनीयता समाप्त हो गयी, सारी स्थिरता का लोप हो गया, पहले नित्य समझी जानेवाली समस्त वैशेषिकता अनित्य बन गयी, सम्पूर्ण प्रकृति चिरन्तन प्रवहमान् तथा चक्रीय रूप में गतिमान दिखाई देने लगी।

* * *

इस तरह हम यूनानी दर्शन के महान संस्थापकों की चिन्तन पद्धति की ओर फिर वापस लौट आते हैं। इनके अनुसार छोटी से छोटी चीज से लेकर बड़ी से बड़ी चीज़ तक, बालुका-कणों से लेकर सूर्यों तक, एक प्रोटिस्टा[40] से लेकर मनुष्य तक समूची प्रकृति का अस्तित्व चिरन्तन रूप से आविर्भाव और तिरोभाव में, अविरत प्रवाह में, अश्रान्त गति और परिवर्तन में है। मूलभूत अन्तर केवल यह है कि यूनानियों के इस चिन्तन का आधार असाधारण प्रतिभाजन्य अन्तर्ज्ञान था, पर हम इस परिणाम पर अनुभव पर आधारित वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा पहुंचे हैं, और इसलिए यह हमें कहीं निश्चित और स्पष्ट रूप में दिखायी देता है। सच्ची बात तो यह है कि इस चक्रीय गति के अनुभवजन्य प्रमाण में अब भी कुछ रिक्त स्थान रह गये हैं। पर जितना कुछ निश्चयपूर्वक प्रमाणित हो चुका है उसकी तुलना में ये नगण्य हैं। वर्ष प्रति वर्ष इन स्थानों की अधिकाधिक पूर्ति भी होती जा रही है। ब्योरेवार प्रमाण अपूर्ण के सिवा हो भी क्या सकता है यदि हम इस बात को याद रखें कि विज्ञान की अन्तर्ग्रहीय खगोल-विज्ञान, रसायन, भूविज्ञान जैसी सबसे महत्त्वपूर्ण शाखाओं का वैज्ञानिक अस्तित्व मुश्किल से १०० वर्षों से है, शरीरक्रिया-विज्ञान में तुलनात्मक विधि का प्रयोग मुश्किल से ५० वर्ष से हो रहा है, और प्रायः सभी जैव विकास के मौलिक रूप – कोशिका – की खोज हुए मुश्किल से ४० वर्ष बीते हैं!

* * *

आकाशगंगा के बाह्यतम तारा-चक्र से घिरे हमारे ब्रह्माण्डीय द्वीप के अगणित सूर्य और सौरमण्डल उफनते और दहकते वाष्पीय पुंजों के सिकुड़ने और शीतल होने से विकसित हुए। इनकी गति के नियमों का सम्भवतः तब पता चल सकेगा जब शताब्दियों के प्रेक्षण से हमें तारों की असली गति का आभास मिल जाये। स्पष्ट है कि यह विकास सर्वत्र एक ही रफ़्तार से नहीं हुआ है। खगोल-विज्ञान में यह धारणा अधिकाधिक आविर्भूत हो रही है कि हमारे तारामण्डल के अन्दर ऐसे अन्धकारपूर्ण पिण्ड हैं जो ग्रहीय पिण्ड मात्र नहीं हैं, अतः वे 'बुझे सूर्य हैं (मैडलर)। दूसरी ओर, (सेक्की के मतानुसार) वाष्पीय नीहारिका-खण्डों का एक अंश हमारे तारामण्डल के अन्तर्गत है, ये ऐसे सूर्य हैं जो अभी पूरे नहीं बने हैं। इससे यह सम्भावना अपवर्जित नहीं हो जाती कि, जैसा कि मैडलर का कहना है, अन्य नीहारिकाएं दूरस्थ स्वतंत्र ब्रह्माण्डीय द्वीप हैं जिनके विकास की आपेक्षिक मंज़िल जरूर वर्णक्रमदर्शी द्वारा निर्धारित की जानी चाहिए।

पृथक् नीहारिका पुंज से सौरमण्डल किस तरह विकसित होता है, इसे लाप्लास ने ब्योरों के साथ जिस ख़ूबी से सिद्ध किया है वह अभी तक बेजोड़ है। बाद के विज्ञान ने लाप्लास की अधिकाधिक परिपुष्टि की है।

इस तरह बने अलग-अलग पिण्डों, यानी सूर्यों, ग्रहों और उपग्रहों में शुरू में भूतद्रव्य-गति का वह रूप प्रचलित होता है, जिसे हम ऊष्मा कहते हैं। सूर्य का इस समय जो तापमान है, उस तापमान की अवस्था में भी तत्त्वों के रासायनिक यौगिक का प्रश्न नहीं उठता। ऐसी अवस्था में ऊष्मा किस हद तक बिजली या चुम्बकत्व में परिवर्तित होती है, यह अविरत सौर-अवलोकन से ही ज्ञात हो सकेगा। इसे प्रमाणित ही समझना चाहिए कि सूर्य में होनेवाली यांत्रिक गति ऊष्मा और गुरुत्वाकर्षण की टक्कर से ही उत्पन्न होती है।

पृथक् पिण्ड जितने ही छोटे होते हैं, उतनी ही जल्दी वे ठण्डे हो जाते हैं। सबसे पहले उपग्रह, क्षुद्र-ग्रह और उल्काएं शीतल हो जाती हैं, जैसे कि हमारा चन्द्रमा दीर्घ काल से बुझा हुआ है। ग्रह इससे अधिक धीमे-धीमे ठण्डे होते हैं। और केन्द्रीय पिण्ड सबसे अधिक धीमे-धीमे।

क्रमिक शीतलता के आते जाने के साथ गति के भौतिक रूपों की, जो एक दूसरे में रूपान्तरित हो जाते हैं, अन्योन्यक्रिया अधिकाधिक सम्मुख आती जाती है, और अन्ततः स्थिति एक ऐसे बिन्दु पर पहुंच जाती है, जब रासायनिक बन्धुता अपने को प्रगट करने लगती है। जो तत्त्व पहले रासायनिक तौर पर परस्पर उदासीन थे, वे एक-एक कर रासायनिक तौर से विभेदित होने लगते हैं, रासाय-

निक गुणधर्म प्राप्त कर लेते हैं, और एक दूसरे के साथ संयोजित होने लगते हैं। ये संयोजन भी घटते ताप के साथ, जो केवल हर तत्त्व पर ही नहीं, बल्कि तत्त्वों के हर अलग-अलग संयोजन पर भी भिन्न-भिन्न ढंग से असर डालता है, लगातार बदलते हैं, गैसीय भूतद्रव्य के एक अंश के आगे चलकर पहले द्रव और फिर ठोस अवस्था में गुज़रने के साथ और इस तरह उत्पन्न नयी अवस्थाओं के साथ भी परिवर्तित होते हैं।

वह काल जबकि ग्रह का एक ठोस खोल बन जाता है तथा उसके धरातल पर जल के आगार बन जाते हैं उस काल से मेल खाता है जब केन्द्रीय पिण्ड से प्राप्त ऊष्मा की तुलना में उसकी अपनी आन्तरिक ऊष्मा अधिकाधिक कम होती जाती है। उसका वायुमण्डल उस अर्थ में, जिसमें हम आज इस शब्द को ग्रहण करते हैं, ऋतु-व्यापारों का क्षेत्र बन जाता है। उसका धरातल भौमिक परिवर्तनों का क्षेत्र बन जाता है जिनमें वायुमण्डलीय अवक्षेपण के फलस्वरूप होनेवाले निक्षेपों का, तापदीप्त द्रव अन्तर के धीरे-धीरे घटते बाह्य प्रभावों की तुलना में, अधिकाधिक प्राधान्य होता जाता है।

अन्ततः यदि ताप इस हद तक सम हो जाता है कि धरातल के काफ़ी बड़े हिस्से के ऊपर वह कम से कम उस सीमा से आगे नहीं जाता जिसके अन्दर एल्बूमीन जीवन धारण करने की क्षमता रखता है, तो अन्य रासायनिक पूर्वावस्थाओं के अनुकूल होने पर जीवित प्रोटोप्लाज़्म की रचना होती है। हमें अभी तक ज्ञात नहीं कि ये पूर्वावस्थाएं क्या हैं। यह आश्चर्यजनक नहीं है, क्योंकि अभी तक एल्बूमीन के रासायनिक सूत्र का भी पता नहीं चला है और हम यह तक नहीं जानते कि रासायनिक रूप से भिन्न कितने एल्बूमीनीय काय हैं और क्योंकि सिर्फ़ लगभग दस वर्ष पूर्व ही यह तथ्य ज्ञात हुआ था कि पूर्णतया संरचनाहीन एल्बूमीन ही जीवन के सभी व्यापार—पाचन, रेचन, गति, संकुचन, उद्दीपनों के प्रति प्रतिक्रिया और प्रजनन—सम्पन्न करता है।

सम्भवतः हज़ारों वर्षों के बीतने के बाद उन अवस्थाओं का आविर्भाव हुआ जिनमें अगला क़दम उठ सका और यह आकारहीन एल्बूमीन केन्द्रक और झिल्ली के बनने के ज़रिये प्रथम कोशिका उत्पन्न कर सका। पर इस प्रथम कोशिका ने पूरे जीव-जगत् के विकास का आधार भी प्रदान किया। जैसा कि जीवाश्म-विज्ञान के रेकार्ड के सम्पूर्ण तथ्यों के आधार पर माना जा सकता है, सर्वप्रथम अकोशिकीय और कोशिकीय प्रोटिस्टाओं की अगणित जातियां विकसित हुई, जिनमें से केवल एक, Eozoon canadense[41] ही हमारे युग तक चलता आया है और

जिसमें से कुछ क्रमशः प्रथम उद्भिज्जों में तथा दूसरे प्रथम पशुओं के रूप में परिवर्तित हो गये। प्रथम पशुओं से ही, सारतः विभेदन की क्रिया के आगे बढ़ने के द्वारा ही, पशुओं के अगणित वर्ग, उपवर्ग, वंश, जातियां और प्रजातियां विकसित हुई। अन्त में कशेरुकी पैदा हुए, अर्थात् वह रूप पैदा हुआ जिसके अन्दर तंत्रिका तंत्र अपना पूर्ण विकास प्राप्त करता है। और अन्त में उनके बीच वह कशेरुकी पैदा हुआ जिसमें प्रकृति अपनी चेतना प्राप्त करती है—यानी मनुष्य पैदा हुआ।

मनुष्य का आविर्भाव भी विभेदन की क्रिया द्वारा होता है: केवल व्यक्तिगत तौर पर ही नहीं, अर्थात् एकल अण्ड कोशिका से विभेदित होकर प्रकृति द्वारा उत्पन्न सबसे जटिल जीव के रूप में ही नहीं, बल्कि ऐतिहासिक तौर पर भी। जब हज़ारों वर्षों के संघर्ष के बाद पैर से हाथ का विभेदन हो गया और सीधा खड़ा होने की विशेषता आ गयी, तो मनुष्य बन्दर से पृथग्भूत हो गया तथा स्पष्ट वाणी के विकास का तथा मस्तिष्क के प्रबल विकास का आधार क़ायम हो गया। इसके बाद तो मानव और बन्दर का अन्तर अलंघनीय हो गया। हाथ के विशेषीकृत होने में **औज़ार** का संकेत है, और औज़ार में विशिष्ट मानवीय क्रियाकलाप का, प्रकृति पर मानव-प्रतिक्रिया के रूपान्तरकारी प्रभाव का—उत्पादन का—संकेत है। शब्द के संकीर्णतर अर्थ में पशुओं के पास भी औज़ार होते हैं, पर ये शरीर के अंग के रूप में ही होते हैं, जैसे चींटी, मधुमक्खी और बीवर। पशु भी उत्पादन करते हैं परन्तु चारों ओर की प्रकृति पर उनका उत्पादक प्रभाव प्रकृति की सापेक्षता में शून्य के ही बराबर होता है। केवल मनुष्य ही प्रकृति पर अपनी छाप डालने में सफल हुआ है। उसने न केवल उद्भिज्जों और पशुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटाया है बल्कि अपने निवासस्थान की शक्ल-सूरत और जल-वायु में, और यहां तक कि स्वयं उद्भिज्जों और पशुओं में ऐसे परिवर्तन किये हैं कि उसके क्रियाकलाप के परिणाम इस भूमण्डल के सामान्य विलोप के साथ ही विलुप्त हो सकते हैं। और यह उसने प्रधानतः एवं मूलरूपेण **हाथ** के ज़रिए किया है। प्रकृति के कायापलट के लिए मानव का अब तक का सबसे प्रबल औज़ार भाप का इंजन तक एक औज़ार होने के नाते अन्ततः हाथ पर ही निर्भर है। लेकिन हाथ के विकास के साथ-साथ क़दम-ब-क़दम दिमाग़ का विकास हुआ। चेतना का आगमन हुआ, सबसे पहले पृथक् व्यवहारतः उपयोगी परिणाम उत्पन्न करने की अवस्थाओं की चेतना आयी, इसके बाद, अधिक सुविधाप्राप्त जातियों में तथा पहले की चेतना से निःसृत, इन अवस्थाओं को शासित करनेवाले प्राकृतिक नियमों का अन्तर्ज्ञान हुआ। और प्रकृति के नियमों के तेज़ी से बढ़ते ज्ञान के साथ

प्रकृति पर प्रतिचार करने के साधन भी बढ़े। अकेला हाथ ही भाप-इंजन कदापि उपलब्ध नहीं कर सकता था यदि मनुष्य का मस्तिष्क भी हाथ के सहसम्बन्ध में और साथ-साथ तथा अंशत: उसकी बदौलत विकसित नहीं हुआ होता।

मनुष्य के साथ हम **इतिहास** में प्रवेश करते हैं। इतिहास पशुओं का भी है। यह है उनकी व्युत्पत्ति और वर्तमान अवस्था तक उनके क्रमिक विकास का इतिहास। पर यह इतिहास उनके लिए निर्मित होता है। यदि किसी हद तक वे स्वयं इसमें भाग लेते हैं तो यह उनके ज्ञान अथवा इच्छा के बिना होता है। दूसरी ओर, मनुष्य पशुओं से – इस शब्द के संकीर्ण अर्थ में – जितना ही अधिक दूर होते जाते हैं, उतना ही अधिक अपना इतिहास वे स्वयं चेतन रूप से रचते हैं, उतना ही इस इतिहास पर अपूर्वदृष्ट परिणामों और अनियंत्रित शक्तियों का प्रभाव कम होता जाता है, और उतना ही ऐतिहासिक परिणाम पहले से निर्दिष्ट लक्ष्य के ठीक-ठीक अनुरूप होता है। परन्तु परिणाम एवं लक्ष्य की इस अनुरूपता के मानदण्ड को यदि हम मानव इतिहास पर लागू करें, यहां तक कि आज की सबसे अधिक विकसित जातियों पर भी लागू करें, तो हम पाते हैं कि प्रस्तावित लक्ष्यों और वास्तविक परिणामों के बीच अब भी बड़ा भारी अन्तर है, कि अपूर्वदृष्ट परिणामों का ही बाहुल्य है और अनियंत्रित शक्तियां योजना के अनुसार संचालित शक्तियों से अभी तक कहीं अधिक शक्तिशाली हैं। और उस समय तक और कुछ हो भी नहीं सकता जब तक कि मनुष्यों का सबसे मूलभूत ऐतिहासिक क्रियाकलाप, वह क्रियाकलाप जिसने उन्हें पशुता से उठाकर मानव बनाया है और जो उनके अन्य सभी प्रकार के क्रियाकलाप की भौतिक बुनियाद है, अर्थात् उनके जीवन-निर्वाह के साधनों का उत्पादन, वर्तमान युग में सामाजिक उत्पादन, अनियंत्रित शक्तियों के अनभिप्रेत प्रभावों के घात-प्रतिघात के विशेष रूप से अधीन है और वह वांछित लक्ष्य की प्राप्ति अपवाद रूप में ही करता है, जबकि अधिकतर ऐसा होता है कि उसे इच्छित लक्ष्य के ठीक उलटे ही परिणाम प्राप्त होते हैं। सबसे आगे बढ़े हुए औद्योगिक देशों में हमने प्रकृति की शक्तियों को वशीभूत किया है और उन्हें मानवजाति की सेवा में नियोजित किया है। इस प्रकार हमने उत्पादन को अपरिमित रूप में बढ़ा लिया है और एक बच्चा भी अब पहले के सौ वयस्कों से अधिक पैदा करने लगा है। परिणाम क्या है? बढ़ता हुआ अतिश्रम और आम जनता का बढ़ता हुआ कष्ट। इसके अलावा हर दसवें वर्ष भयंकर आर्थिक विनाश। डार्विन को पता नहीं था कि वह मानवजाति के प्रति और ख़ासकर अपने देशवासियों के प्रति कितना बड़ा व्यंग्य कर रहे थे जब उन्होंने

यह दर्शाया था कि हमारे अर्थशास्त्रियों द्वारा उच्चतम उपलब्धि कहकर प्रशंसित मुक्त होड़, अस्तित्व के लिए संघर्ष **पशु जगत** की प्रकृत अवस्था है। सामाजिक उत्पादन का वह चेतन संगठन ही, जिसमें उत्पादन और वितरण नियोजित ढंग से होते हैं, मानवजाति को शेष पशु जगत से सामाजिक तौर पर ऊंचा उठा सकता है, उसी तरह, जिस तरह सामान्य उत्पादन ने विशिष्ट तौर पर मनुष्यों को उठाया है। ऐतिहासिक विकास ऐसे संगठन को दिन प्रति दिन अधिक अपरिहार्य बना रहा है। वह दिन प्रति दिन उसे अधिक सम्भव भी बना रहा है। जिस दिन ऐसा होगा उस दिन से इतिहास का एक नया युग आरम्भ होगा। इस युग में मानवजाति स्वयं और मानवजाति के साथ उसके क्रियाकलाप की सभी शाखाएं, विशेषकर प्रकृति-विज्ञान, इतनी बड़ी प्रगति करेंगी जिसके आगे अभी तक की सारी उन्नति बिल्कुल फीकी पड़ जायेगी।

पर "जो जन्मता है वह मरण का भी पात्र है"।* शायद करोड़ों वर्ष लग जायें, लाखों पीढ़ियों का जन्म और मरण हो चुके, पर वह दिन आयेगा ही जब सूर्य का कम होता जाता ताप ध्रुवों की ओर से बढ़ती आती बर्फ़ को पिघलाने के लिए अपर्याप्त हो जायेगा, जब मानवजाति, जो अधिकाधिक विषुवत रेखा के आसपास सिमटती जायेगी, वहां भी जीवन धारण के लिए पर्याप्त ऊष्मा न पायेगी, जब धीरे-धीरे करके जैव जीवन के अन्तिम चिह्न भी मिट जायेंगे, और जब चन्द्रमा की भांति बुझा और बर्फ़ सा जमा पृथ्वी-गोलक निरन्तर संकीर्ण होती हुई कक्षा में वैसे ही बुझे हुए सूर्य के चारों ओर, गहनतम अन्धकार में चक्कर लगाते-लगाते एक दिन उसमें गिर पड़ेगा। कुछ ग्रहों का पहले ही यह हाल हो चुका रहेगा और कुछ का उसके बाद यह हाल होगा। अपने सदस्यों की सामंजस्यपूर्ण व्यवस्था वाले, उष्ण, ज्योतिर्मय सौरमण्डल के स्थान पर एक ठण्डा, मृत गोला ही ब्रह्माण्डीय अवकाश में अकेला घूमता रह जायेगा। और जो हाल हमारे सौरमण्डल का होगा वही कभी न कभी हमारे ब्रह्माण्डीय द्वीप के अन्य सौरमण्डलों का होगा, और वही अगणित अन्य ब्रह्माण्डीय द्वीपों का भी होगा, उनका भी जिनका प्रकाश एक भी जीवित मानव के रहते हुए पृथ्वी पर नहीं पहुंचेगा।

जब ऐसा सौरमण्डल अपना जीवन-इतिहास सम्पूर्ण कर लेगा, समस्त अन्तवान् सत्ता की नियति – काल – का ग्रास बन जायेगा, तब क्या होगा? क्या सूर्य का

---

* **गेटे** के 'फ़ाउस्ट' में मेफ़िस्टोफ़ीलीस की उक्ति। – **सं०**

मृत शरीर अनन्त अवकाश में चिरकाल तक मुर्दे के रूप में घूमता रहेगा, और क्या एक समय अपरिमित विविधता के साथ विभेदित सभी प्राकृतिक शक्तियां सदा के लिए गति के एक रूप में, आकर्षण में तिरोहित हो जायेंगी?

"या", जैसे कि सेक्की ने जिज्ञासा की है (पृष्ठ ८१०), "क्या प्रकृति में ऐसी शक्तियां विद्यमान हैं जो मृत मण्डल को तापदीप्त नीहारिका की उसकी मूल अवस्था में फिर से परिवर्तित कर सकती हैं और उसमें नवजीवन का संचार कर सकती हैं? हम नहीं जानते।"

बहरहाल उस अर्थ में हम इसे नहीं जानते जिस अर्थ में यह जानते हैं कि २×२=४ होता है या यह जानते हैं कि भूतद्रव्य का आकर्षण दूरी के वर्ग के अनुसार बढ़ता और घटता है। पर प्रकृति-सम्बन्धी अपने दृष्टिकोण को यथासम्भव तालमेलयुक्त पूर्ण आकार देने के लिए सचेष्ट सैद्धान्तिक प्रकृति-विज्ञान में, जिसके बिना आजकल विचारशून्य से विचारशून्य अनुभववादी भी आगे पग नहीं बढ़ा सकता, अक्सर अपूर्ण रूप में ज्ञात परिमाणों से हमारा साबिक़ा पड़ता है। ज्ञान की अपूर्णता की पूर्ति के लिए चिन्तन की तर्कगत सुसंगतता को हमेशा ही सहायक होना पड़ा है। आधुनिक प्रकृति-विज्ञान को दर्शन से गति की अविनाशिता का सिद्धान्त लेना पड़ा है। बिना इस सिद्धान्त के अब वह जी ही नहीं सकता। पर भूतद्रव्य की गति केवल भोंडी यांत्रिक गति मात्र नहीं है, केवल स्थान-परिवर्तन नहीं है। वह ऊष्मा और प्रकाश है, विद्युत् और चुम्बकीय प्रतिबल है, रासायनिक योग और विच्छेद है, जीवन है और अन्ततः चेतना है। यह कहना कि भूतद्रव्य ने अपने अस्तित्व के समूचे असीम काल में केवल एक बार, और वह भी एक ऐसी अल्प अवधि के लिए जो उसकी अनन्तता की तुलना में अत्यन्त क्षुद्र अवधि है, अपने को, अपनी गति को विभेदित करने में और इस प्रकार इस गति की सम्पूर्ण सम्पदा को प्रकट करने में समर्थ पाया, और यह कि इसके पहले और बाद वह अनन्त काल के लिए केवल स्थान-परिवर्तन मात्र तक ही सीमित रहता है, वस्तुतः यह कहने के समान है कि भूतद्रव्य विनाशी और गति क्षणभंगुर है। गति की अविनाशिता केवल परिमाणात्मक ही नहीं हो सकती। उसकी गुणात्मक रूप में भी परिकल्पना की जानी चाहिए। वह भूतद्रव्य **गति के अधिकार से वंचित हो चुका है** जिसके विशुद्ध यांत्रिक स्थान-परिवर्तनों में अनुकूल अवस्थाओं में ऊष्मा, विद्युत्, रासायनिक क्रिया या जीवन में रूपान्तरित होने की सम्भावना बेशक सम्मिलित है, परन्तु जो अपने अन्दर से इन अवस्थाओं को उत्पन्न करने की

क्षमता नहीं रखता। अपने उपयुक्त विभिन्न रूपों में परिवर्तित होने की क्षमता गंवा देनेवाली गति में बेशक अब भी dynamis* हो सकती है, पर energeia** उसमें नहीं रह गयी है, अतः वह आंशिक रूप में विनष्ट हो चुकी है। परन्तु न ऐसे पदार्थ की और न ऐसी गति की ही कल्पना की जा सकती है।

इतना तो निश्चित है: एक ऐसा वक़्त था जब हमारे ब्रह्माण्डीय द्वीप के भूतद्रव्य ने गति की (यह गति किस क़िस्म की थी, हम यह नहीं जानते) एक इतनी बड़ी मात्रा को ऊष्मा में परिवर्तित किया था कि उससे सौरमण्डलों का विकास हुआ, जिनमें (मैडलर के कथनानुसार) कम से कम दो करोड़ सितारे शामिल हैं, जिनका इसी भांति धीरे-धीरे बुझना भी निश्चित है। यह परिवर्तन किस तरह से हुआ? इसके बारे में हम उतना ही कम जानते हैं जितना कम धर्मपिता सेक्की यह जानते हैं कि क्या हमारे सौरमण्डल के भावी मृत शरीर के अवशेष ऐसी कच्ची सामग्री में बदल सकेंगे जिससे नये सौरमण्डलों की रचना हो सके। लेकिन यहां आकर हमें किसी सृष्टिकर्ता को स्वीकार करना होगा या फिर यह निष्कर्ष मानने को बाध्य होना पड़ेगा कि हमारे ब्रह्माण्डीय द्वीप के सौरमण्डलों की तापदीप्त कच्ची सामग्री गति के रूपान्तरणों द्वारा प्राकृतिक रूप से पैदा हुई थी। ये रूपान्तरण गतिमान भूतद्रव्य में **स्वभावतया अन्तर्भूत** हैं, और इसलिए उनकी अवस्थाएं भूतद्रव्य द्वारा अवश्य पुनरुत्पादित होंगी, भले ही वे करोड़ों साल के बाद, कमोबेश संयोगवश, किन्तु उस अनिवार्यता के साथ जो संयोग में भी अन्तर्भूत है, पुनरुत्पादित हों।

ऐसे रूपान्तरण की सम्भावना अधिकाधिक मानी जा रही है। लोग इस मत पर पहुंच रहे हैं कि आकाशीय पिंड अन्ततः एक दूसरे में गिर पड़ेंगे, और उस ऊष्मा का भी हिसाब लगाया जाने लगा है जो ऐसी टक्करों में पैदा होगी। खगोल-विज्ञान द्वारा उल्लिखित नये सितारों का अचानक धधक उठना, और उतने ही अचानक रूप से परिचित सितारों की चमक बढ़ जाना, आदि चीज़ें इन टक्करों से सबसे आसानी से समझी जा सकती हैं। न केवल हमारा ग्रह-समूह सूर्य के चारों ओर और हमारा सूर्य हमारे ब्रह्माण्डीय द्वीप के अन्दर घूमता है, बल्कि हमारा पूरा ब्रह्माण्डीय द्वीप भी अंतरिक्ष में, अन्य ब्रह्माण्डीय द्वीपों के साथ अस्थायी, सापेक्ष सन्तुलन की स्थिति में घूमता है, क्योंकि स्वच्छन्द रूप से तिरते पिंडों का

* संभाव्यता। – सं०

** प्रभावकारिता। – सं०

सापेक्ष सन्तुलन भी वहीं क़ायम रह सकता है जहां गति परस्पर अनुकूलित हो। और बहुत-से लोग यह मानते हैं कि अंतरिक्ष में ताप सर्वत्र एक सा नहीं है। अन्तिम बात यह है कि हम जानते हैं कि एक अत्यन्त क्षुद्र अंश को छोड़कर हमारे ब्रह्माण्डीय द्वीप के अगणित सूर्यों की ऊष्मा अंतरिक्ष में विलुप्त हो जाती है, वह एक अंश सेंटीग्रेड के दस लाखवें भाग के बराबर भी अंतरिक्ष का ताप नहीं बढ़ा सकती। ऊष्मा की यह विपुल मात्रा सारी की सारी कहां चली जाती है? क्या वह अंतरिक्ष को गरम करने की चेष्टा में सदा के लिए बिखर कर बेकार हो जाती है? क्या व्यवहारतः उसका अस्तित्व नहीं रह गया? क्या केवल सिद्धान्त के नाते उसका अस्तित्व अब भी इस रूप में क़ायम है कि अंतरिक्ष एक डिग्री के १० या अधिक शून्यों से आरम्भ होनेवाले दशमलव अंश तक गरम हो गया है? ऐसी धारणा गति की अविनाशिता का निषेध करती है। वह इस सम्भावना को स्वीकार कर लेती है कि ब्रह्माण्डीय पिंडों के एक-एक कर एक दूसरे में गिरते जाने के ज़रिए सभी विद्यमान यांत्रिक गति ऊष्मा में परिवर्तित हो जायेगी और यह ऊष्मा अंतरिक्ष में विकीर्ण हो जायेगी जिससे सारी "शक्ति की अविनाशिता" के बावजूद सभी गति सामान्यतः समाप्त हो जायेगी। (प्रसंगवश, यहां यह स्पष्ट होता है कि गति की अविनाशिता के बदले शक्ति की अविनाशिता पद कितना अशुद्ध है!) अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि किसी न किसी विधि से (कुछ समय बाद प्रकृति-विज्ञान का कर्त्तव्य इसे दर्शाना होगा) अंतरिक्ष में विकीर्ण ऊष्मा को गति के किसी अन्य रूप में अवश्य ही परिवर्तित होना चाहिए जिस रूप में वह फिर संचित एवं सक्रिय हो सके। इस तरह बुझे सूर्यों के तापदीप्त वाष्प में पुनः परिवर्तित होने के मार्ग में खड़ी मुख्य कठिनाई दूर हो जाती है।

बाक़ी तो यह है कि अनन्त काल में विश्वों का सनातन अनुक्रमण अनन्त दिक् में अगणित विश्वों के सहअस्तित्व का ही तर्कगत परिपूरक है। यह ऐसा सिद्धान्त है जिसकी आवश्यकता को यांकी ड्रेपर का सिद्धान्तविरोधी मस्तिष्क भी स्वीकार करने को बाध्य हुआ।*

भूतद्रव्य अनन्त चक्र में घूमता रहता है। यह चक्र निश्चय ही अपनी कक्षा ऐसी कालावधियों में पूर्ण करता है जिनकी माप के लिये हमारा भौमिक वर्ष

* "अनन्त दिक् में अगणित विश्वों की विद्यमानता हमें अनन्त काल में विश्वों के अनुक्रमण की धारणा पर पहुंचाती है।" (जे० डब्ल्यू० ड्रेपर, 'बौद्धिक विकास का इतिहास', खंड २, पृष्ठ [३२५])।

कदापि पर्याप्त नहीं है। इस चक्र में उच्चतम विकास के लिए, कार्बनिक जीवन के लिए, और उससे भी अधिक अपने एवं प्रकृति के प्रति चेतन प्राणियों के लिए उतनी ही अल्प कालावधि निर्धारित है, जितना अल्प दिक् जीवन एवं आत्म-चेतना के क्रियाशील होने के लिए निर्धारित है। इस चक्र में भूतद्रव्य के अस्तित्व का प्रत्येक परिमित रूप, वह सूर्य हो या नीहारिका-वाष्प हो, एकाकी पशु हो या पशु-प्रजाति हो, रासायनिक योग हो या विघटन हो, समान रूप से क्षणभंगुर होता है। और उसमें शाश्वत रूप से परिवर्तनशील, शाश्वत रूप से प्रवहमान भूतद्रव्य के अतिरिक्त और उसकी गति तथा परिवर्तन को शासित करनेवाले नियमों के अतिरिक्त अन्य कोई चीज़ शाश्वत नहीं है। पर यह चक्र चाहे जितनी बार, और जितने कठोर, दुर्निवार रूप में काल और दिक् में पूर्ण हो, चाहे जितने करोड़ सूर्य और पृथ्वियां पैदा हों और मिट जायें, चाहे जितना ही दीर्घ समय एक सौरमण्डल के अन्दर केवल एक ग्रह में ही कार्बनिक जीवन की अवस्थाओं के उत्पन्न होने में लगे, चाहे जितने अगणित जीवी आकर लुप्त हो जायें, इसके पहले कि उनके मध्य से सोचने की क्षमता रखनेवाले मस्तिष्क से युक्त प्राणी विकसित हों, और एक अत्यल्प अवधि के लिए जीवनोपयुक्त अवस्थाएं प्राप्त करें तथा बाद में निर्ममतापूर्वक संहार भी कर दिये जायें, परन्तु एक चीज़ निश्चित है – भूतद्रव्य अपने समस्त रूपान्तरों में भी शाश्वत रूप से वही का वही रहता है; उसके कोई गुण कभी खो नहीं सकते; इसलिए यह भी निश्चित है कि जिस लौह आवश्यकता के वशीभूत होकर वह अपनी सर्वोच्च सृष्टि – चिन्तनशील मस्तिष्क – को पृथ्वी से फिर मिटा देगा, उसी आवश्यकता के वशीभूत होकर वह अन्यत्र एवं किसी अन्य काल में उसका फिर सृजन भी करेगा।

एंगेल्स द्वारा १८७५–१८७६ में लिखित।
'मार्क्स और एंगेल्स के अभिलेख', खंड २,
१९२५ में जर्मन तथा रूसी भाषाओं में
पहली बार प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

'ड्यूहरिंग [मत-खंडन]' की पुरानी भूमिका। द्वन्द्ववाद के विषय में

इस रचना की उत्पत्ति का कारण किसी तरह की "आन्तरिक प्रेरणा" कदापि नहीं है। इसके विपरीत, मेरे मित्र लीब्कनेख़्त इस बात के साक्षी हैं कि श्री ड्यूहरिंग के नवीनतम समाजवादी सिद्धान्त पर आलोचनामूलक प्रकाश डालने के लिए मुझे राज़ी करने के वास्ते उनको कितना अधिक प्रयत्न करना पड़ा था। जब मैंने यह कार्य करने का निश्चय कर लिया तो मेरे सामने सिवाय इसके और कोई चारा नहीं रह गया कि इस सिद्धान्त पर जो एक नयी दार्शनिक प्रणाली का नवीनतम व्यावहारिक फल होने का दावा करता था, इस प्रणाली के साथ उसके अन्योन्यसंबंध में विचार करूं, और इस प्रकार स्वयं इस प्रणाली पर भी विचार करूं। इसलिये मुझे मजबूर होकर श्री ड्यूहरिंग का अनुसरण करते हुए उस विशाल क्षेत्र का परीक्षण करना पड़ा जिसमें विचरण करते हुए श्री ड्यूहरिंग ने समस्त सम्भव वस्तुओं की तथा कुछ अन्य वस्तुओं की भी चर्चा कर डाली है। इस प्रकार वह लेखमाला लिखी गयी जो लाइपज़िग के *«Vorwärts»*[42] में १८७७ के आरम्भ से प्रकाशित होना शुरू हुई थी, और जो यहां एक सम्बद्ध पुस्तक के रूप में प्रस्तुत की जा रही है।

जब विषय के स्वरूप के कारण एक ऐसी प्रणाली की, जो समस्त आत्मप्रशंसा के बावजूद अत्यन्त महत्त्वहीन है, इतने अधिक विस्तार के साथ समीक्षा की गयी है, तो इसकी सफ़ाई में दो बातों का हवाला दिया जा सकता है। पहली बात यह है कि मुझे इस समीक्षा के दौरान अनेक क्षेत्रों के उन विवादग्रस्त प्रश्नों पर अपने विचार सकारात्मक रूप में पेश करने का मौक़ा मिल गया है, जिन्होंने आजकल काफ़ी सामान्य ढंग का वैज्ञानिक अथवा व्यावहारिक महत्व प्राप्त कर लिया है। और यद्यपि मेरे मन में यह विचार कभी नहीं आया है कि श्री ड्यूहरिंग की प्रणाली के विकल्प के रूप में कोई और प्रणाली यहां पेश करूं, तथापि आशा

की जाती है कि यहां जिस सामग्री का विवेचन किया गया है उसकी विविधता के बावजूद मैंने जिन विचारों को प्रस्तुत किया है उनका अन्तर्सम्बंध भी पाठक की आंखों से छिपा नहीं रहेगा।

दूसरी ओर, "प्रणाली-सृष्टा" श्री ड्यूहरिंग आजकल के जर्मनी में कोई इक्की-दुक्की दिखायी पड़ जानेवाली घटना नहीं है। कुछ समय से इस देश में दार्शनिक प्रणालियां, और विशेषकर प्राकृतिक-दार्शनिक प्रणालियां रातों-रात दर्जनों की संख्या में वर्षा के बाद खुम्मियों की तरह उग रही हैं; और राजनीति तथा राजनीतिक अर्थशास्त्र, आदि की असंख्य प्रणालियां इनसे अलग हैं। जिस प्रकार आधुनिक राज्य में यह मान लिया जाता है कि नागरिकों से जिन विभिन्न प्रश्नों पर मत देने को कहा जाता है प्रत्येक नागरिक में उन सभी प्रश्नों पर मत देने की योग्यता होती है; और जिस प्रकार राजनीतिक अर्थशास्त्र में यह मान लिया जाता है कि प्रत्येक ख़रीदार को अपने जीवन-निर्वाह के लिये जो तमाम माल ख़रीदने पड़ते हैं वह उन सबका पारखी होता है—अब विज्ञान में भी हमें कुछ उसी प्रकार की बात मानकर चलना पड़ेगा। हर आदमी हर विषय के बारे में लिख सकता है और "विज्ञान की स्वतंत्रता" ठीक इस बात में निहित है कि लोग जान-बूझकर ऐसी चीज़ों के बारे में लिखा करें जिनका उन्होंने अध्ययन नहीं किया है, और इसे एकमात्र वास्तविक वैज्ञानिक पद्धति के रूप में पेश कर दें। जर्मनी में आजकल तो यह शेखीबाज़ मिथ्या विज्ञान हर जगह आगे आ रहा है और अपनी उत्कृष्ट बकवास के शोर में हर बात को डुबोये दे रहा है; श्री ड्यूहरिंग उसके सबसे अच्छे प्रतिनिधियों में से एक हैं। यह उत्कृष्ट बकवास कविता में, दर्शनशास्त्र में, राजनीतिक अर्थशास्त्र में, और इतिहासशास्त्र में सुनने को मिलती है। यह उत्कृष्ट बकवास विद्यालयों की कक्षाओं में और सभाओं के मंच पर सुनने को मिलती है। हर जगह यह उत्कृष्ट बकवास ही कानों में पड़ती है। यह उत्कृष्ट बकवास दावा करती है कि उसमें एक ऐसी श्रेष्ठता और विचारों की ऐसी गहराई है जो उसे अन्य राष्ट्रों की साधारण तुच्छ बकवास के स्तर से ऊपर उठा देती है। यह उत्कृष्ट बकवास जर्मनी के बौद्धिक उद्योग की सबसे अधिक लाक्षणिक पैदावार है—सस्ती मगर ख़राब—जैसी जर्मनी में बनी दूसरी वस्तुएं होती हैं। अन्तर केवल इतना है कि दुर्भाग्य से उन तमाम वस्तुओं के साथ साथ इसे फ़िलाडेलफ़िया में प्रदर्शित नहीं किया गया।[43] यहां तक कि कुछ समय से, ख़ास तौर पर जब से श्री ड्यूहरिंग का श्रेष्ठ उदाहरण लोगों के सामने आया है, जर्मन समाजवाद भी बहुत काफ़ी मात्रा में उत्कृष्ट बकवास का सृजन

करने लगा है। यदि व्यावहारिक सामाजिक-जनवादी आन्दोलन इस उत्कृष्ट बकवास के चक्कर में पड़कर गुमराह नहीं हुआ तो यह हमारे मज़दूर वर्ग की स्वस्थ अवस्था का एक नया प्रमाण है। वरना इस देश में प्रकृति-विज्ञान को छोड़कर बाक़ी हर चीज़ आजकल अस्वस्थ है।

जब नेगेली ने प्रकृति-विज्ञान के विद्वानों की म्यूनिख़ वाली बैठक में यह विचार व्यक्त किया था कि मानव-ज्ञान-प्राप्ति कभी सर्वज्ञ नहीं बन पायेगी, तब निश्चय ही उनको श्री ड्यूहरिंग की उपलब्धियों का कोई ज्ञान नहीं रहा होगा। इन उपलब्धियों ने मुझे श्री ड्यूहरिंग का पीछा करते हुए ऐसे अनेक क्षेत्रों में प्रवेश करने के लिये बाध्य किया है जिनमें मैं अधिक से अधिक केवल एक अल्पज्ञानी नौसिखुए की हैसियत से ही विचरण कर सकता हूं। यह बात प्रकृति-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर विशेष रूप से लागू होती है, जिनके सम्बन्ध में अभी तक यदि कोई साधारण आदमी कुछ कहना चाहता था तो इसे अत्यन्त धृष्टतापूर्ण कार्य समझा जाता था। परन्तु श्री विर्ख़ोव की एक उक्ति से मेरा साहस थोड़ा और बढ़ गया है। यह उक्ति भी म्यूनिख़ में ही कही गयी थी, और दूसरी जगह पर उस पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया है। श्री विर्ख़ोव ने कहा था कि अपने विशिष्ट क्षेत्र के बाहर प्रत्येक प्रकृति-विज्ञानी केवल एक अर्द्ध-ज्ञानी[44] अर्थात्, साधारण बोलचाल की भाषा में, एक साधारण व्यक्ति होता है। चूंकि इस प्रकार का कोई भी विशेषज्ञ समय समय पर पड़ोस के क्षेत्रों में क़दम रख सकता है और वस्तुतः उसके लिये ऐसा करना ज़रूरी हो जाता है, और चूंकि इन क्षेत्रों के विशेषज्ञ उसकी छोटी-मोटी ग़लतियों या वाक्य-शैली के फूहड़पन के प्रति सदा उदारता का व्यवहार करते हैं, इसीलिये मैंने भी अपने सामान्य सैद्धान्तिक विचारों के प्रमाण में प्राकृतिक प्रक्रियाओं तथा प्राकृतिक नियमों के उदाहरणों का हवाला देने का साहस किया है, और मैं आशा करता हूं कि मेरे साथ भी यही उदारता बरती जायेगी। आधुनिक प्रकृति-विज्ञान द्वारा प्राप्त परिणाम सैद्धान्तिक मामलों में व्यस्त हर व्यक्ति अपने ऊपर उसी तरह ज़बर्दस्ती लाद देता है, जिस तरह आम सैद्धान्तिक निष्कर्ष अपने ऊपर प्रकृति-विज्ञानी – वे चाहे या न चाहे – लादते हैं। परन्तु यहां एक तरह की प्रतिपूर्ति हो जाती है। यदि सिद्धान्तकार प्रकृति-विज्ञान के क्षेत्र में अर्द्ध-ज्ञानी हैं तो प्रकृति-विज्ञानी भी आज सिद्धान्त के क्षेत्र में, उस क्षेत्र में, जिसे अब तक दर्शन कहा जाता रहा, वस्तुतः उतने ही अर्द्ध-ज्ञानी हैं।

इन्द्रियानुभविक प्रकृति-विज्ञान ने ज्ञान की सकारात्मक सामग्री का एक ऐसा

विशाल भंडार संचित कर लिया है कि उसका सुनियोजित ढंग से तथा उसके आन्तरिक अन्तर्सम्बन्ध के अनुसार अन्वेषण के अलग अलग क्षेत्रों में वर्गीकरण करना नितान्त आवश्यक हो गया है। और ज्ञान के अलग अलग क्षेत्रों का एक दूसरे के साथ सही ढंग का सम्बन्ध स्थापित करना भी उतना ही ज़रूरी हो गया है। लेकिन, ऐसा करते समय प्रकृति-विज्ञान सिद्धान्त के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है, और यहां इन्द्रियानुभविक पद्धतियां कोई काम नहीं देतीं। यहां तो केवल सैद्धान्तिक चिन्तन से ही कुछ सहायता मिल सकती है। किन्तु सैद्धान्तिक चिन्तन केवल स्वाभाविक क्षमता के रूप में ही एक जन्मजात गुण है। उस स्वाभाविक क्षमता का विकास करना होता है, उसका परिष्कार करना होता है; और इसके परिष्कार का अभी तक इसके सिवाय और कोई तरीक़ा नहीं निकला है कि पूर्वकालिक दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया जाये।

प्रत्येक युग में – और इसीलिये हमारे युग में भी – सैद्धान्तिक चिन्तन ऐतिहासिक विकास का फल होता है, जो अलग अलग समय पर भिन्न प्रकार के रूप धारण कर लेता है, और रूप के साथ साथ जिसका सार भी बदलता रहता है। अतः अन्य प्रत्येक विज्ञान की भांति चिन्तन का विज्ञान भी एक ऐतिहासिक विज्ञान है। वह मानव-चिन्तन के ऐतिहासिक विकास का विज्ञान है। और इन्द्रियानुभविक क्षेत्रों में चिन्तन के व्यावहारिक प्रयोग के लिये भी इस चीज़ का महत्व है। कारण कि एक तो चिन्तन के नियमों का सिद्धान्त कोई ऐसा "शाश्वत सत्य" कदापि नहीं है जिसकी एक बार सदा के लिये स्थापना कर दी गयी हो हालांकि कूपमण्डूक तर्क-शैली का ख़याल है कि "तर्क" नामक शब्द इसी प्रकार का "शाश्वत सत्य" है। औपचारिक तर्क-विज्ञान ख़ुद अरस्तू के समय से आज तक ज़बर्दस्त वाद-विवाद का अखाड़ा बना हुआ है। और अभी तक द्वन्द्ववाद का केवल दो ही विचारकों ने निकट से अन्वेषण किया है – अरस्तू ने और हेगेल ने। परन्तु वर्तमान काल के प्रकृति-विज्ञान के लिए चिन्तन का सबसे अधिक महत्वपूर्ण रूप द्वन्द्ववाद ही है, क्योंकि प्रकृति में जो विकास की प्रक्रियाएं चलती हैं, जो सामान्य अन्तर्सम्बंध पाये जाते हैं, और अन्वेषण के एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में जो संक्रमण होता रहता है, उनका सादृश्य केवल इसी रूप में मिलता है, और इसीलिये उनकी व्याख्या भी केवल इसी पद्धति के द्वारा की जा सकती है।

दूसरे, सैद्धान्तिक प्रकृति-विज्ञान के लिए मानव-चिन्तन के विकास के ऐतिहासिक क्रम की और बाह्य जगत में पाये जानेवाले सामान्य अन्तर्सम्बन्धों के विषय में अलग अलग कालों में व्यक्त विचारों की जानकारी प्राप्त करना इसलिये

भी आवश्यक होता है कि इस ज्ञान से स्वयं प्रकृति-विज्ञान द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को परखने के लिये एक कसौटी मिल जाती है। परन्तु इस सम्बन्ध में अक्सर, और बहुत उग्र रूप में, दर्शनशास्त्र के इतिहास की जानकारी के अभाव का सबूत मिलता है। बहुधा प्रकृति-विज्ञानी ऐसी ऐसी प्रस्थापनाओं को सर्वथा नवीन ज्ञान के रूप में पेश करते हैं जिनका दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में कई शताब्दियां पहले प्रतिपादन किया गया था, और जो दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में बहुत पहले ग़लत प्रमाणित हो चुकी हैं। और कुछ समय के लिये ऐसी प्रस्थापनाएं प्रकृति-विज्ञान में खूब प्रचलित भी हो जाती हैं। ऊष्मा के यांत्रिक सिद्धांत की यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है कि उसने ऊर्जा के संरक्षण के सिद्धान्त को नये प्रमाणों से पुष्ट किया और एक बार फिर उसे सब के सामने ला खड़ा किया। परन्तु यदि भौतिक-विज्ञान के विद्वानों को यह बात याद होती कि देकार्त पहले ही इस सिद्धान्त का प्रतिपादन कर चुके हैं, तो क्या यह सिद्धान्त एक सर्वथा नवीन सिद्धान्त के रूप में इतने ज़ोर के साथ सामने आ सकता था? अब चूंकि भौतिक-विज्ञान और रसायन-विज्ञान पुनः लगभग अनन्य रूप में अणुओं तथा परमाणुओं से काम लेने लगे हैं, इसलिये प्राचीन यूनान के परमाणु सिद्धान्त ने लाज़िमी तौर पर फिर महत्व प्राप्त कर लिया है। परन्तु अच्छे से अच्छे प्रकृति-विज्ञानी भी कितने सतही ढंग से उसका प्रयोग कर रहे हैं! चुनांचे, केकुले का ('रसायनशास्त्र के लक्ष्य तथा उपलब्धियां' में) कहना है कि सिद्धांत के जनक ल्युसिप्पस नहीं, बल्कि डेमोक्राइटस हैं; और उनका दावा है कि डाल्टन पहले व्यक्ति थे जिन्होंने गुणात्मक दृष्टि से भिन्न भिन्न तात्त्विक परमाणुओं के अस्तित्व की कल्पना की थी, और जिन्होंने यह मत प्रकट किया था कि अलग अलग परमाणुओं का भार अलग अलग है जो तत्वों का विशेष लक्षण होता है। परन्तु दायोजेनिज़ लाएर्तियस की रचना (पुस्तक १०, §§ ४३–४४ और ६१) में कोई भी व्यक्ति यह पढ़ सकता है कि एपीक्यूरस का पहले ही यह मत था कि परमाणुओं में न केवल परिमाण तथा रूप का भेद होता है, बल्कि **भार** का भी अन्तर होता है, अर्थात् एपीक्यूरस अपने ढंग से परमाणु-भार तथा परमाणु-आयतन से पहले ही परिचित थे।

१८४८ का वर्ष जर्मनी में और तो किसी चीज़ को पूरा नहीं कर सका, पर दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में उसने पूर्ण क्रान्ति पैदा कर दी। व्यावहारिक क्षेत्र में कूद कर, कहीं पर आधुनिक उद्योग तथा सट्टेबाज़ी की शुरूआत करके तो कहीं पर प्रकृति-विज्ञान की उस महान प्रगति का श्रीगणेश करके, जो उस समय से

आज तक जारी है और जिसका फ़ोग्ट, बुख़नर, आदि व्यंग्य-चित्रों जैसे यायावर उपदेशकों ने समारम्भ किया था, जर्मन राष्ट्र ने उस क्लासिकल जर्मन दर्शनशास्त्र की ओर से दृढ़तापूर्वक मुंह मोड़ लिया जो बर्लिन के पुराने हेगेलवाद की मरुभूमि में खो गया था। बर्लिन का पुराना हेगेलवाद इसी का अधिकारी था। परन्तु जो राष्ट्र विज्ञान के शिखर पर चढ़ना चाहता है वह सम्भवतः सैद्धान्तिक चिन्तन के बिना अपना काम नहीं चला सकता। मगर यहां तो न केवल हेगेलवाद बल्कि द्वन्द्ववाद को भी उठाकर फेंक दिया गया था—और यह घटना ठीक उस समय हुई थी जब प्राकृतिक प्रक्रियाओं का द्वन्द्ववादी स्वरूप अप्रतिरोध्य रूप से चिन्तन के क्षेत्र में प्रवेश करने लगा, और इसलिये जब केवल द्वन्द्ववाद ही सिद्धान्त के पर्वत पर चढ़ने में प्रकृति-विज्ञान की सहायता कर सकता था। इस तरह प्रकृति-विज्ञान पुनः पुराने अधिभूतवाद के गर्त्त में गिर पड़ा था। उस समय से आज तक जनता में जो व्याप्त है उसमें एक ओर तो शोपेनहार के नीरस विचार हैं, जो कूपमण्डूकों के लिये गढ़ कर तैयार किये गये थे, और बाद को हार्टमान के विचार तक, और दूसरी ओर फ़ोग्ट और बुख़नर जैसे यायावर उपदेशकों का भोंडा भौतिकवाद। विश्वविद्यालयों में खिचड़ीवाद के नाना प्रकार के रूप एक दूसरे से प्रतियोगिता कर रहे थे। उनमें केवल एक ही बात समान थी और वह यह कि उन सब को महज़ पुराने दर्शनों के अवशेषों को जोड़-जाड़कर तैयार कर लिया गया था और वे सब समान रूप से अधिभूतवादी थे। क्लासिकल दर्शनशास्त्र के अवशेषों में से जो कुछ बचाया जा सका था वह केवल एक ख़ास तरह का नवकान्टवाद था, जिसका चरम ज्ञान वह "वस्तु-निजरूप" था जो सदा अज्ञेय रहता है, अर्थात कान्ट के विचारों का वह अंश, जो सुरक्षित रहने के सबसे कम योग्य था। इस सब का अन्तिम फल वह असम्बद्धता तथा विचार-विभ्रम था जो आजकल सैद्धान्तिक चिन्तन के क्षेत्र में फैला हुआ है।

आप को मुश्किल से ही प्रकृति-विज्ञान की कोई ऐसी सैद्धान्तिक पुस्तक मिलेगी जिसका आपके दिमाग़ पर यह असर नहीं पड़ेगा कि प्रकृति-विज्ञानी ख़ुद भी यह महसूस करते हैं कि यह असम्बद्धता तथा विचार-विभ्रम उनके दिमाग़ों पर छाये हुए हैं और आजकल जो तथाकथित दर्शनशास्त्र प्रचलित है उसकी मदद से वे एक इंच भी आगे नहीं बढ़ पा रहे हैं। और इस क्षेत्र में उनके लिये प्रगति करने का, अपने विचारों में स्पष्टता लाने का सचमुच इसके अतिरिक्त और कोई चारा नहीं है कि किसी न किसी रूप में वे अधिभूतवादी चिन्तन-प्रणाली से पुनः द्वन्द्वात्मक प्रणाली की ओर लौट आयें।

यह लौटना कई ढंग से हो सकता है। यह स्वयंस्फूर्त ढंग से, स्वयं प्रकृति-विज्ञान के आविष्कारों के प्रताप से हो सकता है, क्योंकि अब इन आविष्कारों को ज़बर्दस्ती अधिभूतवाद के चौखटे में फ़िट करना मुमकिन नहीं है। परन्तु यह एक अत्यन्त दीर्घ एवं श्रमसाध्य क्रिया है जिसके दौरान बहुत सारे अनावश्यक संघर्ष का सामना करना होगा। बहुत हद तक यह क्रिया आज भी जारी है, विशेषकर जीव-विज्ञान में। यदि प्रकृति-विज्ञान के सिद्धान्तवेत्ता द्वन्द्ववादी दर्शनशास्त्र के ऐतिहासिक रूपों की कुछ और निकट से जानकारी प्राप्त कर लें तो यह क्रिया बहुत छोटी हो जाये। इनमें से दो रूप ऐसे हैं जो आधुनिक प्रकृति-विज्ञान के लिये विशेष रूप से लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

इनमें से पहला यूनानी दर्शनशास्त्र है। उसमें द्वन्द्वात्मक चिन्तन अपने आदिकालीन सरल रूप में प्रकट हुआ था। उस समय तक उसे उन आकर्षक बाधाओं* का सामना नहीं करना पड़ा था, जिनको सत्नहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के अधिभूतवाद ने – इंगलैंड में बेकन और लाक, तथा जर्मनी में वोल्फ़ ने – ख़ुद अपने मार्ग में खड़ा कर लिया, और जिनके कारण उसका अंश की समझ से पूर्ण की समझ की ओर बढ़ने का तथा वस्तुओं के सामान्य अन्तर्सम्बन्ध को समझने का मार्ग अवरुद्ध हो गया। यूनानी लोग चूंकि उस समय तक इतनी उन्नति नहीं कर पाये थे कि प्रकृति का विच्छेदन तथा विश्लेषण कर सकते, इसीलिये वे प्रकृति को सामान्यतः उसके समष्टि रूप में देखते थे। उनके यहां प्राकृतिक घटनाओं का सार्विक सम्बन्ध विशिष्ट घटनाओं के सिलसिले में प्रमाणित नहीं किया जाता था। यूनानियों के यहां वह प्रत्यक्ष प्रेक्षण का फल था। इसी में यूनानी दर्शनशास्त्र की अपर्याप्तता निहित है, जिसकी वजह से उसे बाद को संसार की अन्य चिन्तन-प्रणालियों के सामने आत्मसमर्पण कर देना पड़ा। बाद की अन्य समस्त विरोधी अधिभूतवादी चिन्तन-प्रणालियों की तुलना में उसकी श्रेष्ठता भी इसी में निहित है। यदि यूनानी चिन्तन-प्रणाली के सम्बन्ध में अधिभूतवाद विशिष्ट बातों के बारे में ज़्यादा सही था तो अधिभूतवाद के सम्बन्ध में यूनानी विचारक सामान्य बातों के बारे में ज़्यादा सही थे। यह पहला कारण है कि अन्य अनेक क्षेत्रों की भांति दर्शनशास्त्र के क्षेत्र में भी हमें बार बार उस छोटी सी क़ौम की उपलब्धियों पर लौट आना पड़ता है जिसकी सर्वांगीण प्रतिभा तथा क्रियाशीलता ने उसके लिये मानव-विकास के इतिहास में एक ऐसा स्थान

* "आकर्षक बाधाएं" (holde Hindernisse) – हाइने की कृति 'नव-वसन्त', प्रस्तावना से लिया गया पद। – सं०

सुरक्षित कर दिया है जिस पर और कोई क़ौम कभी दावा नहीं कर सकती। इसका दूसरा कारण यह है कि यूनानी दर्शनशास्त्र के नाना रूपों में लगभग वे सारी चिन्तन-प्रणालियां बीज रूप में, विकासमान रूप में विद्यमान थीं जो आगे चलकर संसार में देखी गयीं। इसलिये सैद्धान्तिक प्रकृति-विज्ञान आजकल जिन सामान्य सिद्धान्तों को स्वीकार करता है, यदि वह उनकी उत्पत्ति तथा विकास-क्रम का पता लगाना चाहता है, तो उसे भी इसी प्रकार यूनानियों का सहारा लेना पड़ता है। और वैज्ञानिक इस बात को अधिकाधिक समझते जाते हैं। ऐसे प्रकृति-विज्ञानियों की संख्या अधिकाधिक कम होती जा रही है जो स्वयं यूनानी दर्शनशास्त्र के कुछ टुकड़ों का, जैसे उदाहरण के लिये परमाणुवाद का, शाश्वत सत्यों के रूप में प्रयोग करते हुए भी यूनानियों की ओर बेकन जैसे अहंकार के भाव से देखते हैं और वह केवल इसलिये कि यूनानियों के पास कोई इन्द्रियानुभविक प्रकृति-विज्ञान नहीं था। कम से कम इस समझ की ही ख़ातिर यूनानी दर्शनशास्त्र का वास्तविक परिचय प्राप्त करना वांछनीय होगा।

द्वन्द्ववाद का दूसरा रूप, जो जर्मन वैज्ञानिकों के सबसे अधिक निकट है, कान्ट से लेकर हेगेल तक का क्लासिकल जर्मन दर्शनशास्त्र है। इस मामले में कुछ शुरूआत भी हो गयी है—वह इस अर्थ में कि ऊपर जिन नवकान्टवादियों का ज़िक्र किया गया था, उनके अलावा भी अब वैज्ञानिकों में फिर कान्ट का सहारा लेने का चलन हो गया है। जब से यह आविष्कार हुआ है कि कान्ट दो विलक्षण परिकल्पनाओं के जनक थे जिनके बिना आज सैद्धान्तिक प्रकृति-विज्ञान तनिक भी प्रगति नहीं कर सकता—एक तो सौरमण्डल की उत्पत्ति का सिद्धान्त जिसका श्रेय पहले लाप्लास को दिया जाता था, और दूसरे ज्वार-भाटे के कारण पृथ्वी के घुमाव के मन्दन का सिद्धान्त—तब से प्रकृति-विज्ञानियों के बीच कान्ट का फिर से बहुत सम्मान होने लगा है और ऐसा उचित भी है। परन्तु कान्ट की रचनाओं में द्वन्द्ववाद का अध्ययन करना व्यर्थ की माथापच्ची सिद्ध होगा क्योंकि अब हेगेल की रचनाओं के रूप में द्वन्द्ववाद का एक व्यापक संग्रह उपलब्ध है, हालांकि उसका द्वन्द्ववाद एक सर्वथा ग़लत प्रस्थान-बिन्दु से विकसित हुआ है।

जब एक ओर तो "प्राकृतिक दर्शन" की विरोधी उस प्रतिक्रिया का जोर ख़तम हो गया जो अपने ग़लत प्रस्थान-बिन्दु के कारण तथा बर्लिन के हेगेलवाद के निःसहाय पतन के कारण बहुत कुछ न्यायसंगत थी, तथा यह प्रतिक्रिया केवल गालियों तक पहुंच गयी; और जब, दूसरी ओर, प्रचलित खिचड़ी अधिभूतवाद प्रकृति-विज्ञान को उसकी सैद्धान्तिक आवश्यकताओं के सम्बन्ध में

भयानक कठिनाइयों में फंसा हुआ छोड़कर एकदम अलग हो गया, तब शायद एक बार फिर प्रकृति-विज्ञानियों की मौजूदगी में हेगेल का नाम लेना सम्भव होगा और उसे सुनकर उनका शरीर उस ढंग से नहीं ऐंठने लगेगा जिस ढंग से श्री ड्यूहरिंग का शरीर हेगेल का नाम सुनकर ऐंठने लगता है।

सबसे पहले यह बात स्पष्ट कर देनी आवश्यक है कि यहां पर हेगेल के इस प्रस्थान-बिन्दु का समर्थन करने का हरगिज़ कोई प्रश्न नहीं है कि आत्मा, मन, या विचार मूल है और वास्तविक संसार विचार की अनुकृति मात्र है। इस स्थापना को तो फ़ायरबाख़ ने ही त्याग दिया था। हम सब यह मानते हैं कि ऐतिहासिक विज्ञान तथा प्रकृति-विज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में आदमी को सदा उपलब्ध **तथ्यों** से आरम्भ करना चाहिये, और इसलिये प्रकृति-विज्ञान में हमेशा विभिन्न भौतिक रूपों तथा भूतद्रव्य की गति के नाना रूपों से आरम्भ करना चाहिये और इस कारण सैद्धान्तिक प्रकृति-विज्ञान में भी अन्तर्सम्बन्धों को ज़बर्दस्ती तथ्यों में नहीं घुसेड़ना चाहिये, बल्कि उनको तथ्यों में खोजना चाहिये और जब उनका पता लग जाये तो जहां तक सम्भव हो उनको प्रयोग के द्वारा जांच लेना चाहिये।

इस प्रकार हेगेलीय सिद्धान्त के उस रूढ़िवादी सार पर अड़े रहने का भी कोई प्रश्न नहीं है जिस रूप में पुरानी तथा नयी पीढ़ी के बर्लिन हेगेलवादी उसका प्रचार करते आये हैं। अतः जब भाववादी प्रस्थान-बिन्दु ध्वस्त हो जाता है तो उसके आधार पर निर्मित सिद्धान्त और विशेषकर हेगेलीय प्राकृतिक दर्शन का भी ध्वंस हो जाता है। परन्तु हमें याद रखना है कि जहां तक प्रकृति-विज्ञानी हेगेल को सही ढंग से समझ पाये थे, वहां तक उनकी हेगेलविरोधी आलोचना केवल दो बातों को लेकर की गयी थी: एक तो हेगेल का भाववादी प्रस्थान-बिन्दु और दूसरे, सिद्धान्त की मनमानी, तथ्यों की अवहेलनाकारी संरचना।

परन्तु इस सब को यदि अलग कर दिया जाये तो भी हेगेलीय द्वन्द्ववाद तो बचता ही है। यह मार्क्स की महानता है कि उन्होंने उन "चिड़चिड़े, घमण्डी प्रतिभाहीनों" के मुक़ाबले में "जो आजकल जर्मनी में बड़ी लम्बी लम्बी हांक रहे हैं,"* पहली बार विस्मृत द्वन्द्ववादी पद्धति को, हेगेलीय द्वन्द्ववाद के साथ उसके सम्बन्ध को और दोनों के भेद को सामने रखा और साथ ही 'पूंजी' में एक इन्द्रियानुभविक विज्ञान – राजनीतिक अर्थशास्त्र – के तथ्यों पर इस पद्धति

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खंड २, भाग १। – सं०

का प्रयोग भी किया। और यह कार्य उन्होंने इतनी सफलतापूर्वक किया कि अब जर्मनी में भी नवीनतर आर्थिक मत के लेखक मार्क्स की आलोचना करने के बहाने उनकी (अक्सर ग़लत ढंग से) नक़ल करके ही उन्मुक्त व्यापार के अप्रामाणिक सिद्धान्त से थोड़ा ऊपर उठ पाते हैं।

हेगेल के सिद्धान्त की अन्य समस्त शाखा-प्रशाखाओं की भांति उनके द्वन्द्ववाद में भी सारे वास्तविक अन्तर्सम्बन्धों को उलट दिया गया है। परन्तु जैसा कि मार्क्स ने कहा है, "हेगेल के हाथों में द्वन्द्ववाद पर रहस्य का जो आवरण पड़ जाता है, उससे इस बात में कोई कमी नहीं आती कि हेगेल ही ने सबसे पहले व्यापक और सचेतन ढंग से द्वन्द्ववाद की गति के सामान्य रूपों को दिखाया। हेगेल के यहां द्वन्द्ववाद सिर के बल खड़ा है। यदि आप उसके रहस्यमय आवरण के भीतर ढके हुए विवेकपूर्ण सार तत्त्व का पता लगाना चाहते हैं, तो आपको उसे पलटकर पैरों के बल सीधा खड़ा करना होगा।*

किन्तु, स्वयं प्रकृति-विज्ञान में भी अक्सर ऐसे सिद्धान्तों से हमारी भेंट होती रहती है जिनमें वास्तविक सम्बन्ध को सिर के बल खड़ा कर दिया जाता है, जिनमें प्रतिबिम्ब को मूल रूप मान लिया जाता है, और इसलिये जिसे उलट कर पुनः पैरों के बल खड़ा करना चाहिये। ऐसे सिद्धान्तों का अक्सर काफ़ी समय तक प्रभाव रहता है। जब लगभग दो शताब्दियों तक ऊष्मा को साधारण पदार्थ की गति का एक रूप न मानकर एक विशेष प्रकार का रहस्यमय द्रव्य माना जाता था, तब बिल्कुल इसी तरह की स्थिति थी, और असलियत को पैरों के बल खड़ा करने का काम बाद को ऊष्मा के यांत्रिक सिद्धान्त ने पूरा किया था। फिर भी, जिस भौतिक विज्ञान पर कैलोरिक सिद्धान्त छाया हुआ था, उसने भी ऊष्मा के अनेक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण नियमों का आविष्कार किया और ख़ास तौर पर फ़ुरिये तथा सादी कार्नो[45] के ज़रिये सही अवधारणा के लिए रास्ता दिखाया, जिसे अपनी पूर्ववर्ती अवधारणा के द्वारा आविष्कृत नियमों को उलटकर पैरों के बल खड़ा करना तथा उनका अपनी भाषा में अनुवाद करना था**। इसी प्रकार रसायन विज्ञान में फ़्लोजिस्टन के सिद्धान्त ने सौ वर्षों तक प्रयोगात्मक कार्य करके वह सामग्री तैयार की जिसकी सहायता से लावोइज़िए ने प्रीस्टले

---

* वही। – सं०

** कार्नो के फलन C को अक्षरशः उलट दिया गया है: $\frac{1}{C}$ = निरक्षेप ताप। बिना इस तरह उल्टे उसका कोई उपयोग नहीं किया जा सकता।

द्वारा आविष्कृत आक्सीजन के रूप में भ्रान्त कल्पित फ़्लोजिस्टन के वास्तविक प्रतिध्रुव को खोज निकाला और इस प्रकार फ़्लोजिस्टन के सिद्धान्त का तख़्ता उलट दिया। परन्तु इससे फ़्लोजिस्टन के सिद्धान्तों की प्रयोगात्मक उपलब्धियों का लोप नहीं हुआ। वे तो जीवित रहीं। केवल उनका संविन्यास उलट गया। उनका फ़्लोजिस्टन की भाषा से उस रासायनिक भाषा में अनुवाद कर डाला गया जिसे आजकल मान्यता प्राप्त है; और इस प्रकार इन उपलब्धियों की मान्यता बनी रही।

बुद्धिसंगत द्वन्द्ववाद के साथ हेगेलीय द्वन्द्ववाद का वही सम्बन्ध है जो ऊष्मा के यांत्रिक सिद्धान्त के साथ कैलोरिक सिद्धान्त का और लावोइज़िए के सिद्धान्त के साथ फ़्लोजिस्टन के सिद्धान्त का है।

एंगेल्स द्वारा मई तथा जून १८७८ के आरम्भ में लिखित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

पहली बार जर्मन तथा रूसी में 'मार्क्स-एंगेल्स पुरालेख संग्रह', खण्ड २, १९२५ में प्रकाशित।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

वानर के नर बनने की प्रक्रिया में श्रम की भूमिका[46]

अर्थशास्त्रियों का दावा है कि श्रम समस्त सम्पदा का स्रोत है। वास्तव में वह स्रोत है, लेकिन प्रकृति के बाद। वही इसे वह सामग्री प्रदान करती है जिसे श्रम सम्पदा में परिवर्तित करता है। पर वह इससे भी कहीं बड़ी चीज़ है। वह समूचे मानव-अस्तित्व की प्रथम मौलिक शर्त है, और इस हद तक प्रथम मौलिक शर्त है कि एक अर्थ में हमें यह कहना होगा कि स्वयं मानव का सृजन भी श्रम ने ही किया।

लाखों वर्ष पूर्व, पृथ्वी के इतिहास के भूविज्ञानियों द्वारा तृतीय कहे जानेवाले महाकल्प की एक अवधि में, जिसे अभी ठीक निश्चित नहीं किया जा सकता है, पर जो सम्भवतः इस तृतीय महाकल्प का युगान्त रहा होगा, कहीं उष्ण कटिबन्ध के किसी प्रदेश में—सम्भवतः एक विशाल महाद्वीप में जो अब हिन्द महासागर में समा गया है—मानवाभ वानरों की विशेष रूप से अतिविकसित जाति रहा करती थी। डार्विन ने हमारे इन पूर्वजों का लगभग यथार्थ वर्णन किया है। उनका समूचा शरीर बालों से ढंका रहता था, उनके दाढ़ी और नुकीले कान थे, और वे समूहों में पेड़ों पर रहा करते थे।[47]

सम्भवतः उनकी जीवन-विधि, जिसमें पेड़ों पर चढ़ते समय हाथों और पांवों की क्रिया भिन्न होती है, का ही यह तात्कालिक परिणाम था कि समतल भूमि पर चलते समय वे हाथों का सहारा कम लेने लगे और अधिकाधिक सीधे खड़े होकर चलने लगे। **वानर से नर में संक्रमण का यह निर्णायक पग था।**

सभी वर्तमान मानवाभ वानर सीधे खड़े हो सकते हैं और केवल पैरों के बल चल सकते हैं, पर तभी जब सख़्त ज़रूरत हो, और बड़े भोंडे ढंग से ही। उनके चलने का स्वाभाविक ढंग आधा खड़े होकर चलना है, और उसमें हाथों का इस्तेमाल शामिल होता है। इनमें से अधिकतर मुट्ठी की गिरह को ज़मीन पर

रखते हैं, और पैरों को खींचकर शरीर को लम्बी बांहों के बीच से झुलाते हैं, जिस तरह लंगड़े लोग बैसाखी के सहारे चलते हैं। सामान्यत: वानरों में हम आज भी चौपायों की तरह चलने से लेकर पांवों पर चलने के बीच की सभी क्रमिक मंज़िलें देख सकते हैं। पर उनमें से किसी के लिए भी पांवों के सहारे चलना एक आरज़ी तदबीर से ज़्यादा कुछ नहीं है।

हमारे लोमश पूर्वजों में सीधी चाल के पहले नियम बन जाने और उसके बाद अपरिहार्य बन जाने का तात्पर्य यह है कि बीच के काल में हाथों के लिए लगातार नये नये काम निकलते गये होंगे। वानरों तक में हाथों और पांवों के उपयोग में एक प्रकार का विभाजन पाया जाता है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, चढ़ने में हाथों का उपयोग पैरों से भिन्न ढंग से किया जाता है। जैसा कि निम्न जातीय स्तनधारी जीवों में आगे के पंजे के इस्तेमाल के बारे में देखा जाता है, हाथ प्रथमत: आहार संग्रह तथा ग्रहण के काम आते हैं। बहुत-से वानर वृक्षों में अपने लिए डेरा बनाने के लिए हाथों का इस्तेमाल करते हैं अथवा शिंपांज़ी की तरह वर्षा-धूप से रक्षा के लिए तरुशाखाओं के बीच छत सी बना लेते हैं। दुश्मन से बचाव के लिए वे अपने हाथों से डण्डा पकड़ते हैं या दुश्मन पर फलों अथवा पत्थरों की वर्षा करते हैं। बन्दी अवस्था में वे मनुष्यों के अनुकरण से सीखी कई सरल क्रियाएं अपने हाथों से करते हैं। लेकिन ठीक यहीं हम देखते हैं कि मानवाभ से मानवाभ वानरों के अविकसित हाथ और लाखों वर्षों के श्रम द्वारा अति परिनिष्पन्न मानव हाथ के बीच कितनी विपुल दूरी है। हड्डियों और मांसपेशियों की संख्या और उनका सामान्य विन्यास दोनों में एक ही होता है। परन्तु निम्नतम प्राकृत मानव के हाथ सैकड़ों ऐसी क्रियाएं सम्पन्न कर सकते हैं जिनका अनुकरण किसी भी वानर के हाथ नहीं कर सकते। किसी भी वानर के हाथ पत्थर की भोंडी छुरी भी आज तक नहीं गढ़ सके हैं।

अत: आरम्भ में वे क्रियाएं अत्यन्त सरल रही होंगी, जिनके लिए हमारे पूर्वजों ने वानर से मानव में संक्रमण के हज़ारों वर्षों में अपने हाथों को अनुकूलित करना धीरे-धीरे सीखा होगा। फिर भी निम्नतम प्राकृत मानव भी, वे प्राकृत मानव भी जिनमें हम अधिक पशुतुल्य अवस्था में प्रतिगमन तथा उसके साथ ही साथ शारीरिक अपह्रास का घटित होना मान ले सकते हैं, इन अन्तर्वर्त्ती जीवों से कहीं श्रेष्ठ हैं। मानव हाथों द्वारा पत्थर की पहली छुरी बनाये जाने से पहले शायद एक ऐसी अवधि गुज़री होगी जिसकी तुलना में ज्ञात ऐतिहासिक अवधि नगण्य सी लगती है। किन्तु निर्णायक पग उठाया जा चुका था। **हाथ मुक्त हो गया**

था और अब से अधिकाधिक दक्षता एवं कुशलता प्राप्त कर सकता था, तथा इस प्रकार प्राप्त उच्चतर नमनीयता वंशागत होती थी और पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती जाती थी।

अतः हाथ केवल श्रमेन्द्रिय ही नहीं है, **वह श्रम की उपज भी है।** श्रम के द्वारा ही, नित नयी क्रियाओं के प्रति अनुकूलन के द्वारा ही, इस प्रकार उपार्जित पेशियों, स्नायुओं–और दीर्घतर अवधियों में हड्डियों–के विशेष विकास की वंशागतता के द्वारा ही, तथा इस वंशागत पटुता के नये, अधिकाधिक जटिल क्रियाओं में नित पुनरावृत्त उपयोग के द्वारा ही मानव हाथ ने वह उच्च परिनिष्पन्नता प्राप्त की है जिसकी बदौलत राफ़ायल की सी चित्रकारी, थोर्वाल्दसेन की सी मूर्त्तिकारी और पागानीनी का सा संगीत आविर्भूत हो सका।

परन्तु हाथ अपने आप में ही अस्तित्वमान् न था। वह तो एक पूरी अति जटिल शरीर-व्यवस्था का एक अंग मात्र था। और जिस चीज़ से हाथ लाभान्वित हुआ, उससे वह पूरा शरीर भी लाभान्वित हुआ जिसकी हाथ ख़िदमत करता था। यह दो प्रकार से हुआ।

पहली बात यह कि शरीर उस नियम के परिणामस्वरूप लाभान्वित हुआ जिसे डार्विन विकास के अन्तःसम्बन्ध का नियम कहते थे। इस नियम के अनुसार किसी जीव के अलग-अलग अंगों के विशेष रूप उनसे प्रकटतः असम्बद्ध अन्य अंगों के कतिपय रूपों के साथ लाज़िमी तौर पर जुड़े हुए होते हैं। जैसे, उन सभी पशुओं में, जिनमें कोशिका केन्द्रकों के बग़ैर लाल रक्त कोशिकाएं होती हैं और जिनमें सिर का पृष्ठभाग दुहरी सन्धि (अस्थिकंद) के द्वारा प्रथम कशेरुक के साथ जुड़ा होता है, निरपवाद रूप में अपने बच्चों को स्तनपान कराने के लिए दुग्ध ग्रन्थियां भी होती हैं। इसी तरह जिन स्तनधारी जीवों में अलग-अलग खुर होते हैं उनमें उसके साथ ही जुगाली के लिए बहुत जठर भी नियमित रूप से पाया जाता है। कतिपय रूपों में परिवर्तन के साथ शरीर के अन्य भागों में भी परिवर्तन होते हैं, यद्यपि इस सह-सम्बन्ध की हम कोई व्याख्या नहीं कर सकते। नीली आंखों वाली बिल्कुल सफ़ेद बिल्लियां सदा, अथवा प्रायः बहरी होती हैं। मानव हाथ के शनैः शनैः अधिकाधिक परिनिष्पन्न होने और उसी अनुपात में पैरों के सीधी चाल के लिए अनुकूलित होने की, इस अन्तःसम्बन्ध के नियम की बदौलत, निस्सन्दिग्ध रूप से शरीर के अन्य भागों में प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई, पर इस क्रिया की अभी इतनी कम जांच-पड़ताल की गयी है कि हम यहां तथ्य को सामान्य शब्दों में प्रस्तुत करने से अधिक कुछ नहीं कर सकते।

इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है शेष शरीर पर हाथ के विकास की प्रत्यक्ष दृश्यमान प्रतिक्रिया। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, हमारे पूर्वज, मानवाभ वानर, यूथचारी थे। प्रकट है कि सबसे अधिक सामाजिक पशु – मनुष्य – का व्युत्पत्ति-सम्बन्ध किन्हीं अयूथचारी निकटतम पूर्वजों से स्थापित करने की चेष्टा असम्भव है। हाथ के विकास के साथ, श्रम के साथ आरम्भ होनेवाली प्रकृति पर विजय ने प्रत्येक अग्रगति के साथ मानव के क्षितिज को व्यापक बनाया। मनुष्य को प्राकृतिक वस्तुओं के नये नये और अब तक अज्ञात गुणधर्मों का लगातार पता लगता जा रहा था। दूसरी ओर, श्रम के विकास ने पारस्परिक सहायता, सम्मिलित कार्यकलाप के उदाहरणों को बढ़ाकर और प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस सम्मिलित कार्यकलाप की लाभप्रदता स्पष्ट करके समाज के सदस्यों को एक दूसरे के निकटतर लाने में लाज़िमी तौर पर मदद दी। संक्षेप में, विकसित होते मानव उस बिन्दु पर पहुंचे जहां उन्हें एक दूसरे से **कुछ कहने की ज़रूरत महसूस होने लगी।** इस वाक्-प्रेरणा ने अपने अंग को उत्पन्न किया – वानर के अविकसित कण्ठ का मूर्च्छना के ज़रिये धीरे-धीरे पर निश्चित रूप से कायापलट हुआ, जिससे कि लगातार और भी विकसित मूर्च्छना पैदा हो, और मुख के प्रत्यंग एक-एक कर नयी-नयी संहित ध्वनियों का उच्चारण करना धीरे-धीरे सीखते गये।

पशुओं के साथ तुलना करने से सिद्ध हो जाता है कि यह व्याख्या ही एकमात्र सही व्याख्या है कि श्रम से और श्रम के साथ भाषा की उत्पत्ति हुई। अधिक से अधिक विकसित पशु भी एक दूसरे से बात करने की अपनी अति स्वल्प आवश्यकता संहित वाणी की सहायता के बिना ही पूरी कर सकते हैं। प्राकृतिक अवस्था में मानव वाणी न बोल सकने अथवा न समझ सकने के कारण कोई पशु दिक़्क़त नहीं महसूस करता। किन्तु मनुष्य द्वारा पालतू बना लिये जाने पर बात बिल्कुल और ही होती है। मानव की संगति के कारण कुत्तों और घोड़ों में संहित वाणी ग्रहण करने की ऐसी शक्ति विकसित हो गयी है कि वे, अपने विचार-वृत्त की सीमा के अन्दर, किसी भी भाषा को समझ लेना आसानी से सीख लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने मानव के प्रति प्यार और कृतज्ञता जैसे आवेग – जो पहले उनके लिए एकदम अनजान थे – महसूस करने की क्षमता विकसित कर ली है। ऐसे जानवरों से अधिक लगाव रखनेवाला कोई भी व्यक्ति यह माने बिना शायद ही रह सकता है कि ऐसे कितने ही जानवरों की मिसालें मौजूद हैं जो अब यह महसूस करते हैं कि उनका बोल न सकना एक ख़ामी है, यद्यपि उनके स्वरांगों के एक ख़ास दिशा में अति विशेषीकृत होने के कारण यह ख़ामी दुर्भाग्यवश अब

दूर नहीं की जा सकती। पर जहां ये अंग मौजूद हैं, वहां कुछ सीमाओं के भीतर यह असमर्थता भी मिट जाती है। कहने की जरूरत नहीं कि पक्षियों के मुखांग मनुष्य के मुखांगों से अधिकतम भिन्न होते हैं, फिर भी पक्षी ही एकमात्र जीव हैं जो बोलना सीख लेते हैं। और सबसे कर्कश स्वर वाला पक्षी – तोता – सबसे अच्छा बोल सकता है। यह आपत्ति नहीं की जानी चाहिए कि तोता जो बोलता है, उसे समझता नहीं है। यह सही है कि मानवों के साथ रहने और बोलने के सुख मात्र के लिए तोता लगातार घंटों तक टांय-टांय करता जायेगा और अपना सम्पूर्ण शब्दभण्डार लगातार दुहराता रहेगा। पर अपने विचार-वृत्त की सीमा के अन्दर वह जो बोलता है उसे समझना भी सीख सकता है। किसी तोते को इस तरह से गालियां बोलना सिखा दीजिये कि उसे इनके अर्थ का थोड़ा आभास हो जाये (उष्ण देशों की यात्रा से लौटनेवाले जहाज़ियों का यह एक प्रिय मनोरंजन का साधन है), इसके बाद उसे छेड़िये। आप देखेंगे कि वह इन गालियों का बर्लिन के कुंजड़ों के समान ही सटीक उपयोग करेगा। ऐसा ही छोटी-मोटी चीज़ें मांगना सिखा देने पर भी होता है।

पहले श्रम, उसके बाद और उसके साथ वाणी – ये ही दो सबसे सारभूत उद्दीपनाएं थीं जिनके प्रभाव से वानर का मस्तिष्क धीरे-धीरे मनुष्य के मस्तिष्क में बदल गया, जो सारी समानता के बावजूद वानर के मस्तिष्क से कहीं बड़ा और अधिक परिनिष्पन्न है। मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ ही उसके सबसे निकटस्थ करणों, ज्ञानेन्द्रियों का विकास हुआ। जिस तरह वाणी के क्रमिक विकास के साथ अनिवार्य रूप से श्रवणेन्द्रियों का तदनुरूप परिष्कार होता है, ठीक उसी तरह से समग्र रूप में मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ सभी ज्ञानेन्द्रियों का परिष्कार होता है। उक़ाब मनुष्य से कहीं अधिक दूर तक देख सकता है, परन्तु मनुष्य की आंखें चीजों में बहुत कुछ ऐसा देख सकती हैं जो उक़ाब की आंखें नहीं देख सकतीं। कुत्ते में मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र घ्राणशक्ति होती है, परन्तु वह उन गन्धों के सौवें भाग की भी अनुभूति नहीं कर सकता जो मनुष्य के लिए भिन्न-भिन्न वस्तुओं की निश्चित द्योतक होती हैं। और स्पर्शशक्ति, जो कच्चे से कच्चे आरम्भिक रूप में भी वानर के पास भी मुश्किल से ही होती है, केवल श्रम के माध्यम से स्वयं मानव हाथ के विकास के संग-संग ही विकसित हुई है।

मस्तिष्क और उसके सहवर्ती ज्ञानेन्द्रियों के विकास, चेतना की बढ़ती स्पष्टता, विविक्त विचारणा तथा विवेक की शक्ति की प्रतिक्रिया ने श्रम और

वाणी दोनों को ही और भी विकास करते जाने की नित नवीन उद्दीपना प्रदान की। मनुष्य के अन्तिम रूप से वानर से भिन्न हो जाने के साथ इस विकास का समाप्त होना तो दूर रहा, वह प्रबल प्रगति ही करता गया। हां, विभिन्न जनगण और विभिन्न कालों में इस विकास की मात्रा और दिशा भिन्न-भिन्न रही हैं और जहां-तहां स्थानीय अथवा अस्थायी पश्चगमन के कारण उसमें व्यवधान भी पड़ा। पूर्ण विकसित मानव के उदय होने के साथ एक नये तत्त्व, अर्थात् **समाज** के मैदान में आ जाने से इस विकास को एक ओर अग्रगति की प्रबल प्रेरणा मिली और दूसरी ओर अधिक निश्चित दिशाओं में पथनिर्देशन प्राप्त हुआ।

पेड़ों पर चढ़नेवाले एक वानर-दल से मानव-समाज के उदित होने में निश्चय ही लाखों वर्ष—जिनका पृथ्वी के इतिहास में मनुष्य-जीवन के एक क्षण से अधिक महत्त्व नहीं है*—गुजर गये होंगे। परन्तु उसका उदय होकर रहा। और यहां फिर वानर-दल एवं मानव-समाज में हम क्या विशेष अन्तर पाते हैं? अन्तर है **श्रम**। वानर-दल अपने लिए भौगोलिक अवस्थाओं द्वारा अथवा पास-पड़ोस के अन्य वानर-दलों के प्रतिरोध द्वारा निर्णीत आहार-क्षेत्र में ही आहार प्राप्त करके सन्तुष्ट था। वह नये आहार-क्षेत्र प्राप्त करने के लिए नयी जगहों में जाता था और संघर्ष करता था। परन्तु ये आहार-क्षेत्र प्रकृत अवस्था में उसे जो कुछ प्रदान करते थे, उससे अधिक इनसे कुछ प्राप्त करने की उसमें क्षमता न थी। हां, उसने अचेतन रूप से अपने मल-मूल द्वारा मिट्टी को उर्वर अवश्य बनाया। सभी सम्भव आहार-क्षेत्रों पर वानर-दलों द्वारा क़ब्ज़ा होते ही वानरों की संख्या में और वृद्धि नहीं हो सकती थी; इन पशुओं की संख्या अधिक से अधिक यथावत् रह सकती थी। परन्तु सभी पशु बहुत-सा आहार बरबाद करते हैं, इसके अतिरिक्त वे खाद्य-पूर्त्ति की आगामी पौध को अंकुर रूप में ही नष्ट कर देते हैं। शिकारी अगले वर्ष मृग-शावक देनेवाली हिरणी को नहीं मारता, परन्तु भेड़िया उसे मार डालता है। तरु-गुल्मों के बढ़ने से पहले ही उन्हें चर जानेवाली यूनान की बकरियों ने देश की सभी पहाड़ियों को नंगा बना दिया है। पशुओं की यह "लुटेरू अर्थव्यवस्था" उन्हें सामान्य खाद्यों के अतिरिक्त अन्य खाद्यों को अपनाने को

---

*इस विषय के एक प्रमुख अधिकारी विद्वान सर विलियम टामसन ने हिसाब लगाया है कि जब पृथ्वी इतनी काफ़ी ठण्डी हो गई कि उस पर पौधे और पशु जीवित रह सकें, तब से **दस करोड़ से कुछ ही ज्यादा वर्ष** गुजरे होंगे।

मजबूर करके पशु-जातियों के क्रमिक रूपान्तरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, क्योंकि इसकी बदौलत उनका रक्त भिन्न रासायनिक संरचना प्राप्त करता है और समूचा शारीरिक गठन क्रमशः बदल जाता है। दूसरी ओर पहले क़ायम हो चुकनेवाली जातियां धीरे-धीरे विनष्ट हो जाती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस लुटेरू अर्थव्यवस्था ने वानर से मनुष्य में हमारे पूर्वजों के संक्रमण में प्रबल भूमिका अदा की है। बुद्धि और अनुकूलन-क्षमता में औरों से कहीं आगे बढ़ी हुई वानर-जाति में इस लुटेरू अर्थव्यवस्था का परिणाम इसके सिवा और कुछ न हो सकता था कि भोजन के लिए इस्तेमाल की जानेवाली वनस्पतियों की संख्या लगातार बढ़ती जाये और पौष्टिक वनस्पतियों के अधिकाधिक भक्ष्य भागों का भक्षण किया जाये। सारांश यह कि इससे भोजन अधिकाधिक विविधतायुक्त होता गया और इसके परिणामस्वरूप शरीर में ऐसे पदार्थ प्रविष्ट हुए, जिन्होंने वानरों के मनुष्य में संक्रमण के लिए रासायनिक आधार का काम किया। परन्तु अभी यह सब इस शब्द के ठीक अर्थ में श्रम नहीं था। श्रम औज़ार बनाने के साथ आरम्भ होता है। हमें जो प्राचीनतम औज़ार – वे औज़ार जिन्हें प्रागैतिहासिक मानव की पाई गई दाय-वस्तुओं के आधार पर तथा इतिहास में ज्ञात प्राचीनतम जनगण एवं आज की जांगल से जांगल जातियों की जीवन-पद्धति के आधार पर हम प्राचीनतम कह सकते हैं – मिले हैं, वे क्या हैं? वे शिकार और मछली मारने के औज़ार हैं जिनमें से शिकार के औज़ार आयुधों का भी काम देते थे। परन्तु शिकार और मछली मारने की वृत्ति के लिए यह पूर्वमान्य है कि शुद्ध शाकाहार से उसके साथ-साथ मांस-भक्षण की प्रथा में संक्रमण हो चुका होगा। वानर से मनुष्य में संक्रमण की प्रक्रिया में यह एक और महत्त्वपूर्ण पग है। **मांसाहार** में शरीर के उपापचयन के लिए दरकार सभी सबसे अधिक आवश्यक तत्त्व प्रायः पूर्णतः तैयार मिलते हैं। इससे पाचन के लिए दरकार समय की ही बचत नहीं हुई, बल्कि वनस्पति-जीवन के अनुरूप अन्य शारीरिक विकास की प्रक्रियाओं के लिए दरकार समय भी घट गया और इस प्रकार पशु-जीवन की, इस शब्द के ठीक अर्थों में, सक्रिय अभिव्यंजना के लिए अधिक समय, सामग्री तथा शक्ति का लाभ हुआ। विकसित होता मानव जितना ही वनस्पति जगत से दूर रहता गया, उतना ही वह पशु से ऊंचा उठता गया। जिस तरह मांसाहार के संग शाकाहार के अभ्यस्त होने के साथ जंगली बिल्लियां और कुत्ते मानव के सेवक बन गये, ठीक उसी तरह शाकाहार के साथ-साथ मांसाहार को अपनाने से विकसित होते मानव को शारीरिक शक्ति एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में भारी

मदद मिली। परन्तु मांसाहार का सबसे अधिक प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ा। मस्तिष्क को अपने पोषण एवं विकास के लिए आवश्यक सामग्री अब पहले से कहीं अधिक प्रचुरता से प्राप्त होने लगी, अतः अब वह पीढ़ी दर पीढ़ी अधिक तेज़ी और पूर्णता के साथ विकास कर सकता था। हम शाकाहारियों का बहुत आदर करते हैं, परन्तु हमें यह मानना ही पड़ेगा कि मांसाहार के बिना मनुष्य का आविर्भाव असंभव होता। हां, मांसाहार के कारण ही सभी ज्ञात जनगण यदि किसी काल में नरभक्षी बन गये थे (अभी दसवीं शताब्दी तक बर्लिनवासियों के पूर्वज, वेलेतोबियन या विल्जियन लोग अपने मां-बाप को मार कर खा जाया करते थे) तो आज इसका महत्त्व नहीं रह गया है।

मांसाहार के फलस्वरूप निर्णायक महत्त्व रखनेवाले दो नये क़दम उठाये गये—मनुष्य ने अग्नि को वशीभूत किया, दूसरे—पशु-पालन आरम्भ हुआ। पहले के फलस्वरूप पाचन प्रक्रिया और संकुचित बन गयी क्योंकि इसकी बदौलत मानव-मुख को मानो पहले ही से आधा पचा हुआ भोजन मिलने लगा। दूसरे ने मांस की पूर्त्ति का शिकार के अलावा एक नया, अधिक नियमित स्रोत प्रदान करके मांस की सप्लाई को अधिक प्रचुर बना दिया। इसके अतिरिक्त दूध और दूध से बनी वस्तुओं के रूप में उसने आहार की एक नयी सामग्री प्रदान की, जो अपने अवयवों की दृष्टि से कम से कम उतनी ही मूल्यवान थी जितना कि मांस। अतः ये दोनों ही नयी प्रगतियां सीधे-सीधे मानव की मुक्ति का नया साधन बन गयीं। उनके अप्रत्यक्ष परिणामों की यहां विशद विवेचना करने से हम विषय से बहुत दूर चले जायेंगे, हालांकि मानव और समाज के विकास के लिए उनका भारी महत्त्व है।

जिस तरह मनुष्य ने सभी भक्ष्य वस्तुओं को खाना सीखा, उसी तरह उसने किसी भी जलवायु में रह लेना भी सीखा। वह समूची निवासयोग्य दुनिया में फैल गया। वही एकमात्र पशु ऐसा था जिसमें ख़ुद-ब-ख़ुद ऐसा कर सकने की क्षमता थी। अन्य पशु—पालतू जानवर और कृमि—अपने-आप नहीं, बल्कि मनुष्य का अनुसरण कर ही सभी जलवायुओं के अभ्यस्त बने। और मानव द्वारा एकसमान गरम जलवायु वाले अपने मूल निवासस्थान से ठण्डे इलाक़ों में स्थानान्तरण से, जहां वर्ष के दो भाग हैं—ग्रीष्म ऋतु एवं शीत ऋतु—नयी आवश्यकताएं उत्पन्न हुईं—शीत और नमी से बचाव के लिए घर और पहनावे की आवश्यकता उत्पन्न हुई जिससे श्रम के नये क्षेत्र आविर्भूत हुए। फलतः नये प्रकार के कार्यकलाप आरम्भ हुए जिनसे मनुष्य पशु से और भी अधिकाधिक पृथक् होता गया।

प्रत्येक व्यक्ति ही में नहीं, बल्कि समाज में भी हाथों, स्वरांगों और मस्तिष्क के संयुक्त काम से मानव अधिकाधिक पेचीदे कार्य करने के तथा सतत उच्चतर लक्ष्य अपने सामने रखने और उन्हें हासिल करने के योग्य बने। हर पीढ़ी के गुज़रने के साथ स्वयं श्रम भिन्न, अधिक परिनिष्पन्न, अधिक विविधतायुक्त होता गया। शिकार और पशु-पालन के अतिरिक्त कृषि भी की जाने लगी। फिर कताई, बुनाई, धातुकारी, कुम्हारी और नौचालन की बारी आयी। व्यापार और उद्योग के साथ अन्ततः कला और विज्ञान का आविर्भाव हुआ। क़बीलों से जातियों और राज्यों का विकास हुआ। क़ानून और राजनीति का आविर्भाव हुआ और उनके साथ मानव मस्तिष्क में मानव-जगत के काल्पनिक दर्पण-प्रतिबिम्ब – धर्म – का उदय हुआ। प्रथमतः मस्तिष्क की उपज लगनेवाले और मानव समाजों के ऊपर छाये प्रतीत होनेवाले इन सारे सृजनों के आगे श्रमशील हाथ के अधिक साधारण उत्पादन पृष्ठभूमि में चले गये। ऐसा इस कारण से और भी हुआ कि समाज के विकास की बहुत प्रारम्भिक मंज़िल से ही (उदाहरणार्थ आदिम परिवार में ही) श्रम को नियोजित करनेवाला मस्तिष्क नियोजित श्रम को दूसरों के हाथों से करा सकने में समर्थ था। सभ्यता की द्रुत प्रगति का समूचा श्रेय मस्तिष्क को, मस्तिष्क के विकास एवं क्रियाकलाप को दे डाला गया। मनुष्य अपने कार्यों की व्याख्या अपनी आवश्यकताओं से करने के बदले अपने विचारों से करने के आदी हो गये (हालांकि आवश्यकताएं ही मस्तिष्क में प्रतिबिम्बित होती हैं, चेतना द्वारा ग्रहण की जाती हैं)। अतः कालक्रम में उस भाववादी विश्वदृष्टिकोण का उदय हुआ जो प्राचीन यूनानी-रोमन समाज के पतन के बाद से तो ख़ास तौर पर मानवों के मस्तिष्क पर हावी रहा है। वह अब भी इस हद तक उनके ऊपर हावी है कि डार्विन पंथ के भौतिकवादी से भौतिकवादी प्रकृति-विज्ञानी भी अभी तक मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में स्पष्ट धारणा निरूपित करने में असमर्थ हैं क्योंकि इस विचारधारा के प्रभाव में पड़कर वे इसमें श्रम द्वारा अदा की गयी भूमिका को नहीं देखते।

जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है, पशु अपने क्रियाकलाप से मानवों की ही भांति बाह्य प्रकृति को परिवर्तित करते हैं यद्यपि वे उस हद तक ऐसा नहीं करते जिस हद तक मनुष्य करता है। और जैसा कि हम देख चुके हैं उनके द्वारा अपने परिवेश में किया गया यह परिवर्तन उलटकर उनके ऊपर असर डालता है तथा अपने प्रणेताओं को परिवर्तित करता है। प्रकृति में पृथक् रूप से कुछ भी नहीं होता। हर चीज़ अन्य चीज़ों पर प्रभाव डालती तथा उनके द्वारा

स्वयं प्रभावित होती है। इस सर्वांगीण गति एवं अन्योन्यक्रिया को बहुधा भुला देने के कारण ही प्रकृति-विज्ञानी साधारण से साधारण चीजों को स्पष्टता के साथ नहीं देख पाते। हम देख चुके हैं कि किस तरह बकरियों ने यूनान में वनों के पुनर्जनन को रोका है। सेंट हेलेना द्वीप में वहां पहुंचनेवाले प्रथम यात्रियों द्वारा उतारे गये बकरों और सूअरों ने पहले से चली आती वहां की वनस्पतियों का लगभग पूरी तरह सफ़ाया कर दिया और ऐसा करके उन्होंने बाद में आये नाविकों और आबादकारों द्वारा लाये पौधों के प्रसार के लिए ज़मीन तैयार की। परन्तु यदि पशु अपने परिवेश पर अधिक समय तक प्रभाव डालते हैं तो ऐसा अचेत रूप से ही होता है तथा स्वयं पशुओं के सम्बन्ध में यह महज़ संयोग की बात होती है। लेकिन मनुष्य पशु से जितना ही अधिक दूर होते हैं, उतना ही प्रकृति पर उनका प्रभाव पहले से ज्ञात निश्चित लक्ष्यों की ओर निर्देशित, नियोजित क्रिया का रूप धारण कर लेता है। पशु यह महसूस किये बिना कि वह क्या कर रहा है, किसी इलाक़े की वनस्पतियों को नष्ट करता है। मनुष्य नष्ट करता है मुक्त भूमि पर फ़सलें बोने के लिए अथवा वृक्ष एवं अंगूर की लताएं रोपने के लिए, जिनके बारे में वह जानता है कि वे बोयी गयी मात्रा से कहीं अधिक उपज देंगी। उपयोगी पौधों और पालतू पशुओं को वह एक देश से दूसरे में स्थानान्तरित करता है और इस प्रकार पूरे के पूरे महाद्वीपों के पशुओं एवं पादपों को बदल डालता है। इतना ही नहीं। कृत्रिम प्रजनन के द्वारा वनस्पति और पशु दोनों ही मानव के हाथों से इस तरह बदल दिये जाते हैं कि वे पहचाने भी नहीं जा सकते। उन जंगली पौधों की व्यर्थ ही अब भी खोज की जा रही है जिनसे हमारे नाना प्रकार के अन्नों की उत्पत्ति हुई है। यह प्रश्न कि हमारे कुत्तों का, जो ख़ुद भी एक दूसरे से अति भिन्न हैं, अथवा उतनी ही भिन्न नस्लों के घोड़ों का पूर्वज कौनसा वन्य पशु है अब भी विवादास्पद है।

बात चाहे जो भी हो, पशुओं के नियोजित पूर्वकल्पित ढंग से काम कर सकने की क्षमता के बारे में विवाद उठाना हमारा मक़सद नहीं है। इसके विपरीत, जहां भी प्रोटोप्लाज्म का, जीवित एल्बूमीन का अस्तित्व है और वह प्रतिक्रिया करता है, यानी निश्चित बाह्य उद्दीपनाओं के फलस्वरूप निश्चित क्रियायें सम्पन्न करता है, भले ही ये क्रियायें अत्यन्त ही सहज प्रकार की हों, वहां क्रिया की एक नियोजित विधि विद्यमान रहती है। यह प्रतिक्रिया वहां भी होती है जहां अभी कोई कोशिका नहीं है, तंत्रिका कोशिका की तो बात ही दूर रही। इसी प्रकार से कीटभक्षी पौधों का अपना शिकार पकड़ने का ढंग किसी मानी में नियोजित

क्रिया सा लगता है यद्यपि वह बिल्कुल अचेतन रूप में की जाती है। पशुओं में सचेत, नियोजित क्रिया की क्षमता तंत्रिका तन्त्र के विकास के अनुपात में विकसित होती है और स्तनधारी पशुओं में यह काफ़ी उच्च स्तर तक पहुंच जाती है। इंगलैंड में लोमड़ी का शिकार करनेवाले आसानी से यह देख सकते हैं कि लोमड़ी अपना पीछा करनेवालों की आंखों में धूल झोंकने के लिए स्थानीय इलाक़े की अपनी उत्तम जानकारी का इस्तेमाल करने का कैसा अचूक ज्ञान रखती है और भूमि की अपने लिए सुविधाजनक हर विशेषता को वह कितनी अच्छी तरह जानती तथा कितनी अच्छी तरह शिकारी को गुमराह कर देने के लिए उसका इस्तेमाल करती है। मानव की संगति में रहने के कारण अधिक विकसित पालतू पशुओं को हम नित्य ही चतुराई के ठीक उसी स्तर के कार्य क़रते देखते हैं जिस स्तर के बच्चे किया करते हैं। कारण यह है कि जिस प्रकार माता के गर्भ में मानव भ्रूण के विकास का इतिहास करोड़ों वर्षों में फैले हमारे पशु पूर्वजों के केंचुए से आरम्भ करके अब तक के शारीरिक विकास के इतिहास की संक्षिप्त पुनरावृत्ति है, उसी प्रकार मानव शिशु का मानसिक विकास इन्हीं पूर्वजों के, कम से कम बाद में आनेवाले पूर्वजों के, बौद्धिक विकास की और भी संक्षिप्त पुनरावृत्ति है। पर सारे के सारे पशुओं की सारी की सारी नियोजित क्रिया भी कभी धरती पर उनकी इच्छा की छाप न छोड़ सकी। यह श्रेय मनुष्य को ही प्राप्त हुआ।

संक्षेप में, पशु बाह्य प्रकृति का **उपयोग** मात्र करता है और उसमें केवल अपनी उपस्थिति द्वारा परिवर्तन लाता है। पर मनुष्य अपने परिवर्तनों द्वारा प्रकृति से अपने काम करवाता है, उस पर **स्वामिवत शासन करता** है। यही मनुष्य तथा अन्य पशुओं के बीच अन्तिम एवं सारभूत अन्तर है। श्रम ही यहां भी इस अन्तर को लानेवाला होता है।*

परन्तु प्रकृति पर अपनी मानवीय विजयों के कारण हमें आत्मप्रशंसा में विभोर नहीं हो जाना चाहिए, क्योंकि वह हर ऐसी विजय का हमसे प्रतिशोध लेती है। यह सही है कि प्रत्येक विजय से प्रथमत: वे ही परिणाम प्राप्त होते हैं जिनका हमने भरोसा किया था, पर द्वितीयत: और तृतीयत: उसके बिल्कुल ही भिन्न तथा अप्रत्याशित परिणाम होते हैं, जिनसे अक्सर पहले परिणाम का असर जाता रहता। मेसोपोटामिया, यूनान, एशिया माइनर तथा अन्य स्थानों में जिन लोगों ने कृषियोग्य भूमि प्राप्त करने के लिए वनों को बिल्कुल ही नष्ट कर डाला,

---

*हाशिये पर एंगेल्स की टीप: "गौरवशाली बनाता है।" – सं०

होंने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि वनों के साथ आर्द्रता के संग्रह-केंद्रों और गारों का उन्मूलन करके वे इन देशों की मौजूदा तबाही की बुनियाद डाल रहे । एल्प्स के इटालियनों ने जब पर्वतों की दक्षिणी ढलानों पर चीड़ के वनों को पे उत्तरी ढलानों पर ख़ूब सुरक्षित रखे गये थे) पूरी तरह काट डाला तब हें इस बात का आभास नहीं था कि ऐसा करके वे अपने प्रदेश के दुग्ध उद्योग कुठाराघात कर रहे हैं। इससे भी कम आभास उन्हें इस बात का था कि ने कार्य द्वारा वे अपने पर्वतीय सोतों को वर्ष के अधिक भाग के लिए जलहीन ा रहे हैं तथा साथ ही इन सोतों के लिए यह सम्भव बना रहे हैं कि वे र्ऋतु में मैदानों में और भी भयानक बाढ़ें लाया करें। यूरोप में आलू का प्रचार नेवालों को यह ज्ञात नहीं था कि इस मंडमय कन्द को फैलाने के साथ-साथ स्क्रोफ़ुला रोग का भी प्रसार कर रहे हैं। अतः हमें हर पग पर यह याद कराया ता है कि प्रकृति पर हमारा शासन किसी विदेशी जाति पर एक विजेता के सन जैसा कदापि नहीं है, वह प्रकृति से बाहर के किसी व्यक्ति जैसा शासन ीं है, बल्कि रक्त, मांस और मस्तिष्क से युक्त हम प्रकृति के ही प्राणी हैं, ारा अस्तित्व उसके ही मध्य है और उसके ऊपर हमारा सारा शासन केवल बात में निहित है कि अन्य सभी प्राणियों से हम इस मानी में श्रेष्ठ हैं कि प्रकृति के नियमों को जान सकते और ठीक-ठीक लागू कर सकते हैं।

वास्तव में, ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं हम उसके नियमों को अधिकाधिक ढंग से सीखते जाते हैं और प्रकृति के नैसर्गिक प्रक्रम में अपने हस्तक्षेप के कालिक परिणामों के साथ उसके अधिक दूरवर्ती परिणामों को भी देखने लगे खासकर प्रकृति-विज्ञान की वर्तमान शताब्दी की प्रबल प्रगति के बाद तो हम काधिक ऐसी स्थिति में आते जा रहे हैं जहां कम से कम अपने सबसे सा- ण उत्पादक क्रियाकलाप के अधिक दूरवर्ती प्राकृतिक परिणामों तक को हम सकते हैं और फलतः उन्हें नियंत्रित कर सकते हैं। लेकिन जितना ही ज्यादा होगा उतना ही ज्यादा मनुष्य प्रकृति के साथ अपनी एकता न केवल महसूस ी बल्कि उसे समझेंगे भी और तब यूरोप में प्राचीन क्लासिकीय युग के अवसान बाद उद्भूत होनेवाली और ईसाई मत में सबसे अधिक विशद रूप में निरूपित जानेवाली मस्तिष्क और भूतद्रव्य, मनुष्य और प्रकृति, आत्मा और शरीर वैपरीत्य की निरर्थक एवं अस्वाभाविक धारणा उतनी ही अधिक असम्भव होती गी।

परन्तु उत्पादन की दिशा में निर्देशित अपने कार्यकलाप के अधिक दूरवर्ती

प्राकृतिक फलों का थोड़ा-बहुत आकलन कर सकना सीखने में जहां हमें हज़ारों वर्षों की मेहनत लग चुकी है, वहां इन क्रियाओं के अधिक दूरवर्ती सामाजिक फलों का आकलन करने का काम और भी दुष्कर रहा है। आलू के प्रचार के फलस्वरूप स्क्रोफ़ुला रोग के प्रसार की हम चर्चा कर चुके हैं। परन्तु श्रमजीवियों के आलू के आहार पर ही आश्रित हो जाने का पूरे के पूरे देशों के अन्दर आम जनसमुदाय की जीवनावस्था पर जो प्रभाव पड़ा है, उसके मुक़ाबले में स्क्रोफ़ुला रोग भी भला क्या है? अथवा उस अकाल की तुलना में ही यह रोग क्या था जिसने आलू की फ़सल में कीड़ा लग जाने के फलस्वरूप १८४७ में आयरलैण्ड को अपना ग्रास बनाया था और सम्पूर्णतया या लगभग सम्पूर्णतया आलू के आहार पर पले दस लाख आयरलैण्डवासियों को मौत का शिकार बना दिया तथा बीस लाख को विदेशों में जाकर बसने को मजबूर किया था? जब अरबों ने शराब चुआना सीखा तो यह बात उनके दिमाग़ में बिल्कुल नहीं आयी थी कि ऐसा करके वे उस समय तक अज्ञात अमरीकी महाद्वीप के आदिवासियों के भावी उन्मूलन का एक मुख्य साधन उत्पन्न कर रहे थे। और बाद में जब कोलम्बस ने अमरीका की खोज की तो उसे नहीं पता था कि ऐसा करके वह यूरोप में बहुत पहले मिटायी जा चुकी दास-प्रथा को नवजीवन प्रदान कर रहा था और नीग्रो-व्यापार की नींव डाल रहा था। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में भाप का इंजन आविष्कार करने में संलग्न लोगों के दिमाग़ में यह बात नहीं आयी थी कि वे वह औज़ार तैयार कर रहे हैं जो समूची दुनिया के अन्दर सामाजिक सम्बन्धों में अन्य किसी भी औज़ार की अपेक्षा बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन ला देनेवाला होगा, ख़ास करके यूरोप में यह औज़ार थोड़े-से लोगों के हाथ में धन को संकेंद्रित करते हुए और विशाल बहुसंख्यक को सम्पत्तिहीन बनाते हुए पहले तो पूंजीपति वर्ग को सामाजिक और राजनीतिक प्रभुता प्रदान करनेवाला, लेकिन उसके बाद पूंजीपति और सर्वहारा वर्गों के उस वर्ग-संघर्ष को जन्म देनेवाला होगा जिसका अन्तिम परिणाम पूंजीपति वर्ग की सत्ता का ख़ात्मा और सभी वर्ग विग्रहों की समाप्ति ही हो सकता है। परन्तु इस क्षेत्र में भी लम्बे और प्रायः कठोर अनुभव के बाद तथा ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह और विश्लेषण करके धीरे-धीरे हम अपने उत्पादक क्रियाकलाप के अप्रत्यक्ष, अधिक दूरवर्ती सामाजिक परिणामों को स्पष्ट देखना सीख रहे हैं। इस प्रकार इन परिणामों को भी नियंत्रित और नियमित करने की सम्भावना हमारे सामने प्रस्तुत हो रही है।

पर ऐसे नियमन को क्रियान्वित करने के लिए ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। इसके

लिए हमारी अभी तक की उत्पादन-प्रणाली में, और उसके साथ हमारी समूची समकालीन समाज-व्यवस्था में आमूल क्रान्ति अपेक्षित है।

आज तक जितनी भी उत्पादन-प्रणालियां रही हैं, उन सब का लक्ष्य केवल श्रम के सबसे तात्कालिक एवं प्रत्यक्षतः उपयोगी परिणाम प्राप्त करना मात्र रहा है। इनके आगे के परिणामों की, जो बाद में आते हैं तथा क्रमिक पुनरावृत्ति एवं संचय द्वारा ही प्रभावोत्पादक बनते हैं, पूर्णतया उपेक्षा की गयी। भूमि का सम्मिलित स्वामित्व जो आरम्भ में था, एक ओर तो मानवों के ऐसे विकास स्तर के अनुरूप था जिसमें उनका क्षितिज सामान्यतः सम्मुख उपस्थित वस्तुओं तक सीमित था। दूसरी ओर उसमें उपलब्ध भूमि का कुछ फ़ाज़िल होना पूर्वमान्य था जिससे कि इस आदिम क़िस्म की अर्थव्यवस्था के किन्हीं सम्भव दुष्परिणामों का निराकरण करने की गुंजाइश पैदा होती थी। इस फ़ाज़िल भूमि के चुक जाने के साथ सम्मिलित स्वामित्व का ह्रास होने लगा। पर उत्पादन के सभी उच्चतर रूपों के परिणामस्वरूप आबादी विभिन्न वर्गों में विभक्त हो जाती थी और इस विभाजन के कारण शासक एवं उत्पीड़ित वर्गों का विग्रह शुरू हो जाता था। अतः शासक वर्ग का हित उस हद तक उत्पादन का मुख्य प्रेरक तत्व बन गया जिस हद तक कि उत्पादन उत्पीड़ित जनता के जीवन-निर्वाह के न्यूनतम साधनों तक ही सीमित न था। पश्चिमी यूरोप में आज प्रचलित पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली में यह चीज़ सबसे अधिक पूर्णता के साथ क्रियान्वित की गयी है। उत्पादन और विनिमय पर प्रभुत्व रखनेवाले अलग अलग पूंजीपति अपने कार्यों के सबसे तात्कालिक उपयोगी परिणाम की चिन्ता करने में ही समर्थ हैं। वस्तुतः यह उपयोगी परिणाम भी – जहां तक कि प्रश्न उत्पादित और विनिमय की गयी वस्तु की उपयोगिता का होता है – पृष्ठभूमि में चला जाता है और विक्रय द्वारा मिलनेवाला मुनाफ़ा एकमात्र प्रेरक तत्त्व बन जाता है।

* * *

पूंजीपति वर्ग का सामाजिक विज्ञान – क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र – प्रधानतया उत्पादन और विनिमय से सम्बन्धित मानव क्रियाकलाप के केवल सीधे-सीधे इच्छित सामाजिक प्रभावों को ही लेता है। यह पूर्णतया उस सामाजिक संगठन के अनुरूप है जिसकी वह सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति है। चूंकि पूंजीपति तात्कालिक मुनाफ़े के लिए उत्पादन और विनिमय करते हैं इसलिए केवल निकटतम, सबसे

तात्कालिक परिणामों का ही सर्वप्रथम लेखा लिया जा सकता है। कोई कारख़ानेदार अथवा व्यापारी जब तक सामान्य इच्छित मुनाफ़े पर किसी उत्पादित अथवा ख़रीदे माल को बेचता है वह ख़ुश रहता है और इसकी चिन्ता नहीं करता कि बाद में माल और उसके ख़रीदारों का क्या होता है। इस क्रियाकलाप के प्राकृतिक प्रभावों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। जब क्यूबा में स्पेनी बाग़ानमालिकों ने पर्वतों की ढलानों पर खड़े जंगलों को जला डाला और उनकी राख से अत्यन्त लाभप्रद कहवा-वृक्षों की केवल एक पीढ़ी के लिए पर्याप्त खाद हासिल की, तब उन्हें इस बात की परवाह न हुई कि बाद में उष्णप्रदेशीय भारी वर्षा मिट्टी की अरक्षित ऊपरी परत को बहा ले जायेगी और नंगी चट्टानें ही छोड़ देगी! जैसे समाज के सम्बन्ध में वैसे ही प्रकृति के सम्बन्ध में भी वर्तमान उत्पादन-प्रणाली मुख्यतया केवल प्रथम, ठोस परिणाम भर से मतलब रखती है। और तब विस्मय प्रकट किया जाता है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए किये गये क्रियाकलाप के दूरवर्ती प्रभाव बिल्कुल दूसरे ही प्रकार के, बल्कि मुख्यतया बिल्कुल उलटे ही प्रकार के होते हैं; कि पूर्ति और मांग का तालमेल बिल्कुल विपरीत वस्तु में परिणत हो जाता है (जैसा कि प्रत्येक दसवर्षीय औद्योगिक चक्र से, जिसका जर्मनी तक "गिरावट"[48] के मौक़े पर आरम्भिक स्वाद चख चुका है, सिद्ध हो चुका है); कि अपने श्रम पर आधारित निजी स्वामित्व अनिवार्यतः मज़दूरों की सम्पत्तिहीनता में विकसित हो जाता है जबकि समस्त धन ग़ैरमज़दूरों के हाथों में अधिकाधिक केन्द्रित होता जाता है; कि [...]*

फ़े० एंगेल्स द्वारा १८७६ में लिखित। अंग्रेज़ी से अनूदित।

सर्वप्रथम «*Die Neue Zeit*», Bd.2,
№44, 1895—1896, में प्रकाशित।

* लेख की पाण्डुलिपि यहीं समाप्त हो जाती है। – सं०

फ़्रेडरिक एंगेल्स

कार्ल मार्क्स

समाजवाद, और इस तरह वर्तमान काल के पूरे मज़दूर आन्दोलन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करनेवाले सबसे पहले व्यक्ति, कार्ल मार्क्स का जन्म १८१८ में त्रियेर नामक नगर में हुआ था। उन्होंने बोन और बर्लिन में पहले क़ानून का अध्ययन किया, लेकिन जल्दी ही वह इतिहास और दर्शन को अपना सारा समय देने लगे। १८४२ में वह दर्शनशास्त्र के सहायक प्रोफ़ेसर होने जा ही रहे थे कि फ़्रेडरिक-विल्हेल्म तृतीय की मृत्यु के बाद जो राजनीतिक आन्दोलन छिड़ गया था, उसने उन्हें दूसरे ही रास्ते की ओर मोड़ दिया। उनके सहयोग से राइन प्रदेश के उदारपंथी पूंजीपतियों के नेता काम्पहाउज़ेन, हान्सेमान, आदि ने कोलोन में *«Rheinische Zeitung»*[49] नामक पत्र निकाला। १८४२ की शरत ऋतु में मार्क्स, जिन द्वारा राइनी विधान सभा की कार्यवाही की आलोचना ने सब का ध्यान आकर्षित किया था, इस पत्र के प्रधान बना दिये गये। *«Rheinische Zeitung»* स्वभावतः सेन्सर की निगरानी में निकलता था, लेकिन सेन्सर-विभाग उससे पार न पा सकता था।* प्रायः सदा ही *«Rheinische Zeitung»* महत्त्व के लेख छाप ही लेता। सेन्सर अधिकारी के आगे पहले महत्त्वहीन चारा डाल दिया जाता था, जिस पर क़लम चलाने के बाद या तो वह ख़ुद ही थककर हार मान लेता या इस धमकी के सामने झुक जाता कि लेख पास न हुए तो कल अख़बार ही न निकलेगा। यदि *«Rheinische Zeitung»* जैसे

---

* *«Rheinische Zeitung»* का पहला सेन्सर अधिकारी पुलिस कौंसिलर दोल्लेशाल था। यह वही आदमी था जिसने *«Kölnische Zeitung»*[50] में दान्ते के *«Divine Comedy»* ('दिव्य प्रहसन') के **फ़िलेलीथीस** (बाद में सैक्सनी का राजा जोहन) द्वारा किये गये अनुवाद के एक विज्ञापन पर यह कहकर कैंची चला दी थी कि हमें ईश्वरीय मामलों को प्रहसन का विषय नहीं बनाना चाहिए।

साहसी दस अख़बार और होते, जिनके प्रकाशक कम्पोजिंग पर सौ दो सौ थेलर ज्यादा ख़र्च करने के लिए तैयार रहते, तो १८४३ में ही जर्मनी में सेन्सर का काम असम्भव हो जाता। लेकिन जर्मन अख़बारों के मालिक ओछी तबीयत के डरपोक कूपमण्डूक थे और यह लड़ाई *«Rheinische Zeitung»* अकेले ही चलाता था। उसने एक के बाद एक सेन्सरों को थका डाला, अन्त में उस पर दोहरा सेन्सर लगाया गया। एक बार सेन्सर किये जाने के बाद केन्द्रीय सरकार का प्रादेशिक प्रतिनिधि उसे फिर देखभाल कर अन्तिम बार सेन्सर करता था। लेकिन यह तरीक़ा भी कारगर न हुआ। १८४३ के आरम्भ में सरकार ने कहा कि इस अख़बार को क़ाबू में रखना असम्भव है, इसलिए उसने उसे बन्द कर दिया।

इसी बीच मार्क्स ने भावी प्रतिक्रियावादी मंत्री फ़ॉन वेस्तफ़ालेन की बहन से शादी कर ली थी। वह पेरिस चले गये और वहां आ० रूगे के साथ *«Deutsch-Französische Jahrbücher»*[51] निकालने लगे जिसमें उन्होंने अपनी समाजवादी लेखमाला का श्रीगणेश किया। सबसे पहले उन्होंने 'हेगेल के न्याय-दर्शन की समालोचना' लिखी। इसके बाद एंगेल्स के साथ मिलकर 'पवित्र परिवार। ब्रूनो बावेर और उनकी मंडली के विरोध में' लिखा। यह रचना उस समय के जर्मन दार्शनिक भाववाद के एक नवीनतम रूप की व्यंग्यात्मक समालोचना थी।

राजनीतिक अर्थशास्त्र और महान फ़ान्सीसी क्रान्ति के इतिहास के अध्ययन में समय लगाने के बावजूद मार्क्स को प्रशा की सरकार पर जब-तब वार करने का मौक़ा मिल जाता था। प्रशा की सरकार ने १८४५ में गीज़ो के मंत्रिमंडल द्वारा उन्हें फ़्रांस से निकलवाकर बदला चुकाया।[52] कहा जाता है कि अलेक्ज़ेंडर फ़ॉन हम्बोल्ट इस काम के लिए बीच में पड़े थे। मार्क्स ने ब्रसेल्स में डेरा डाला और वहां १८४७ में फ़्रांसीसी भाषा में 'दर्शन की दरिद्रता' प्रकाशित की—यह पुस्तक प्रूदों की रचना 'दरिद्रता का दर्शन' की आलोचना है। १८४८ में उन्होंने 'मुक्त व्यापार की विवेचना' प्रकाशित की। इसी समय, अवसर से लाभ उठाकर, उन्होंने ब्रसेल्स में जर्मन मज़दूर समाज[53] की स्थापना की और इस तरह व्यावहारिक आन्दोलन आरम्भ कर दिया। यह आन्दोलन उनके लिए और भी महत्त्व का हो गया जब वह और उनके राजनीतिक साथी १८४७ में गुप्त कम्युनिस्ट लीग में शामिल हो गये, जो कई साल पहले से चल रही थी। अब उसका ढांचा आमूल बदल डाला गया। पहले यह संस्था कमोबेश षड्यंत्रकारी संस्था थी, लेकिन

अब वह कम्युनिस्ट प्रचार का एक सीधा-सादा संगठन बन गयी। यदि वह गुप्त रूप से कार्य करती थी तो केवल इसलिए कि दूसरा कोई चारा न था। जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी का यही पहला संगठन था। जहां भी जर्मन मज़दूरों की यूनियनें थीं, वहां लीग भी थी। इंगलैण्ड, बेल्जियम, फ़ांस और स्विट्ज़रलैण्ड की प्रायः सभी यूनियनों के और जर्मनी की भी बहुत-सी यूनियनों के नेता लीग के सदस्य थे। जर्मनी के उभरते हुए मज़दूर आन्दोलन में लीग का बहुत बड़ा हाथ था। इसके सिवा हमारी लीग ने ही सबसे पहले समूचे मज़दूर आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र पर ज़ोर दिया और उसे व्यवहार में भी चरितार्थ किया – उसके सदस्यों में अंग्रेज़, बेलजियन, हंगेरियन, पोल, आदि थे और वह मज़दूरों की अन्तर्राष्ट्रीय सभायें भी आयोजित करती थी – विशेषकर लन्दन में।

१८४७ में हुई दो कांग्रेसों में लीग का कायापलट हो गया। दूसरी कांग्रेस ने निश्चय किया कि पार्टी के मूल सिद्धान्तों को निरूपित और एक घोषणापत्र के रूप में प्रकाशित किया जाये। इस घोषणापत्र को तैयार करने का भार मार्क्स और एंगेल्स को सौंपा गया। इस प्रकार फ़रवरी क्रान्ति के कुछ ही दिन पहले, १८४८ में 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र'* प्रकाशित हुआ। तब से इस घोषणापत्र का अनुवाद यूरोप की प्रायः सभी भाषाओं में हो चुका है।

«Deutsche-Brüsseler-Zeitung»[54] ने – जिसके प्रकाशन में मार्क्स का भी हाथ था – पितृदेश में पुलिस राज की नेमतों का बेरहमी से पर्दाफ़ाश किया। इससे रुष्ट होकर प्रशा की सरकार ने मार्क्स को फिर निकलवाने की कोशिश की, लेकिन यह कोशिश बेकार गई। किन्तु जब फ़रवरी क्रान्ति के फलस्वरूप ब्रसेल्स में भी जन-आन्दोलन शुरू हुआ और बेल्जियम में आमूल परिवर्तन आसन्न ज्ञात हुआ तो वहां की सरकार ने बिना किसी हिचकिचाहट के मार्क्स को गिरफ़्तार कर देश से बाहर भेज दिया। इसी बीच फ़ांस की अस्थायी सरकार ने फ़्लोकोन की मारफ़त उन्हें पेरिस लौटने का बुलावा भेजा और मार्क्स ने यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

पेरिस में उन्होंने वहां बसे जर्मनों के बीच प्रचलित इस कपट योजना का विशेष रूप से विरोध किया कि फ़ान्स में काम करनेवाले जर्मन मज़दूरों के हथियारबन्द जत्थे बनाये जायें और उन्हें जर्मनी में भेजकर वहां क्रान्ति करायी जाये और जनतंत्र की स्थापना करायी जाये। एक तो जर्मनी को अपनी क्रान्ति

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। – सं०

स्वयं ही करनी थी; दूसरे, अस्थायी सरकार के लामार्तीन जैसे लोग विश्वासघात करके पहले से ही फ्रांस में स्थापित होनेवाले हर क्रान्तिकारी विदेशी जत्थे को उस सरकार के हवाले करते थे जिसका तख़्ता उसे उलटना था, जैसा कि बेल्जियम और बाडेन में हुआ था।

मार्च की क्रान्ति के बाद मार्क्स कोलोन चले गये और वहां उन्होंने *«Neue Rheinische Zeitung»* की स्थापना की। यह समाचारपत्र १ जून १८४८ से १६ मई १८४६ तक चलता रहा। यह एकमात्र ऐसा पत्र था जो उस समय के जनवादी आन्दोलन के अन्दर सर्वहारा दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था, जैसा कि जून १८४८ के पेरिस विद्रोह[55] की उसकी खुली हिमायत से स्पष्ट था। समाचारपत्र के प्राय: सभी साझेदार इसके कारण उससे अलग हो गये। *«Kreuz-Zeitung»*[56] नामक समाचारपत्र ने *«Neue Rheinische Zeitung»* पर आक्षेप करते हुए लिखा कि वह "चिम्बोराज़ो* तुल्य धृष्टता" के साथ सम्राट और राज्य के वाइस-रीजेंट से लेकर पुलिस के सिपाही तक सभी पवित्र वस्तुओं पर प्रहार करता है और वह भी प्रशा के एक दुर्ग में बैठकर जहां ८,००० सिपाहियों का गैरीसन मौजूद है, परन्तु उसका यह लिखना व्यर्थ था। राइनी उदारपंथी कूपमण्डूक भी जो सहसा प्रतिक्रियावादी बन गये थे, अख़बार पर बहुत गुस्सा हुए, पर यह गुस्सा भी व्यर्थ था। १८४८ की शरद में एक लम्बे अरसे के लिए यह समाचारपत्र मार्शल लॉ के अंतर्गत बन्द कर दिया गया, परन्तु यह भी व्यर्थ रहा। फ़्रैंकफ़ुर्ट स्थित जर्मन राज्य का न्याय मंत्रालय पत्र के कितने ही लेखों पर आपत्ति प्रकट करते हुए कोलोन के सरकारी वकील को लिखता रहा ताकि उसके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई की जा सके। पर वह भी व्यर्थ। पुलिस की आंखों के सामने ही पत्र बड़े मज़े से सम्पादित और मुद्रित होता रहा। सरकार और पूंजीपतियों पर उसके आक्षेपों की तीव्रता के साथ उसकी प्रतिष्ठा और उसकी बिक्री भी बढ़ती गयी। नवम्बर, १८४८ में जब प्रशा में coup d'état** हुआ तो *«Neue Rheinische Zeitung»* ने हर अंक के मुखपृष्ठ पर जनता से अपील की कि टैक्स मत दो और हिंसा का मुक़ाबला हिंसा से करो। १८४६ के वसन्त में इस कारण और एक दूसरे लेख के कारण भी जूरी के सामने उस पर मुक़दमा चला, लेकिन

---

* **चिम्बोराज़ो** दक्षिण अमरीका के एण्डीज़ पर्वत की सबसे ऊंची चोटियों में है। – सं०

** बलात् सत्ता-परिवर्तन। – सं०

वह दोनों बार अपराधमुक्त करार दिया गया। अन्त में १८४६ में जब ड्रैस्डेन में और राइन प्रान्त में मई विद्रोह[57] दबा दिये गये और काफ़ी बड़े सैन्य दलों को इकट्ठा कर और उनकी लामबंदी कर बाडेन-फाल्ज़ विद्रोह के विरुद्ध प्रशियाई अभियान शुरू किया गया तब सरकार को यक़ीन हो गया कि अब वह इतनी शक्तिशाली हो गयी है कि *«Neue Rheinische Zeitung»* को बलापूर्वक दबा सके। उसका अंतिम अंक लाल स्याही में छपा हुआ १६ मई को प्रकाशित हुआ।

मार्क्स फिर पेरिस चले गये, लेकिन १३ जून १८४६ के प्रदर्शन[58] के कुछ हफ़्ते बाद ही फ़्रांसीसी सरकार ने उनसे कहा कि या तो वह ब्रिटनी प्रांत में जाकर रहें, या फिर फ़्रांस को बिल्कुल ही छोड़ दें। उन्होंने फ़्रांस छोड़ना ही पसन्द किया और लन्दन चले आये, जहां तब से बराबर रहते आये हैं।

१८५० में उन्होंने हैम्बर्ग से *«Neue Rheinische Zeitung»* को रिव्यू के रूप में निकालने का प्रयत्न किया,[59] लेकिन प्रतिक्रियावादियों की निरन्तर बढ़ती हुई हिंसा के कारण उन्हें इससे विरत होना पड़ा। दिसम्बर १८५१ में फ़्रान्स में बलात् सत्ता-परिवर्तन के बाद ही मार्क्स ने 'लुई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर'* प्रकाशित की (न्यूयार्क से १८५२ में; दूसरा संस्करण युद्ध के कुछ ही पहले हैम्बर्ग से १८६६ में)। १८५३ में उन्होंने 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे रहस्योद्घाटन' नामक पुस्तक लिखी जो सबसे पहले बाज़ेल में मुद्रित हुई, बाद को बोस्टन में, और फिर अभी हाल में लाइप्ज़िग में।

कोलोन में कम्युनिस्ट लीग के सदस्यों के ख़िलाफ़ फ़ैसला होने[60] के बाद मार्क्स राजनीतिक आन्दोलन से अलग हो गये। दस साल तक वह ब्रिटिश म्यूज़ियम के पुस्तकालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र पर उपलब्ध विपुल सामग्री का अध्ययन करते रहे। दूसरी ओर वह *«New-York Daily Tribune»*[61] के लिए लिखते भी रहे। अमरीका में गृहयुद्ध[62] के आरम्भ तक यह समाचारपत्र न केवल उनके नाम से उनके लेखों को छापता रहा बल्कि उसने यूरोप और एशिया की परिस्थितियों के बारे में मार्क्स के बहुत-से अग्रलेख भी छापे। ब्रिटेन की सरकारी दस्तावेज़ों का विस्तृत अध्ययन करके उन्होंने लार्ड पामर्स्टन के विरोध में जो लेख लिखे, वे लन्दन में पैम्फ़लेटों के रूप में प्रकाशित हुए।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के उनके वर्षों के अध्ययन के प्रथम फल के रूप में

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग २। – सं०

१८५९ में एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका नाम था 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास', भाग १ (बर्लिन, डुंकेर)। मूल्य-संबंधी मार्क्स के सिद्धान्त की, जिसमें मुद्रा-सम्बन्धी सिद्धान्त सम्मिलित है, पहली सुसंगत व्याख्या यहां मिलती है। इतालवी युद्ध[63] के समय मार्क्स ने लन्दन में प्रकाशित जर्मन अख़बार «*Das Volk*»[64] में बोनापार्तवाद और उस समय की प्रशियाई नीति, दोनों की ही तीव्र आलोचना की। बोनापार्तवाद उस समय उदार मत का रूप धारण किये हुए था और उत्पीड़ित जातियों का उद्धारक होने का स्वांग रच रहा था। और उस समय की प्रशियाई नीति तटस्थता के बहाने गड़बड़ी से अपना उल्लू सीधा करने की घात में थी। इस सम्बन्ध में श्री कार्ल फ़ोग्ट की तीव्र आलोचना करना भी आवश्यक था, क्योंकि वह प्रिंस नेपोलियन (प्लों-प्लों) की आज्ञा से और लूई नेपोलियन से धन पाकर जर्मनी की तटस्थता ही नहीं, उसकी सहानुभूति के लिए भी आन्दोलन कर रहा था। जब फ़ोग्ट ने इसका उत्तर बेहद नागवार और जान-बूझकर गढ़े हुए झूठे आक्षेप लगाकार दिया, तब मार्क्स ने 'श्री फ़ोग्ट' (लन्दन, १८६०) लिखकर उनको प्रत्युत्तर दिया। इस पुस्तक में उन्होंने फ़ोग्ट और साम्राज्यवादी गुट के दूसरे नक़ली जनवादी लोगों की बखिया उधेड़कर रख दी। स्वयं फ़ोग्ट को बाह्य और आन्तरिक साक्ष्य के आधार पर दिसम्बर-साम्राज्य से घूस लेने के लिए अपराधी ठहराया गया। दस साल बाद इस बात की पुष्टि भी हो गयी। १८७० में तूलरी[65] में बोनापार्त के भाड़े के टट्टुओं की एक सूची मिली, जिसे सितम्बर की सरकार[66] ने प्रकाशित किया। उसमें "फ़" अक्षर के नीचे लिखा था – "फ़ोग्ट – अगस्त १८५९ में उसे ४०,००० फ़्रैंक भेजे गये"।

अन्त में १८६७ में हैम्बर्ग में मार्क्स की मुख्य कृति 'पूंजी। पूंजीवादी उत्पादन की आलोचनात्मक समीक्षा, खंड १' प्रकाशित हुई। इसमें उनकी आर्थिक-समाजवादी धारणाओं के आधार की व्याख्या है और वर्तमान समाज, पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके फलाफल की उनकी आलोचना की मुख्य बातें हैं। इस युगप्रवर्तक पुस्तक का दूसरा संस्करण १८७२ में प्रकाशित हुआ। इस समय इस कृति के लेखक उसके दूसरे खंड को सूत्रबद्ध करने में लगे हुए हैं।

इस बीच यूरोप के विभिन्न देशों में मजदूर आन्दोलन इतना जोर पकड़ चुका था कि मार्क्स अपनी बहुत दिनों की संजोयी हुई आकांक्षा को चरितार्थ करने की बात सोच सकते थे यानी एक ऐसे मजदूर संघ की नींव डालने की बात, जिसमें यूरोप और अमरीका के सबसे उन्नत देश शामिल हों, जो साकार रूप में

समाजवादी आन्दोलन का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप स्वयं मज़दूरों के तथा पूंजीपतियों और उनकी सरकारों के सामने प्रदर्शित करे, ताकि सर्वहारा वर्ग प्रोत्साहित और संगठित हो और उसके शत्रु आतंकित हों। सेंट मार्टिन हॉल, लंदन में २८ सितम्बर १८६४ को रूस द्वारा फिर कुचल डाले गये पोलैण्ड की हमदर्दी में हुई एक आम सभा ने इस सवाल को पेश करने का अच्छा अवसर प्रदान किया। इसका उत्साहपूर्वक स्वागत हुआ। **अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ** की नींव डाली गयी। इस सभा में एक अस्थायी जनरल कौंसिल चुनी गई, जिसका दफ़्तर लंदन में रखा गया और इस तथा हेग कांग्रेस तक सभी जनरल कौंसिलों के प्राण मार्क्स ही थे। १८६४ की उद्घाटन घोषणा से लेकर १८७१ के फ़्रांस में गृह-युद्ध के बारे में चिट्ठी* तक इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल ने जितनी भी दस्तावेज़ें जारी कीं, वे सब मार्क्स की ही लिखी हुई थीं। इंटरनेशनल में मार्क्स के कार्यों का वर्णन स्वयं संघ के इतिहास का ही वर्णन है, जो बहरहाल यूरोप के मज़दूरों की स्मृति में अभी भी जीवित है।

पेरिस कम्यून के पतन ने इंटरनेशनल को असम्भव स्थिति में डाल दिया। यूरोपीय इतिहास में उसे एक ऐसे वक़्त में सामने ला दिया गया जब वह सर्वत्र सफल व्यावहारिक कार्य की संभावनाओं से वंचित हो चुका था। जिन घटनाओं ने उसे सातवीं महान शक्ति बना दिया था, उन्होंने ही साथ-साथ यह असंभव बना दिया था कि वह अपनी जुझारू शक्ति को एकत्र कर मैदान में उतरे और अनिवार्यतः पराजित न हो तथा मज़दूर आन्दोलन को दशाब्दियों पीछे न ठेल दे। इसके सिवा हर तरफ़ ऐसे तत्व उभर रहे थे, जो संघ की असली हालत को समझे या उसकी तरफ़ ध्यान दिये बिना ही उसकी अचानक बढ़ी हुई ख्याति का अपने व्यक्तिगत अहंकार या अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्त्ति के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे। एक साहसपूर्ण निर्णय करना था और मार्क्स ने ही यह निर्णय किया और हेग कांग्रेस में उसे पास भी करा लिया। एक गम्भीर प्रस्ताव पास कर इंटरनेशनल ने बकूनिनपंथियों के कार्यों के लिए ज़िम्मेदारी लेने से इनकार किया। ये अविवेकी और घिनौने लोग बकूनिनपंथियों के ही इर्दगिर्द जमा थे। इसके अलावा यह देखते हुए कि आम प्रतिक्रिया के मुक़ाबले, बिना ऐसे बलिदान दिये, जिनमें मज़दूर आन्दोलन की कमर ही टूट जाती, उन बढ़ी

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड २, भाग १। – सं०

हुई मांगों को पूरा करना, जो उससे की जा रही थीं, और अपनी सामर्थ्य को बनाये रखना असम्भव है—इस वस्तुस्थिति को देखते हुए इंटरनेशनल अपनी जनरल कौंसिल को अमरीका में स्थानान्तरित कर कुछ समय के लिए रणभूमि से हट गया। उस समय और उसके बाद भी इस निर्णय की काफ़ी निन्दा की गयी, लेकिन उसके परिणामों ने उसका औचित्य भली भांति प्रकट कर दिया है। एक ओर इसका फल यह हुआ है कि इंटरनेशनल के नाम पर जगह-जगह शासन-सत्ता पर अधिकार करने के दुस्साहसिक पर निरर्थक प्रयत्न बन्द हो गये। दूसरी ओर विभिन्न देशों की समाजवादी मज़दूर पार्टियों का निकट सम्पर्क बना रहा, जिससे साबित हो गया कि इंटरनेशनल ने सभी देशों के मज़दूरों के हितों की अभिन्नता और एकजुटता की जो भावना जगायी थी, वह एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ के औपचारिक बन्धन के बिना भी—जो उस समय पांवों की बेड़ी बन गया था—व्यक्त हो सकती थी।

आख़िरकार हेग कांग्रेस के बाद मार्क्स को फिर अपना सैद्धान्तिक कार्य करने के लिए समय और शान्ति मिली। आशा है कि वह शीघ्र ही 'पूंजी' का दूसरा खंड भी प्रेस के लिए तैयार कर लेंगे।

विज्ञान के इतिहास में मार्क्स ने जिन महत्त्वपूर्ण बातों का पता लगाकर अपना नाम अमर किया है, उनमें से हम यहां दो का ही उल्लेख कर सकते हैं।

पहली तो विश्व इतिहास की सम्पूर्ण धारणा में ही वह क्रान्ति है, जो उन्होंने सम्पन्न की। इतिहास का पहले का पूरा दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित था कि सभी तरह के ऐतिहासिक परिवर्तनों का मूल कारण मनुष्यों के परिवर्तनशील विचारों में ही मिलेगा और सभी तरह के ऐतिहासिक परिवर्तनों में सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन ही हैं तथा सम्पूर्ण इतिहास में उन्हीं की प्रधानता है। लेकिन लोगों ने यह प्रश्न न किया था कि मनुष्य के दिमाग़ में ये विचार आते कहां से हैं और राजनीतिक परिवर्तनों की प्रेरक शक्तियां क्या हैं। केवल फ़्रांसीसी और कुछ कुछ अंग्रेज़ इतिहासकारों की नवीनतर शाखा में यह विश्वास बरबस प्रविष्ट हुआ था कि कम से कम मध्ययुग से, सामाजिक और राजनीतिक प्रभुत्व के लिए उदीयमान पूंजीपति वर्ग का सामन्ती अभिजात वर्ग के साथ संघर्ष यूरोप के इतिहास की प्रेरक शक्ति रहा है। मार्क्स ने सिद्ध कर दिया है कि अब तक का सारा इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है, अब तक के सभी विविधरूपी और जटिल राजनीतिक संघर्षों की जड़ में केवल सामाजिक वर्गों के राजनीतिक और सामाजिक शासन की समस्या, पुराने वर्गों द्वारा अपना प्रभुत्व बनाये रखने

तथा नये पनपते हुए वर्गों द्वारा इस प्रभुत्व को हस्तगत करने की समस्या ही रही है। लेकिन इन वर्गों के जन्म लेने और क़ायम रहने के कारण क्या हैं? इनका कारण वे शुद्ध भौतिक, गोचर परिस्थितियां हैं, जिनके अंतर्गत समाज किसी भी युग में अपने जीवन-यापन के साधनों का उत्पादन और विनिमय करता है। मध्ययुग के सामन्ती शासन का आधार छोटे-छोटे कृषक समुदायों की स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था था, जो अपनी ज़रूरत की प्रायः सभी चीज़ों का स्वयं उत्पादन कर लेते थे। इनमें विनिमय का प्रायः पूर्ण अभाव था, शस्त्रधारी सामन्त बाहर के आक्रमणों से इनकी रक्षा करते थे, उन्हें जातीय या कम से कम राजनीतिक एकता प्रदान करते थे। नगरों के अभ्युदय के साथ अलग-अलग दस्तकारियों और परस्पर व्यापार का विकास हुआ जो पहले आन्तरिक क्षेत्र में सीमित था और आगे चलकर अन्तर्राष्ट्रीय हो गया। इस सब के साथ नगर के पूंजीपति वर्ग का विकास हुआ और मध्ययुग में ही उसने सामन्तों से लड़-भिड़कर सामन्ती व्यवस्था के अन्दर एक विशेषाधिकारप्राप्त श्रेणी के रूप में अपने लिए स्थान बना लिया। परन्तु १५वीं शताब्दी के मध्य के बाद से, यूरोप के बाहर की दुनिया का पता लगने पर, इस पूंजीपति वर्ग को अपने व्यापार के लिए कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र मिल गया। इससे उसे अपने उद्योग-धन्धों के लिए नयी स्फूर्ति मिली। प्रमुख शाखाओं में दस्तकारी का स्थान मैनुफ़ेक्चर ने ले लिया जो अब फ़ैक्टरियों के पैमाने पर स्थापित था। फिर इसकी जगह बड़े पैमाने के उद्योग ने ले ली जो पिछली सदी के आविष्कारों, ख़ासकर भाप से चलनेवाले इंजन के आविष्कार से सम्भव हो गया था। बड़े पैमाने के उद्योग का व्यापार पर यह प्रभाव पड़ा कि पिछड़े हुए देशों में पुराना हाथ का काम ठप हो गया और उन्नत देशों में उसने संचार के आधुनिक नये साधन—भाप से चलनेवाले जहाज़, रेल, वैद्युतिक तार—उत्पन्न किये। इस प्रकार पूंजीपति वर्ग सामाजिक सम्पत्ति और सामाजिक शक्ति दोनों को अधिकाधिक अपने हाथों में केन्द्रित करने लगा, यद्यपि काफ़ी अरसे तक राजनीतिक सत्ता से वह वंचित रहा जो सामंतों और उनके द्वारा समर्थित राजतंत्र के हाथ में थी। लेकिन विकास की एक मंज़िल ऐसी आयी—फ़ान्स में महान क्रान्ति के बाद—जब उसने राजनीतिक सत्ता को भी हथिया लिया, और तब से वह सर्वहारा वर्ग और छोटे किसानों के ऊपर शासन करनेवाला वर्ग बन गया। इस दृष्टिकोण से, समाज की विशेष आर्थिक स्थिति का सम्यक् ज्ञान होने से सभी ऐतिहासिक घटनाओं की बड़ी सरलता से व्याख्या की जा सकती है, यद्यपि यह सही है कि हमारे पेशेवर इतिहासकारों में इस ज्ञान का सर्वथा अभाव है। इसी

प्रकार हर ऐतिहासिक युग की धारणाओं और उसके विचारों की व्याख्या बड़ी सरलता से, उस युग की आर्थिक जीवनावस्थाओं और सामाजिक तथा राजनीतिक सम्बन्धों के आधार पर (ये सम्बन्ध भी आर्थिक परिस्थितियों द्वारा ही निर्धारित होते हैं), की जा सकती है। इतिहास को पहली बार अपना वास्तविक आधार मिला। यह आधार एक बहुत ही स्पष्ट सत्य है जिसकी ओर पहले लोगों का ध्यान बिल्कुल नहीं गया था, यानी यह सत्य कि मनुष्यों को सबसे पहले खाना-पीना, ओढ़ना-पहनना और सिर के ऊपर साया चाहिए, इसलिए पहले उन्हें लाज़िमी तौर पर **काम करना** होता है, जिसके बाद ही वे प्रभुत्व के लिए एक दूसरे से झगड़ सकते हैं, और राजनीति, धर्म, दर्शन, आदि को अपना समय दे सकते हैं। आख़िरकार इस स्पष्ट सत्य को अपना ऐतिहासिक अधिकार प्राप्त हुआ।

समाजवादी दृष्टिकोण के लिए इतिहास की यह नयी धारणा सर्वोच्च महत्त्व की थी। इससे पता लगा कि पहले के संपूर्ण इतिहास की गति वर्ग-विरोधों और वर्ग-संघर्षों के बीच में रही है, कि शासक और शासित, शोषक और शोषित वर्गों का अस्तित्व बराबर रहा है और यह कि मानव-जाति के अधिकांश भाग के पल्ले सदा से कड़ी मशक़्क़त पड़ी है, आनन्दोपभोग बहुत कम। ऐसा क्यों हुआ? इसीलिये कि मानव-जाति के विकास की सभी पिछली मंज़िलों में उत्पादन का विकास इतना कम हुआ था कि ऐतिहासिक विकास इस अन्तर्विरोधी रूप में ही हो सकता था, ऐतिहासिक प्रगति कुल मिलाकर एक विशेषाधिकारप्राप्त अल्पसंख्यक समुदाय के क्रियाकलाप का ही विषय बना दी गई थी, और बहुसंख्यकों के भाग्य में अपने श्रम द्वारा जीवन-निर्वाह के अपने स्वल्प साधन और इसके अतिरिक्त विशेषाधिकार संपन्न समुदाय के लिए अधिकाधिक प्रचुर साधन उत्पादित करना रह गया था। परन्तु इतिहास की यही जांच-पड़ताल, जो हमें इस प्रकार पहले के वर्ग शासन की स्वाभाविक एवं बुद्धिसम्मत व्याख्या प्रदान करती है (अन्यथा हम मानव-स्वभाव की दुष्टता द्वारा ही उसकी व्याख्या कर सकते थे), साथ ही साथ हमें यह बोध कराती है कि वर्तमान युग में उत्पादक शक्तियों के अति प्रचण्ड विकास के कारण मानव-जाति को शासक और शासित, शोषक और शोषित में बांट रखने का अन्तिम बहाना भी, कम से कम सबसे उन्नत देशों में, मिट चुका है; कि शासक बड़े पूंजीपति अपनी ऐतिहासिक भूमिका समाप्त कर चुके हैं, और जैसा कि व्यापारिक संकटों, और ख़ासकर पिछली भयानक गिरावट और सभी देशों में फैली मन्दी से सिद्ध हो चुका है, वे समाज का नेतृत्व करने के योग्य

अब नहीं रह गये हैं, बल्कि उत्पादन के विकास में बाधक बन गये हैं; कि ऐतिहासिक नेतृत्व सर्वहारा वर्ग के हाथ में चला गया है, ऐसे वर्ग के हाथ में चला गया है जो समाज में अपनी समग्र स्थिति के कारण सम्पूर्ण वर्ग शासन, सम्पूर्ण दासता एवं सम्पूर्ण शोषण का अन्त करके ही अपने को मुक्त कर सकता है; और यह कि सामाजिक उत्पादक शक्तियां, जो इतनी विकसित हो गई हैं कि पूंजीपति वर्ग के क़ाबू से बाहर हैं, बस इस प्रतीक्षा में हैं कि एकजुट सर्वहारा उन्हें अपने हाथों में ले ले जिससे कि ऐसी अवस्था क़ायम की जा सके जिसमें समाज का प्रत्येक सदस्य न केवल सामाजिक सम्पदा के उत्पादन में, बल्कि वितरण और प्रबन्ध में भी हाथ बंटा सकेगा, और जो अवस्था सम्पूर्ण उत्पादन के नियोजित संचालन द्वारा सामाजिक उत्पादक शक्तियों और उनकी उपज को इतना बढ़ा देगी कि प्रत्येक व्यक्ति की सभी उचित आवश्यकताओं की उत्तरोत्तर बढ़ती मात्रा में पूर्त्ति सुनिश्चित हो जायेगी।

मार्क्स ने जिस दूसरी महत्त्वपूर्ण बात का पता लगाया है, वह पूंजी और श्रम के सम्बन्ध का निश्चित स्पष्टीकरण है। दूसरे शब्दों में, उन्होंने यह दिखाया कि वर्तमान समाज में और उत्पादन की मौजूदा पूंजीवादी प्रणाली के अंतर्गत किस तरह पूंजीपति मज़दूर का शोषण करता है। जब से राजनीतिक अर्थशास्त्र ने यह प्रस्थापना प्रस्तुत की कि समस्त सम्पदा और समस्त मूल्य का मूल स्रोत श्रम ही है, तभी से यह प्रश्न भी अनिवार्य रूप से सामने आया कि इस बात से हम इस तथ्य का मेल कैसे बैठायें कि उजरती मजदूर अपने श्रम से जिस मूल्य को उत्पन्न करता है, वह पूरा का पूरा उसे नहीं मिलता, वरन् उसका एक अंश उसे पूंजीपति को दे देना पड़ता है? पूंजीवादी और समाजवादी, दोनों ही तरह के अर्थशास्त्रियों ने इस प्रश्न का ऐसा उत्तर देने का प्रयत्न किया, जो वैज्ञानिक दृष्टि से संगत हो, परन्तु वे विफल रहे। अन्त में मार्क्स ने ही उसका सही उत्तर दिया। वह उत्तर इस प्रकार है: उत्पादन की वर्तमान पूंजीवादी प्रणाली में समाज के दो वर्ग हैं—एक ओर पूंजीपतियों का वर्ग है, जिसके हाथ में उत्पादन और जीवन-निर्वाह के साधन हैं, दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग है, जिसके पास इन साधनों से वंचित रहने के कारण बेचने के लिए केवल एक माल—अपनी श्रम-शक्ति—ही है और इसलिए जो जीवन-निर्वाह के साधन प्राप्त करने के लिए अपनी इस श्रम-शक्ति को बेचने के लिए मजबूर है। परन्तु किसी माल का मूल्य उसके उत्पादन में, और इसीलिए उसके पुनरुत्पादन में भी, लगी सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। अतः एक औसत मनुष्य की एक

दिन, एक महीना या एक वर्ष की श्रम-शक्ति का मूल्य इस श्रम-शक्ति को एक दिन, एक महीना या एक वर्ष तक क़ायम रखने के लिए आवश्यक जीवन-निर्वाह के साधनों में लगे श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। मान लीजिए कि किसी मज़दूर को एक दिन के जीवन-निर्वाह के साधनों के उत्पादन के लिए छः घंटे का श्रम चाहिए, या उसी बात को यों कहें कि उनमें लगा श्रम छः घंटे के श्रम की मात्रा के बराबर है, तो श्रम-शक्ति का एक दिन का मूल्य ऐसी रक़म में व्यक्त होगा जिसमें भी छः घंटे का श्रम लगा हो। अब यह भी मान लीजिए कि इस मज़दूर को काम पर लगानेवाला पूंजीपति उसे बदले में यह रक़म देता है, और इसलिए उसकी श्रम-शक्ति का पूरा मूल्य उसे अदा करता है। अब अगर मज़दूर दिन में छः घंटे पूंजीपति के लिए काम करता है तो वह पूंजीपति की पूरी लागत को चुकता कर देता है—छः घंटे के श्रम के बदले छः घंटे का श्रम देता है। पर ऐसी हालत में पूंजीपति के लिए कुछ नहीं रहता, और इसलिए वह तो इसे बिल्कुल दूसरे ही ढंग से देखता है। वह कहता है: मैंने इस मज़दूर की श्रम-शक्ति छः घंटे के लिए नहीं, बल्कि पूरे दिन के लिए ख़रीदी है, और इसलिए वह मज़दूर से ८, १०, १२, १४ या इससे भी अधिक घंटे, जैसी भी परिस्थिति हो, काम लेता है। फलतः सातवें, आठवें और बाद के घंटों की उपज अशोधित श्रम की, ऐसे श्रम की जिसका भुगतान नहीं किया गया होता, उपज होती है, और यह सीधे पूंजीपति की जेब में पहुंच जाती है। इस तरह पूंजीपति की नौकरी करनेवाला मज़दूर केवल उस श्रम-शक्ति का मूल्य ही नहीं पुनरुत्पादित करता जिसके लिए उसे मज़दूरी मिलती है, बल्कि इसके अलावा वह **अतिरिक्त मूल्य** भी पैदा करता है जिसे पहले पूंजीपति हस्तगत करता है और जो बाद में निश्चित आर्थिक नियमों के अनुसार समूचे पूंजीपति वर्ग के बीच वितरित होता है। यह अतिरिक्त मूल्य वह मूल कोष होता है जिससे लगान, मुनाफ़ा, पूंजी का संचय बनता है—संक्षेप में वह सारी दौलत बनती है जिसका ग़ैरमेहनतकश वर्ग उपभोग अथवा संचय करते हैं। इससे यह सिद्ध हो गया कि आज के पूंजीपतियों द्वारा धन-संचय उसी प्रकार दूसरों के अशोधित श्रम का हस्तगतकरण है जिस प्रकार दास-स्वामियों या भू-दास श्रम का शोषण करनेवाले सामंती प्रभुओं का धन-संचय था, और शोषण के इन सभी रूपों में अन्तर केवल अशोधित श्रम के हस्तगतकरण के तरीक़े और ढंग का ही है। पर इस बात ने सम्पत्तिधारी वर्गों के ढोंग से भरे शब्दजाल का अन्तिम औचित्य भी समाप्त कर दिया, जिसका आशय यह होता था कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में क़ानून और न्याय, अधिकारों और कर्त्तव्यों

की समानता तथा हितों के सामंजस्य का बोलबाला है, और यह प्रकट कर दिया कि वर्तमान पूंजीवादी समाज, अपने पूर्ववर्त्ती समाजों की ही भांति और उनसे किसी भी तरह कम नहीं, जनता की विशाल बहुसंख्या के निरन्तर घटते ही जाते अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा शोषण की एक भीमकाय संस्था मात्र है।

आधुनिक वैज्ञानिक समाजवाद इन दो महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर आधारित है। 'पूंजी' के दूसरे खण्ड में इनका और इनसे शायद ही कुछ कम महत्त्व रखनेवाली समाज की पूंजीवादी व्यवस्था-सम्बन्धी कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों का विस्तार किया जायेगा। इसके साथ राजनीतिक अर्थशास्त्र के उन पहलुओं में भी, जिन्हें प्रथम खण्ड में नहीं लिया गया था, क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायेगा। मार्क्स उसे शीघ्र ही प्रेस के लिए तैयार कर सकें, यही हमारी हार्दिक कामना है।

फ़े० एंगेल्स द्वारा जून, १८७७ के मध्य में लिखित। अंग्रेज़ी से अनूदित।
«*Volks-Kalender*» नामक वार्षिकी में, जो
ब्रुंसविक में १८७८ में निकली थी, प्रकाशित।

अ० बेबेल, वि० लीब्कनेख़्त, वि० ब्राके, आदि के नाम गश्ती चिट्ठी[67]

(उद्धरण)

३. तीन ज़ूरिचाइयों का घोषणापत्र

इस बीच होहबेर्ग की पत्रिका «*Jahrbuch*»[68] हमारे पास पहुंच गयी है जिसमें 'जर्मनी में समाजवादी आन्दोलन का सिंहावलोकन' शीर्षक से एक लेख है। जैसा कि होहबेर्ग ने मुझे बताया है, यह लेख ज़ूरिच आयोग के तीन सदस्यों* ने लिखा है। इसमें हमें अब तक के आन्दोलन के बारे में उनकी प्रामाणिक आलोचना तथा उसके साथ नये अख़बार[69] का उनका प्रामाणिक कार्यक्रम मिलता है क्योंकि ये लोग उसकी लाइन निश्चित करते हैं।

ठीक आरम्भ में हमें यह पढ़ने को मिलता है—

"जिस आन्दोलन को लासाल अतीव राजनीतिक महत्त्व का मानते थे, जिसमें शामिल होने के लिये उन्होंने मज़दूरों का ही नहीं, वरन् तमाम ईमानदार जनवादियों का आह्वान किया था, जिसमें **सबसे आगे** विज्ञान के स्वतंत्र प्रतिनिधियों तथा **मानवता के प्रति सच्चे स्नेह की भावना से ओतप्रोत तमाम लोगों को** चलना था, वह जोहान बैप्टिस्ट श्वीट्ज़र के नेतृत्व में घटकर **औद्योगिक मज़दूरों द्वारा अपने हितों के लिए किया जानेवाला इकतरफ़ा संघर्ष** रह गया है।"

मैं इस बात की जांच नहीं करूंगा कि यह ऐतिहासिक दृष्टि से सही है या नहीं और यदि सही है तो कहां तक सही है। श्वीट्ज़र की यहां विशेष रूप से इसलिए भर्त्सना की गयी है कि उन्होंने लासालपंथ को, जिसका आशय यहां पूंजीवादी-जनवादी-लोकोपकारी आन्दोलन से है, **घटाकर** औद्योगिक मज़दूरों द्वारा अपने हितार्थ किया जानेवाला इकतरफ़ा संघर्ष बना दिया है; वास्तव में उन्होंने इस आन्दोलन के स्वरूप को पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध औद्योगिक मज़दूरों के वर्ग-

* होहबेर्ग, बर्नस्टीन तथा श्राम्म। —सं०

संघर्ष के रूप में **गहन बना दिया है**। इसके अलावा "पूंजीवादी जनवाद को ठुकरा देने के लिए" उनकी भर्त्सना की जा रही है। सामाजिक-जनवादी पार्टी के अन्दर आखिर पूंजीवादी जनवाद का मतलब ही क्या है? यदि पूंजीवादी जनवाद "ईमानदार लोगों" को लेकर बना है तो वह पार्टी में प्रवेश की कामना नहीं कर सकता और यदि फिर भी प्रवेश पाना चाहता है तो ऐसा वह केवल कलह शुरू करने के लिए ही करना चाहता है।

लासालपंथी पार्टी ने "**मज़दूरों की पार्टी** के रूप में **सर्वथा इकतरफ़ा** ढंग से काम करने का रास्ता चुना।" ये सज्जन, जो ये लिखते हैं, स्वयं ऐसी पार्टी के सदस्य हैं जो मज़दूरों की पार्टी के रूप में सर्वथा इकतरफ़ा ढंग से काम करती है, वे इस समय इस पार्टी में अधिकृत पदों पर हैं। इसमें सरासर असंगति है। वे जो लिखते हैं, यदि वह उनका वास्तविक अभिप्राय है तो उन्हें पार्टी छोड़ देनी चाहिए अथवा कम से कम अपने पदों से इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। यदि वे ऐसा नहीं करते तो वे स्वीकार करते हैं कि वे पार्टी के सर्वहारा चरित्र के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए अपनी आधिकारिक स्थिति का उपयोग करना चाहते हैं। इसी तरह यदि पार्टी उन्हें उनके आधिकारिक पदों से वंचित नहीं करती तो वह अपने साथ ग़द्दारी करेगी।

अतः इन सज्जनों की राय में सामाजिक-जनवादी पार्टी को इकतरफ़ा मज़दूर पार्टी **नहीं** होना चाहिए, वरन् "मानवता के प्रति सच्चे स्नेह की भावना से ओतप्रोत तमाम लोगों" की चहुंमुखी पार्टी होना चाहिये। इसका प्रमाण प्रस्तुत करने के लिए इसे सर्वोपरि असभ्य सर्वहारा आवेगों को ताक पर रखना चाहिये तथा "सुरुचि ग्रहण कर सकने" और "सुन्दर आचरण ग्रहण करने के लिए" अपना नेतृत्व शिक्षित, लोकोपकारी पूंजीपति वर्ग को सौंपना चाहिए (पृ० ८५)। फिर कुछ नेताओं के "अशिष्ट आचरण" का स्थान सर्वथा शिष्ट "पूंजीवादी आचरण" ले लेगा (मानो उन लोगों की जिनकी यहां चर्चा की गयी है, जिन बातों को लेकर भर्त्सना की जा सकती है, उनमें उनका बाहरी अशिष्ट आचरण सबसे कम महत्त्व का नहीं है!)। तो फिर

"**शिक्षित** तथा **सम्पत्तिधारी** वर्गों के बीच से **अनेकानेक समर्थक** सामने आयेंगे। परन्तु यदि... आन्दोलन को **स्पृश्य सफलताएं** प्राप्त करनी हैं तो **इनको** ही पहले अपनी ओर करना होगा।" जर्मन समाजवाद ने "**जनसाधारण** को अपने पक्ष में लाने को ज़रूरत से ज़्यादा महत्त्व दिया है और ऐसा करते समय उसने समाज के तथाकथित ऊपरी तबक़ों के बीच उत्साहपूर्ण (!) प्रचार की उपेक्षा

की है।" बात यह है कि "पार्टी के पास अब भी ऐसे लोगों का अभाव है जो राइख़्स्टाग* में उसका प्रतिनिधित्व कर सकें।" परन्तु "उन लोगों को अधिदेश सौंपना वांछनीय तथा आवश्यक है जिन्हें प्रासंगिक सामग्री से अपने को अवगत करने का समय तथा सुअवसर प्राप्त हुआ। साधारण मज़दूर और छोटे उस्ताद कारीगर के पास... इसके लिए फ़ुरसत का ज़रूरी वक़्त विरले और अपवादस्वरूप ही होता है।"

इसलिए पूंजीपतियों को चुनिये!

संक्षेप में—मज़दूर वर्ग स्वयं अपने को मुक्त करने में अक्षम है। इस उद्देश्य के लिए उसे अपना नेतृत्व "शिक्षित तथा सम्पत्तिधारी" पूंजीपति वर्ग के हाथों में सौंपना चाहिए। केवल उनके पास ही अपने को इस बात से अवगत करने का "समय तथा सुअवसर" प्राप्त है कि मजदूरों के लिए क्या अच्छा है। दूसरे, पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध किसी भी सूरत में संघर्ष नहीं किया जाना चाहिए, उसे तो उत्साहपूर्ण प्रचार के जरिए **अपने पक्ष में किया जाना** चाहिए।

परन्तु यदि कोई समाज के ऊपरी तबक़े अथवा उसके केवल नेक तत्वों को अपने पक्ष में करना चाहता है तो उसे उन्हें किसी भी सूरत में डराना नहीं चाहिए। और ये तीन ज़ूरिचाई सोचते हैं कि उन्होंने बहुत महत्त्वपूर्ण खोज कर डाली है—

"ठीक इस समय समाजवाद विरोधी क़ानून के दबाव के कारण पार्टी यह प्रदर्शित कर रही है कि उसका हिंसात्मक, रक्तपातपूर्ण क्रान्ति का पथ अपनाने की ओर **रुझान नहीं है**, वरन् वह वैधता, अर्थात् **सुधार** के पथ पर चलने के लिए... कृतसंकल्प है।"

इसलिए यदि ५–६ लाख तक मतदाताओं में (कुल मतदाताओं का $\frac{१}{१०}$–$\frac{१}{८}$ भाग), जो पूरे देश में बिखरे हुए हैं, इतनी समझबूझ है कि वे दीवाल से अपना सिर न टकरायें तथा दस के विरुद्ध एक द्वारा "रक्तपातपूर्ण क्रान्ति" कराने की चेष्टा न करें तो इससे यही सिद्ध होता है कि उन्होंने किसी जबर्दस्त बाहरी घटना से, उससे उत्पन्न होनेवाले किसी आकस्मिक क्रान्तिकारी उभार से अथवा उसके फलस्वरूप संघर्ष में प्राप्त जनता की **विजय** तक से लाभ उठाने

---

* संसद। —**सं०**

का हमेशा के लिए **त्याग कर दिया है।** यदि बर्लिन ने फिर कभी अपने अज्ञान का परिचय देते हुए एक और १८ मार्च[70] की पुनरावृत्ति की तो "बैरिकेडों की ओर भागनेवाले ऐरे-ग़ैरे नत्थू खैरों" (पृ० ८८) की तरह लड़ाई में भाग लेने के बजाय सामाजिक-जनवादियों को "वैधता के पथ पर चलना" होगा, ब्रेक लगाने होंगे, बैरिकेड हटाने होंगे और यदि ज़रूरत पड़े तो इकतरफ़ा, गंवार, अशिक्षित जनसाधारण के विरुद्ध यशस्वी सेना के साथ मिलकर आगे बढ़ना होगा। यदि ये सज्जन यह दावा करते हैं कि यह उनका अभिप्राय नहीं था तो फिर उनका अभिप्राय क्या था?

परन्तु इससे भी बेहतर चीज़ सामने आती है।

"इस कारण पार्टी विद्यमान अवस्थाओं की अपनी आलोचना में तथा उन्हें बदलने के अपने प्रस्तावों में जितनी शान्त, वस्तुगत तथा ठोस होगी, मौजूदा (जब समाजवाद विरोधी क़ानून लागू किया गया था) सफल चाल को, जिसके द्वारा लाल हौवा खड़ा कर सचेत प्रतिक्रियावादियों ने पूंजीपति वर्ग को डराया था, दुहराना उतना ही कम सम्भव होगा" (पृ० ८८)।

पूंजीपति वर्ग को चिन्ता से पूर्ण रूप से मुक्त करने के लिए स्पष्ट तथा आश्वस्तकारी रूप से यह सिद्ध करना आवश्यक है कि लाल हौवा दरअसल हौवा भर है तथा उसका अस्तित्व नहीं है। परन्तु लाल हौवा यदि पूंजीपति वर्ग का अपने तथा सर्वहारा के बीच जीवन और मृत्यु के अवश्यम्भावी संघर्ष, आधुनिक वर्ग-संघर्ष के अवश्यम्भावी परिणाम का भय नहीं है तो वह और क्या है? वर्ग-संघर्ष ख़त्म कर दें–पूंजीपति वर्ग तथा "तमाम स्वतंत्र लोग" "सर्वहारा के साथ हाथ से हाथ मिलाकर चलने से नहीं डरेंगे!" और इससे ठगे जानेवाले लोग ठीक सर्वहारा ही होंगे।

इसलिए पार्टी विनम्रता से और दीन-भाव से सिद्ध करे कि उसने उन "अनौचित्यों तथा ज़्यादातियों" को हमेशा के लिए ताक पर रख दिया है जिनके कारण समाजवाद विरोधी क़ानून ने जन्म लिया था। यदि वह स्वेच्छया वचन दे कि वह इस क़ानून की परिधि में रहकर काम करेगी तो बिस्मार्क और पूंजीपति वर्ग निस्संदेह इस क़ानून को ख़त्म करने की मेहरबानी करेंगे क्योंकि तब वह अनावश्यक हो जायेगा!

"हमें कोई ग़लत न समझे", हम "पार्टी तथा कार्यक्रम को तिलांजलि नहीं देना चाहते बल्कि यह सोचते हैं कि अब से कई वर्षों तक हमारे पास करने

को बहुत कुछ होगा बशर्ते हम अपनी पूरी शक्ति, अपनी पूरी स्फूर्ति को कतिपय तात्कालिक लक्ष्यों की पूर्त्ति पर केन्द्रित कर दें जिन्हें कुछ भी हो अधिक दीर्घगामी आकांक्षाओं की बात सोचने से पहले पूरा किया ही जाना चाहिए।"

तब से पूंजीपति, निम्नपूंजीपति तथा मज़दूर, जो "हमारी दीर्घगामी मांगों से इस समय डरकर दूर हो जाते हैं," बहुत बड़ी संख्या में हमारे साथ आ मिलेंगे।

कार्यक्रम का **त्याग** नहीं किया जायेगा, उसे केवल **स्थगित** किया जायेगा – अनिश्चित काल के लिए। इसे स्वीकार किया जाता है, वस्तुतः अपने लिए नहीं और न ही अपने जीवन-काल के लिए बल्कि अपनी मृत्यु के बाद अपने बच्चों तथा नाती-पोतों को सौंपी जानेवाली पुश्तैनी वस्तु के रूप में। इस बीच सब तरह की क्षुद्र वाहियात बातों पर तथा समाज की पूंजीवादी व्यवस्था की पैवंदबाज़ी पर अपनी "पूरी शक्ति तथा स्फूर्ति" लगा दी जाये ताकि पूंजीपति वर्ग को डराये बिना कम से कम यह आभास पैदा किया जा सके कि कुछ न कुछ हो रहा है। मुझे वाकई में "कम्युनिस्ट" माइकेल की प्रशंसा करनी चाहिए जो पूरी लगन के साथ झांसापट्टी कर, १८७३ के पतन में अपनी पूरी शक्ति से योगदान के द्वारा और इस तरह मौजूदा व्यवस्था के पतन की तैयारी के लिए सचमुच कुछ न कुछ कार्य करने के द्वारा अगले चन्द सौ वर्षों में पूंजीवादी समाज के अवश्यम्भावी पतन में अपना अडिग विश्वास सिद्ध करता है।

अच्छे आचरण के विरुद्ध दूसरा अपराध था "कम्पनी-प्रोमोटरों[71] पर अतिरंजित प्रहार" जो आख़िर "केवल अपने काल की सन्तान मात्र" थे; इसलिए "स्ट्रासबेर्ग तथा ऐसे अन्य लोगों को गालियां देने से... दूर रहना बेहतर होता।" दुर्भाग्य से हर व्यक्ति "केवल अपने काल की सन्तान" होता है और अगर यह पर्याप्त बहाना हो तो फिर किसी पर आगे प्रहार नहीं होना चाहिए, हमारी ओर से सारा वाद-विवाद, सारा संघर्ष बन्द हो जाना चाहिए; हमारे विरोधी हम पर जितनी भी लातें जमायें, हम उन्हें चुपचाप सहन करें क्योंकि हम, जो इतने बुद्धिमान हैं, जानते हैं कि ये विरोधी तो "केवल अपने काल की सन्तान" हैं तथा किसी और तरह काम नहीं कर सकते। उनकी लातों का हिसाब ब्याज समेत चुकाने की जगह हमें इन बदक़िस्मतों पर बस रहम करना चाहिए।

ठीक इसी तरह कम्यून के समर्थन का एक और नुक़सान यह था कि

"हम लोगों के प्रति जिन लोगों की वैसे सद्भावना थी, वे भी हमसे अलग हो गये तथा हमारे प्रति **पूंजीपति वर्ग की घृणा** बढ़ गयी।" इसके अलावा पार्टी "अक्तूबर क़ानून[72] के पास होने के लिए पूरी तरह दोषमुक्त नहीं है क्योंकि उसने **पूंजीपति वर्ग के मन में घृणा** अनावश्यक रूप से बढ़ा दी।"

तो यह रहा ज़ूरिच के तीन सेंसरकर्ताओं का कार्यक्रम। वह गलतफ़हमी की कोई गुंजाइश नहीं छोड़ता। कम से कम हम लोगों के लिए जो १८४८ के दिनों से ही इस पूरी लफ़्फ़ाजी से ख़ूब परिचित हैं। हमारे सामने निम्नपूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधि हैं जो यहां अपने को इस पूरी चिन्ता के साथ पेश कर रहे हैं कि सर्वहारा अपनी क्रान्तिकारी स्थिति के दबाव के कारण "बहुत ज़्यादा दूर जा सकते" हैं। दृढ़ राजनीतिक विरोध की जगह आम मध्यस्थता; सरकार तथा पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध संघर्ष की जगह उन्हें अपनी ओर करने तथा समझाने-बुझाने की कोशिश; ऊपर से दुर्व्यवहार का अवज्ञापूर्ण प्रतिरोध करने की जगह विनम्रतापूर्वक सिर झुका देना और यह स्वीकार करना कि दंड उपयुक्त था। ऐतिहासिक रूप से आवश्यक तमाम टक्करों की व्याख्या ग़लतफ़हमियों के रूप में की जाती है तथा सारे वाद-विवाद इस आश्वासन के साथ समाप्त होते हैं कि आख़िर हम सब मुख्य मुद्दे पर एकमत हैं। जो लोग १८४८ में पूंजीवादी जनवादियों के रूप में सामने आये, वे भी अब अपने को आसानी से सामाजिक-जनवादी मान सकते हैं। पूंजीवादी जनवादियों के लिए जनवादी जनतंत्र की साध्यता उतनी ही दूर की चीज़ थी जितनी दूर की चीज़ सामाजिक-जनवादियों के लिए पूंजीवादी प्रणाली का तख़्ता उलटना है और इस कारण वर्तमान राजनीति में इसका कोई महत्त्व नहीं है; जी भर कर मध्यस्थता, समझौतेबाज़ी और लोकोपकारिता की जा सकती है। ठीक यही चीज़ सर्वहारा वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग के बीच संघर्ष के मामले में होती है। इसे काग़ज़ पर तो स्वीकार किया जा सकता है क्योंकि इसके अस्तित्व से अब इन्कार नहीं किया जा सकता, परन्तु व्यवहार में उस पर पर्दा डाला जाता है, उस पर लीपापोती की जाती है, उसे ढीला किया जाता है। सामाजिक-जनवादी पार्टी मज़दूर पार्टी **न बने**, वह पूंजीपति वर्ग या किसी भी अन्य की घृणा अर्जित न करे; उसे सर्वोपरि पूंजीपति वर्ग के बीच उत्साहपूर्ण प्रचार करना चाहिए; उसे दूरगामी लक्ष्यों पर, जो पूंजीपति वर्ग को भयभीत कर उसे दूर कर सकते हैं और जो हमारी पीढ़ी के जीवनकाल में वैसे भी साध्य नहीं हैं, ज़ोर देने के बजाय सर्वोपरि अपनी पूरी शक्ति तथा

स्फूर्ति पैवंदबाज़ी वाले उन निम्नपूंजीवादी सुधारों पर केन्द्रित करनी चाहिए जो पुरानी सामाजिक व्यवस्था को अवलम्ब प्रदान करते हुए सम्भवतः अन्तिम महाविपत्ति को धीरे-धीरे, अलग-अलग अंशों में तथा यथासम्भव शान्तिपूर्ण ढंग से होनेवाले विघटन की प्रक्रिया में बदल देंगे। ये वही लोग हैं जो ज़ाहिराना तौर पर अथक कार्यकलाप में जुटे रहने का दिखावा करते हुए स्वयं कुछ नहीं करते, यही नहीं यह कोशिश करते हैं कि चख़चख़ के सिवाय और कुछ न होने दिया जाये; १८४८ तथा १८४९ में किसी भी रूप की कार्रवाई के प्रति इन्हीं लोगों के भय ने आन्दोलन की राह में पग-पग पर बाधा डाली और अन्त में उसे पराजित कराया; ये वही लोग हैं जो कभी प्रतिक्रिया नहीं देख पाते और जो फिर अपने को अंत में अंधेरी-बन्द गली में, जहां न तो प्रतिरोध और न संघर्ष सम्भव होता है, पाकर सर्वथा आश्चर्यान्वित हो जाते हैं; ये वही लोग हैं जो इतिहास को अपने कूपमंडूकतावादी दृष्टिकोण तक सीमित रखना चाहते हैं परन्तु जिनके साथ इतिहास कभी रुकता नहीं, वरन् अपने पथ पर अग्रसर होता जाता है।

जहां तक उनकी समाजवादी आस्थाओं का सम्बन्ध है, उनकी 'घोषणापत्र' के 'जर्मन या "सच्चा" समाजवाद' अध्याय में पर्याप्त रूप से आलोचना हो चुकी है।* जहां वर्ग-संघर्ष को कुछ अनाकर्षक, "गंवारू" जैसी वस्तु मानकर एक ओर हटा दिया जाता है, वहां समाजवाद के लिए "मानवता के प्रति सच्चे स्नेह" तथा "न्याय" के बारे में कोरी लफ़्फ़ाज़ी के अलावा और कोई आधार नहीं बचता।

यह विकास के प्रवाह के मूल में निहित अवश्यम्भावी परिघटना है कि जो लोग अब तक सत्तारूढ़ वर्गों में थे, वे भी संघर्षशील सर्वहारा के साथ शामिल हों तथा उसे शिक्षित तत्व मुहैया करें। यह बात हम 'घोषणापत्र' में साफ़-साफ़ कह चुके हैं। परन्तु यहां दो मुद्दों का ज़िक्र किया जाना चाहिए।

पहला। सर्वहारा आन्दोलन के लिए उपयोगी बनने के लिए इन लोगों को उसके अन्दर असल शिक्षित लोग लाने चाहिए। परन्तु आन्दोलन में शामिल होनेवाले अधिकांश जर्मन पूंजीपतियों के बारे में यह बात नहीं कही जा सकती। «*Zukunft*» अथवा «*Neue Gesellschaft*»[73] में से किसी ने भी ऐसा योगदान नहीं किया है जो आन्दोलन को एक पग आगे बढ़ा सके। यहां किसी भी तरह की शैक्षणिक सामग्री – तथ्यात्मक अथवा सैद्धान्तिक – का सर्वथा अभाव है। उसकी

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। – सं०

जगह सतही ढंग से सीखे गये समाजवादी विचारों का उन अतीव विविधतापूर्ण सैद्धान्तिक दृष्टिकोणों के साथ सामंजस्य बिठाने की चेष्टा की जा रही है जिन्हें ये सज्जन विश्वविद्यालय या कहीं और से अपने साथ लाये हैं तथा जिनमें से एक दृष्टिकोण दूसरे दृष्टिकोण से इसलिए ज़्यादा उलझा हुआ है कि जर्मन दर्शन के अवशेष इस समय सड़ने-गलने की प्रक्रिया से गुज़र रहे हैं। स्वयं नये विज्ञान के पूर्ण अध्ययन से शुरूआत करने के बजाय उन्होंने इसमें काटछांट करना ज़्यादा पसन्द किया ताकि उसे साथ लाये गये अपने दृष्टिकोण के अनुसार ढाला जा सके, तुरंत स्वयं अपना एक नया विज्ञान तैयार कर दिया और फ़ौरन दम्भपूर्वक उसे सिखाने के लिए आगे बढ़े। इसलिए इन महाशयों के बीच उतने ही दृष्टिकोण हैं जितने उनके सिर; एक भी प्रश्न पर सुस्पष्टता उत्पन्न करने के बजाय उन्होंने केवल अविश्वसनीय उलझन पैदा की है – सौभाग्यवश केवल अपने बीच। जिन शिक्षित लोगों का पहला सिद्धान्त वह सिखाना है जो उन्होंने नहीं सीखा है, उन्हें पार्टी बहुत आसानी से तिलांजली दे सकती है।

दूसरा। यदि दूसरे वर्गों के इस तरह के लोग सर्वहारा आन्दोलन में शामिल होना चाहते हैं तो पहली शर्त यह होनी चाहिए कि वे अपने साथ पूंजीवादी, निम्न-पूंजीवादी, आदि अवशेष अपने साथ न लायें अपितु सर्वहारा दृष्टिकोण को सच्चे हृदय से अंगीकार करें। परन्तु जैसा कि साबित हो चुका है, इन सज्जनों के दिमाग़ पूंजीवादी तथा निम्न-पूंजीवादी विचारों से खचाखच भरे पड़े हैं। जर्मनी जैसे निम्न-पूंजीवादी देश में इन विचारों का यक़ीनन औचित्य है, परन्तु केवल सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के **बाहर**। यदि ये सज्जन मिलकर सामाजिक-जनवादी निम्न-पूंजीवादी पार्टी बना लेते हैं तो उन्हें ऐसा करने का पूरा-पूरा अधिकार है; तब हम उनसे बातचीत कर सकते हैं, परिस्थितियों के अनुसार एक गुट बना सकते हैं। परन्तु मज़दूर पार्टी में ये लोग विजातीय तत्व हैं। यदि उन्हें कुछ समय सहन करने के लिए कारण मौजूद हैं तो उन्हें **मात्र** सहन करना हमारा कर्त्तव्य है, उन्हें पार्टी नेतृत्व पर किसी भी तरह का प्रभाव नहीं रखने देना होगा, इस बात से अवगत रहना होगा कि उनसे किसी भी समय सम्बन्ध-विच्छेद हो सकता है। पर वह समय आ चुका प्रतीत होता है। इस लेख के लेखकों को पार्टी अपने बीच कैसे सहन करती है, यह हम लोगों की समझ में नहीं आता। परन्तु पार्टी का नेतृत्व यदि इस या उस तरह ऐसे लोगों के हाथों में पहुंच जाता है तो फिर पार्टी का सीधे-सीधे वन्ध्यकरण हो जायेगा और सर्वहारा स्फूर्ति ख़त्म हो जायेगी।

जहां तक हमारा सम्बन्ध है, अपने पूरे अतीत को देखते हुए हमारे सामने केवल एक रास्ता है। लगभग ४० वर्षों से हम इतिहास की फ़ौरी चालक शक्ति के रूप में वर्ग-संघर्ष पर, विशेष रूप से आधुनिक सामाजिक क्रान्ति के बृहद् उत्तोलक के रूप में पूंजीपति वर्ग तथा सर्वहारा के बीच वर्ग-संघर्ष पर ज़ोर देते आये हैं; इसलिए हमारे वास्ते ऐसे लोगों के साथ सहयोग करना असम्भव है जो इस वर्ग-संघर्ष को आन्दोलन से निकाल देना चाहते हैं। जिस समय इंटरनेशनल स्थापित हुआ था, हमने स्पष्ट रूप से यह युद्धनाद निरूपित किया था – मज़दूर वर्ग की मुक्ति स्वयं मज़दूर वर्ग का कार्य होना चाहिए।* इसलिए हम ऐसे लोगों के साथ सहयोग नहीं कर सकते जो खुलेआम कहते हैं कि मज़दूर इतने अशिक्षित हैं कि वे अपने को मुक्त नहीं कर सकते और इसलिए उन्हें ऊपर से लोकोपकारी बड़े तथा निम्नपूंजीपति मुक्त करेंगे। यदि नया पार्टी मुखपत्र इन सज्जनों के विचारों के अनुरूप लाइन को, ऐसी लाइन को, जो सर्वहारा नहीं, वरन् पूंजीवादी है, अपनाता है तो हमें खेद होते हुए भी खुलेआम उससे अपने विरोध की घोषणा करनी पड़ेगी तथा उस एकजुटता को विघटित करना पड़ेगा जिसे हमने जर्मन पार्टी का विदेशों में प्रतिनिधित्व करते हुए स्थापित करने की कोशिश की। परंतु आशा की जानी चाहिये कि स्थिति **यहां तक** नहीं पहुंचेगी।

मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा १७ तथा १८ सितम्बर १८७९ को लिखित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

सबसे पहले *«Die Kommunistische Internationale»* पत्रिका में (XII. Jahrg., Heft. 23, १५ जून १९३१) प्रकाशित।

---

* कार्ल मार्क्स, 'अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की अस्थायी नियमावली'। – सं०

फ़्रेडरिक एंगेल्स

समाजवाद: काल्पनिक तथा वैज्ञानिक[74]

१८९२ के अंग्रेज़ी संस्करण की विशेष भूमिका

यह छोटी-सी पुस्तक मूलतः एक वृहत्तर ग्रंथ का अंग है। १८७५ के क़रीब बर्लिन विश्वविद्यालय के **सहायक प्रोफ़ेसर** डॉ॰ यू॰ ड्यूहरिंग ने यकायक और काफ़ी ज़ोर-शोर के साथ एलान किया कि वह समाजवाद के हामी हो गये हैं। उन्होंने जर्मन जनता के सामने एक विस्तृत समाजवादी सिद्धान्त ही नहीं, समाज के पुनर्गठन की एक सम्पूर्ण व्यावहारिक योजना भी रखी। स्वभावतः उन्होंने अपने पूर्ववर्त्तियों को पानी पी-पीकर कोसा और उन्होंने सबसे अधिक ग़ुस्सा मार्क्स पर उतारकर उनका "सम्मान" किया।

यह लगभग उस समय हुआ, जब जर्मन समाजवादी पार्टी की दोनों शाखायें – आइज़ेनाख़पंथी तथा लासालपंथी – अभी-अभी एक हो गयी थीं और इस प्रकार उन्होंने अपनी शक्ति बहुत अधिक बढ़ा ली थी। परन्तु और अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि उन्होंने इस समूची शक्ति को अपने सामान्य शत्रु के विरुद्ध लगा देने की क्षमता भी प्राप्त कर ली थी। जर्मनी की समाजवादी पार्टी तेज़ी से एक शक्ति बनती जा रही थी। लेकिन उसे एक शक्ति बनाने की पहली शर्त यह थी कि हाल में हासिल की गयी एकता को ख़तरे में न डाला जाये। लेकिन डॉ॰ ड्यूहरिंग ने खुलेआम अपने इर्द-गिर्द एक गुट, एक भावी पृथक पार्टी का केन्द्रक, बनाना शुरू किया। इसलिए यह ज़रूरी हो गया कि हमें जो चुनौती दी गयी थी, हम उसे स्वीकार करें, और हमारी इच्छा हो या न हो, हम यह लड़ाई लड़ें।

यह काम चाहे बहुत मुश्किल न हो, मगर ज़ाहिर है कि काफ़ी दम लेनेवाला ज़रूर था। जैसा कि सभी जानते हैं, हम जर्मन लोग घोर संपूर्णता से, आप चाहे कुछ भी कह लें, उग्र गांभीर्य या गंभीर उग्रता से काम करनेवाले होते हैं। हममें से जब भी कोई किसी ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, जो उसकी

दृष्टि में नवीन है, तब सबसे पहले वह एक सर्वव्यापी मतव्यवस्था के रूप में उसका विस्तार करना आवश्यक समझता है। उसे यह सिद्ध करना होता है कि तर्कशास्त्र के प्राथमिक सिद्धान्त तथा सृष्टि के मूल नियम अनन्तकाल से इसीलिए चले आ रहे हैं कि अन्ततः उनकी परिणति इस नये आविष्कृत चरम सिद्धान्त में हो। और इस मामले में डॉ० ड्यूहरिंग जातीय मान से किसी माने में घटकर नहीं थे। एक सम्पूर्ण 'दर्शन-व्यवस्था'—मानसिक, नैतिक, प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक; एक सम्पूर्ण 'राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा समाजवाद की व्यवस्था' और अंत में 'राजनीतिक अर्थशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास'—कुछ नहीं तो अठपेजी साइज़ की तीन मोटी-मोटी पोथियां, बाहर से और अंदर से भी भारी-भरकम, मानो सामान्यतः सभी पुराने दार्शनिकों तथा अर्थशास्त्रियों के, और विशेषतः मार्क्स के खिलाफ़ तर्कों के तीन सेना-दल खड़े कर दिये गये हों,—दरअसल "विज्ञान में क्रान्ति", आमूल क्रांति ला देने की यह एक कोशिश थी—और मुझे इन सबसे निबटना था। देश तथा काल की धारणाओं से लेकर द्विधातुवाद[75] तक, भूतद्रव्य और गति की नित्यता से लेकर नैतिक धारणाओं की अनित्यता तक; डार्विन के प्राकृतिक वरण से लेकर भावी समाज में युवकों की शिक्षा तक—मुझे हर संभव विषय की विवेचना करनी थी। जैसे भी हो, मेरे प्रतिद्वंद्वी की व्यवस्थित व्यापकता ने मुझे उनके मुक़ाबले अनेकानेक विषयों पर मार्क्स के और अपने विचारों को पहले से अधिक सम्बद्ध रूप में प्रकट करने का अवसर दिया। और यही वह मुख्य कारण था, जिसने मुझे इस अन्यथा अप्रिय काम को हाथ में लेने के लिए विवश किया।

मेरा उत्तर पहले समाजवादी पार्टी के मुखपत्र, लाइप्ज़िग के «*Vorwärts*» में एक लेखमाला के रूप में, और बाद में «*Herrn Eugen Dühring's Umwälzung der Wissenschaft*» ('श्री यूजेन ड्यूहरिंग द्वारा विज्ञान में प्रवर्तित क्रांति') के नाम से एक पुस्तक के रूप में प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण ज़ूरिच से १८८६ में प्रकाशित हुआ था।

अपने मित्र, आजकल फ़्रांसीसी प्रतिनिधि-सभा में लिल के प्रतिनिधि पोल लफ़ार्ग के अनुरोध पर मैंने इस पुस्तक के तीन अध्यायों को एक पैम्फ़लेट की शक्ल दी। उन्होंने इस पैम्फ़लेट का अनुवाद किया और उसे '**समाजवाद: काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**' के नाम से १८८० में प्रकाशित किया। इस फ़्रांसीसी पाठ से ही पोलिश और स्पेनिश भाषाओं के संस्करण तैयार किये गये। १८८३ में हमारे जर्मन मित्रों ने इस पैम्फ़लेट को मूल भाषा में प्रकाशित किया। तब से इस जर्मन पाठ

के आधार पर इतालवी, रूसी, डेनिश, डच तथा रूमानियाई भाषाओं में इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इस तरह वर्तमान अंग्रेज़ी संस्करण को लेकर यह पुस्तक दस भाषाओं में प्रचलित है। जहां तक मुझे मालूम है, और किसी समाजवादी पुस्तक के, यहां तक कि १८४८ के हमारे 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' या मार्क्स कृत 'पूंजी' के भी, इतने अधिक अनुवाद नहीं हुए हैं। जर्मनी में इसके कुल मिलाकर लगभग २०,००० प्रतियों के चार संस्करण निकल चुके हैं।

पुस्तक का परिशिष्ट 'मार्क'[76] जर्मन समाजवादी पार्टी के अन्दर जर्मनी में भू-सम्पत्ति के इतिहास तथा विकास का कुछ प्रारंभिक ज्ञान फैलाने के उद्देश्य से लिखा गया था। यह ऐसे समय में और भी अधिक आवश्यक प्रतीत होता था, जब इस पार्टी द्वारा शहरों के मेहनतकशों को मिलाने का काम क़रीब-क़रीब पूरा हो चुका था और जब खेतिहर मजदूरों और किसानों को हाथ में लेना था। इस संस्करण के साथ भी यह परिशिष्ट दे दिया गया है, क्योंकि भू-सम्पत्ति के वे मूल रूप, जो सभी ट्यूटानिक क़बीलों में समान रूप से पाये जाते हैं, और उनके पतन का इतिहास इंगलैंड में जर्मनी की अपेक्षा भी कम ज्ञात हैं। मैंने इस परिशिष्ट के मूल रूप को अक्षुण्ण रखा है और हाल में मक्सिम कोवालेव्स्की ने जो परिकल्पना प्रस्तुत की है, उसकी ओर संकेत नहीं किया है। इस परिकल्पना के अनुसार कृषि-योग्य भूमि तथा चरागाहों का मार्क के सदस्यों के बीच बंटवारा होने के पहले उनमें एक विशाल पितृसत्तात्मक कुटुम्ब-समुदाय द्वारा सम्मिलित रूप से खेती की जाती थी। ऐसे एक समुदाय में कई-कई पीढ़ियों के लोग होते थे (दक्षिण-स्लाव 'ज़ाद्रूगा' के रूप में अभी भी इसका उदाहरण मिलता है)। बाद में, जब यह समुदाय इतना बड़ा हो गया कि सम्मिलित प्रबंध के योग्य न रह गया, समुदाय की ज़मीन का बंटवारा किया गया।[77] कोवालेव्स्की की बात संभवतः बिल्कुल सही है, लेकिन यह विषय अभी भी विचाराधीन है।

इस पुस्तक में प्रयुक्त आर्थिक पारिभाषिक शब्द, जहां तक वे नये हैं, मार्क्स की 'पूंजी' के अंग्रेज़ी संस्करण में इस्तेमाल किये गये शब्दों से मेल खाते हैं। "माल-उत्पादन" से हमारा तात्पर्य उस आर्थिक दौर से है, जिसमें वस्तुओं का उत्पादन उत्पादकों के उपभोग के लिए ही नहीं, विनिमय के हेतु भी होता है, अर्थात् उनका उत्पादन **माल के रूप में** होता है, उपभोग-मूल्यों के रूप में नहीं। यह दौर विनिमय के लिए उत्पादन के प्रारम्भ से लेकर आज तक चल रहा है; उसका पूरा विकास पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के अन्तर्गत ही होता है, अर्थात् उन परिस्थितियों में, जब उत्पादन के साधनों का स्वामी, पूंजीपति, मज़दूरी

देकर मजदूरों को काम पर रखता है – उन लोगों को, जो अपनी श्रम-शक्ति को छोड़कर उत्पादन के सभी साधनों से वंचित हैं – और पैदावार की अपनी लागत से जितना ऊपर बेचता है, वह सब हड़प लेता है। मध्ययुग से आज तक औद्योगिक उत्पादन के इतिहास को हम तीन दौरों में बांट सकते हैं : (१) दस्तकारी का दौर, जिसमें छोटे कारीगर-मालिक थोड़े-से कारीगर-मजदूरों और शागिर्दों के साथ काम करते हैं और जहां हर कारीगर पूरी चीज़ तैयार करता है; (२) मैनुफ़ेक्चर का दौर, जब कहीं ज्यादा मज़दूर एक बड़े कारखाने में एकत्र होकर श्रम-विभाजन के आधार पर पूरी वस्तु का उत्पादन करते हैं; हर मज़दूर उत्पादन की किसी एक आंशिक क्रिया को ही करता है और किसी वस्तु का उत्पादन तभी पूरा होता है, जब वह एक के बाद एक सभी के हाथों से गुज़रती है; (३) आधुनिक उद्योग का दौर, जब उत्पादन किसी शक्ति से चलनेवाली मशीनों से होता है और जहां मज़दूर का काम सिर्फ़ इतना ही रह जाता है कि वह यांत्रिक साधन यानी मशीन के काम की देखभाल रखे और उसे ठीक करता रहे।

मुझे अच्छी तरह मालूम है कि इस पुस्तक की विषय-वस्तु पर ब्रिटिश पाठकों के काफ़ी बड़े भाग को आपत्ति होगी। लेकिन अगर हम महाद्वीपवासियों ने ब्रिटिश "भद्रता" के पूर्वाग्रहों का ज़रा भी ख़याल किया होता, तो हम और भी गये-गुज़रे होते। हम जिस सिद्धान्त को "ऐतिहासिक भौतिकवाद" कहते हैं, इस पुस्तक में उसी की हिमायत की गयी है, और अधिकांश अंग्रेज़ी पाठकों के लिए तो "भौतिकवाद" शब्द ही कर्णकटु है। "अज्ञेयवाद" को सहन किया जा सकता है, परंतु भौतिकवाद तो एकदम अस्वीकार्य है।

फिर भी सत्रहवीं सदी से इंगलैंड ही आधुनिक भौतिकवाद के सभी रूपों की जन्मभूमि रहा है।

"भौतिकवाद ग्रेट ब्रिटेन का औरस पुत्र है। ब्रिटिश स्कोलस्टिक डंस स्कॉट पहले ही पूछ चुके थे, 'क्या भूतद्रव्य के लिए चिंतन करना संभव है?'

"इस चमत्कार को संभव बनाने के लिए उन्होंने ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता की शरण ली, अर्थात् उन्होंने धर्मशास्त्र के माध्यम से भौतिकवाद की शिक्षा दी। इसके अतिरिक्त वह नामवादी[78] थे। नामवाद, भौतिकवाद का पहला रूप, मुख्यत: इंगलैंड के स्कोलस्टिकों में प्रचलित रहा है।

"वास्तव में अंग्रेज़ी भौतिकवाद के जन्मदाता बेकन थे। उनके अनुसार प्रकृति-विज्ञान ही सच्चा विज्ञान है और इंद्रियानुभूति पर आधारित भौतिकी इस प्रकृति-विज्ञान का सबसे मुख्य अंग है। अनाक्सागोरस और उनके homoiomeriae[79]

का, डेमोक्राइटस और उनके परमाणुओं का वह प्रमाण के रूप में अक्सर हवाला देते हैं। उनके अनुसार हमारी इंद्रियां कभी धोखा नहीं देतीं और वे ही समस्त ज्ञान का स्रोत हैं। समूचा विज्ञान अनुभव पर आधारित है और इंद्रियों द्वारा प्राप्त तथ्यों की एक तर्कसंगत अनुसंधान प्रणाली से जांच करने में निहित है। अनुगम, विश्लेषण, तुलना, प्रेक्षण, प्रयोग – इस तर्कसंगत प्रणाली के ये ही मुख्य रूप हैं। भूतद्रव्य में जो गुण अन्तर्निहित हैं, उनमें सर्वप्रथम तथा सर्वोपरि गुण है गति। यह केवल यांत्रिक तथा गणितीय गति के रूप में ही नहीं, बल्कि मुख्यतः आवेग, प्राणशक्ति, तनाव – अथवा जैकब बेहमे की भाषा में कहें, तो "qual"* के रूप में है।

"भौतिकवाद के प्रथम सृष्टिकर्त्ता बेकन के दर्शन में भौतिकवाद के बहुमुखी विकास के बीज अभी भी हैं। एक ओर तो भूतद्रव्य के चारों ओर ऐन्द्रिय, काव्यात्मक प्रकाश है और वह मानो अपनी मनोहारी हंसी से मानव की संपूर्ण सत्ता को अपनी ओर खींचता है। दूसरी ओर, सूत्र रूप में प्रतिपादित उनके सिद्धांत में क़दम क़दम पर धर्मशास्त्र से आयात असंगतियां भरी पड़ी हैं।

"अपने आगामी विकास में भौतिकवाद एकांगी हो जाता है। जिस आदमी ने बेकन के भौतिकवाद को व्यवस्थित रूप दिया, उनका नाम है हॉब्स। इन्द्रियजनित ज्ञान का काव्यात्मक सौरभ नष्ट हो जाता है, वह गणितशास्त्री के निराकार अनुभव में बदल जाता है। रेखागणित को मुख्य विज्ञान घोषित किया जाता है। भौतिकवाद मानवद्वेषी बन जाता है। यदि उसे अपने शत्रु, मानवद्वेषी, अशरीरी अध्यात्मवाद को उसी के घर में पराजित करना है, तो भौतिकवाद को स्वयं अपने शरीर को दण्ड देना होगा और तपस्वी बनना होगा। इस प्रकार वह ऐन्द्रिय न रहकर बौद्धिक रूप ग्रहण कर लेता है, परन्तु इसी प्रकार, इसका परिणाम चाहे जो भी हो, उसमें वह संगति और व्यवस्था भी आती है, जो बुद्धि की विशेषता है।

"बेकन के काम को आगे बढ़ानेवाले हॉब्स इस प्रकार तर्क करते हैं: यदि

---

* "Qual" शब्द में दार्शनिक श्लेष है। इसका शाब्दिक अर्थ है यंत्रणा, एक ऐसी पीड़ा, जो किसी क्रिया को जन्म दे। इसके साथ ही रहस्यवादी बेहमे ने इस जर्मन शब्द में लैटिन शब्द qualitas [गुण] का कुछ अर्थ डाल दिया है। उनका "qual", बाहर से पहुंचायी जानेवाली पीड़ा के विपरीत, वह क्रियात्मक तत्व है, जो उसके अधीन किसी वस्तु, संबंध अथवा व्यक्ति के स्वतःस्फूर्त्त विकास से उत्पन्न होता है, और फिर उसे बल देता है।

समस्त मानवीय ज्ञान इन्द्रियजनित है, तो हमारी अवधारणायें और हमारे विचार वास्तव जगत की छायायें मात्र हैं, अपने ऐन्द्रिय रूप से विच्छिन्न छायायें। विज्ञान इन छायाओं को नाम भर दे सकता है। अनेक छायाओं के लिए एक ही नाम चल सकता है। नामों के भी नाम हो सकते हैं। यदि एक ओर हम यह कहें कि सभी विचारों की उत्पत्ति इन्द्रियजगत में ही होती है, और दूसरी ओर यह भी कहें कि शब्द में शब्द से अधिक भी कुछ है; या यह कि जिन सत्ताओं को हम अपनी इंद्रियों द्वारा जानते हैं, और विशिष्ट या व्यक्तिगत रूपों में ही जिनकी स्थिति है, उनके अतिरिक्त ऐसी भी सत्तायें हैं, जिनका अस्तित्व विशिष्ट और व्यक्तिगत न होकर सर्वव्यापी है, तो यह अपने में एक विरोध होगा। अदैहिक वस्तु कहना उतना ही बेमानी है, जितना अदैहिक देह कहना। देह, सत्ता, वस्तु—एक ही वास्तविकता के अलग-अलग नाम हैं। **चिंतन को चिंतन करनेवाले भूतद्रव्य से पृथक् करना असंभव है।** संसार में जितने परिवर्तन होते रहते हैं, यह भूतद्रव्य उनका मूलाधार है। असीम शब्द निरर्थक है, अगर उससे यह न समझा जाये कि हमारे मस्तिष्क में जोड़ लगाते जाने की एक अंतहीन प्रक्रिया की सामर्थ्य है। हमारे लिए भौतिक चीज ही बोधगम्य है, इसलिए हम ईश्वर के अस्तित्व के बारे में कुछ नहीं जान सकते। मेरा अपना अस्तित्व ही निश्चित है। हर मानवीय आवेग एक यांत्रिक गति है, जिसका आरंभ है और अंत भी। जो हमारे आवेग के विषय हैं, उन्हीं को हम श्रेष्ठ कहते हैं। मनुष्य भी उन्हीं नियमों के अधीन है, जिनके अधीन प्रकृति है। शक्ति और स्वतंत्रता, दोनों ही एक हैं।

"लेकिन हॉब्स ने बेकन के दर्शन को उनके इस मूलभूत सिद्धान्त को प्रमाणित किये बिना व्यवस्थित रूप दिया था कि इन्द्रियजगत में ही समस्त मानवीय ज्ञान की उत्पत्ति होती है। उसका प्रमाण लाक ने अपने ग्रंथ 'मानव बोध पर निबंध' में दिया।

"हॉब्स ने बेकन के भौतिकवाद के धार्मिक पूर्वाग्रहों को छिन्न-भिन्न कर दिया; इसी प्रकार लाक के संवेदनवाद से अभी तक जुड़े हुए अंतिम धर्मशास्त्रीय बंधनों को भी कालिंस, डाडवेल, कावर्ड, हार्टले, प्रीस्टले, आदि ने तोड़ डाला। जो भी हो, व्यावहारिक भौतिकवादियों के लिए निर्गुणवाद[80] धर्म से छुटकारा पाने का एक सरल उपाय भर है।"*

---

*मार्क्स और एंगेल्स, 'पवित्र परिवार', फ्रैंकफ़ुर्ट-आन-मेन, १८४५, पृ० २०१–२०४।

कार्ल मार्क्स ने ब्रिटेन में आधुनिक भौतिकवाद की उत्पत्ति के बारे में इसी तरह लिखा था। और उनके पूर्वजों को मार्क्स ने जो सम्मान दिया था, अगर आजकल वह अंग्रेज़ों को भाता नहीं, तो यह अफ़सोस की बात है। फिर भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि बेकन, हॉब्स और लाक ही फ्रांस के उस उज्ज्वल भौतिकवादी मत के जन्मदाता थे, जिसने बावजूद जल-थल पर उन सारी लड़ाइयों के, जिनमें जर्मनों तथा अंग्रेज़ों ने फ्रांसीसियों के ऊपर विजय पायी, अठारहवीं शताब्दी को सबसे बढ़कर एक फ्रांसीसी शताब्दी बना दी – और यह इस युग का समापन करनेवाली उस फ्रांसीसी क्रांति के पहले ही, जिसके परिणामों के, हम बाहरवाले इंगलैंड और जर्मनी के लोग, अभी भी अभ्यस्त होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता। इस शताब्दी के मध्य में जो भी सुसंस्कृत विदेशी इंगलैंड में आकर बस गया, उसकी आंख में वह चीज़ बुरी तरह खटकती थी, जिसे अंग्रेज़ी भद्र मध्यवर्ग की धर्मांधता और मूर्खता ही समझने को वह मजबूर था। उस समय हम सभी भौतिकवादी थे, या कम से कम, बहुत ज्यादा आज़ाद ख़याल के लोग थे, और यह बात हमारी कल्पना से भी परे मालूम होती थी कि इंगलैंड के प्राय: सभी शिक्षित लोग तरह-तरह की असंभव, अलौकिक बातों में विश्वास करें, और बकलैंड तथा मैंटेल जैसे भूविज्ञानी तक अपने विज्ञान के तथ्यों को इस तरह तोड़ें-मरोड़ें कि वे बाइबिल के उत्पत्ति-ग्रंथ की कल्पनाओं के बहुत ख़िलाफ़ न जान पड़ें, जबकि उस समय मज़हबी मामलों में अपना ज़ेहन इस्तेमाल करने की हिम्मत करनेवालों को ढूंढ़ने के लिये आपको अशिक्षित, "मैले-कुचैले" – जैसा उन्हें तब कहा जाता था – लोगों के बीच, मज़दूरों, ख़ासकर ओवेन के अनुयायी समाजवादियों के बीच, जाना पड़ता था।

लेकिन तब से इंगलैंड "सभ्य" हो चुका है। १८५१ की प्रदर्शनी[81] ने इंगलैंड के द्वीपीय अलगपन के अंत की घोषणा की। इंगलैंड ने खान-पान, चाल-ढाल और विचारों में धीरे-धीरे अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण किया – यहां तक कि मुझे यह इच्छा होने लगती है कि कुछ अंग्रेज़ी तौर-तरीक़े और रिवाज शेष यूरोप में उतना ही फैले, जितना दूसरे यूरोपीय आचार-विचार यहां फैले हैं। जो भी हो, जैतून के तेल के फैलने के साथ-साथ (१८५१ से पहले इससे अभिजात वर्ग ही परिचित था) मज़हबी मामलों में महाद्वीपीय संशयवाद का भी घातक प्रसार हुआ है; हालत यहां तक पहुंच गई है कि यद्यपि अभी तक अज्ञेयवाद को बिल्कुल इंगलैंड के चर्च जैसा "सम्मानीय" नहीं माना जाता है, तो भी, जहां तक

उसके सम्मानित होने का प्रश्न है, वह क़रीब-क़रीब बैप्टिज़्म के स्तर पर पहुंच गया है, और "मुक्ति-फ़ौज"[82] से तो वह यक़ीनन ऊपर है। मैं यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि ऐसी स्थिति में नास्तिकता की इस प्रगति से जो लोग सचमुच दुःखी हैं और जो उसकी निंदा करते हैं, उन्हें इस बात से सान्त्वना मिलेगी कि ये "नये, निराले ख़यालात" कहीं बाहर पैदा नहीं हुए, रोज़मर्रा के इस्तेमाल की और बहुत-सी चीज़ों की तरह "made in Germany" नहीं हैं, बल्कि असंदिग्ध रूप से ठेठ अंग्रेज़ी हैं, और यह कि दो सौ साल पहले उनके अंग्रेज़ जन्मदाता अपने आज के वंशजों से कहीं आगे बढ़ चुके थे।

और सचमुच अज्ञेयवाद, अगर लंकाशायर के एक अभिव्यंजनापूर्ण शब्द का उपयोग करें, तो "झेंपू" भौतिकवाद के अतिरिक्त और है क्या? प्रकृति के विषय में अज्ञेयवादी की धारणा सम्पूर्ण रूप से भौतिकवादी है। समस्त प्राकृतिक जगत नियमानुशासित है, और उसमें बाह्य हस्तक्षेप की बिल्कुल गुंजाइश नहीं है। परन्तु—वह आगे कहता है—ज्ञात जगत से परे किसी परमब्रह्म की सत्ता है कि नहीं, इसको निश्चित या असिद्ध करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। यह बात उस समय तो मूल्यवान हो सकती थी, जब लाप्लास से नेपोलियन ने पूछा कि उनकी *«Mécanique céleste»* ['खगोलीय यांत्रिकी'] में सृजनकर्ता का उल्लेख तक क्यों नहीं है, तो उस महान खगोलशास्त्री ने गर्व से उत्तर दिया, "Je n'avais pas besoin de cette hypothèse"*। परन्तु आजकल विश्व की हमारी विकासवादी धारणा में न किसी सृजनकर्ता का स्थान है, न शासक का। इस समूचे विद्यमान जगत से बाहर किसी परमब्रह्म की बात करना ही विरोधाभास है, और मुझे तो लगता है कि यह धार्मिक जनों की भावनाओं का व्यर्थ में अपमान भी है।

फिर हमारा अज्ञेयवादी यह भी मानता है कि अपनी इन्द्रियों से हमें जो सूचना मिलती है, हमारा सारा ज्ञान उसी पर आधारित है। परन्तु वह प्रश्न करता है, हम कैसे जानें कि हम अपनी इन्द्रियों द्वारा जिन वस्तुओं का बोध करते हैं, हमारी इन्द्रियां हमें उनका सही चित्र देती हैं? और तब वह हमें बताता है कि जब वह वस्तुओं और उनके गुणों की बात करता है, उसका मतलब वास्तव में इन वस्तुओं और गुणों से नहीं होता—उनके बारे में वह कुछ भी निश्चित रूप से जानने में असमर्थ है—ये वस्तुएं उसकी इन्द्रियों पर जो प्रभाव डालती हैं,

---

* "मुझे इस परिकल्पना की आवश्यकता न थी।"—सं०

उसका मतलब केवल उन्हीं से होता है। इस तर्क का केवल तर्क से खंडन करना अवश्य कठिन है। परन्तु तर्क के पहले व्यवहार था। "In Anfang war die That"* और जब मानवीय उद्भावना-शक्ति ने इस कठिनाई की उद्भावना की, उसके पहले ही मानवीय व्यवहार ने उसे हल कर लिया था। The proof of the pudding is in the eating. हम वस्तुओं में जिन गुणों का अवबोध करते हैं, उनके अनुसार जहां हम उनको अपने उपयोग में लाना शुरू करते हैं, हम अपने इन्द्रिय ज्ञान को एक ऐसी कसौटी पर कसते हैं, जो झूठी नहीं हो सकती। यदि यह इन्द्रिय ज्ञान ग़लत था, तो हमारा यह अनुमान भी ग़लत होगा कि किसी वस्तु को किसी उपयोग में लाया जा सकता है और हमारा प्रयत्न असफल होगा। परन्तु यदि हम अपने ध्येय को प्राप्त करने में सफल होते हैं, यदि हम देखते हैं कि यह वस्तु, उसके संबंध में हमारी जो धारणा है, उससे मेल खाती है, और हम उससे जो काम लेना चाहते हैं, वह उस काम आती है, तो यह इस बात का पक्का सबूत है कि **इस हद तक** उसका और उसके गुणों का हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान हमारे बाहर की वास्तविकता के अनुकूल है। और जब भी हम असफलता का सामना करते हैं, हमें साधारणतः अपनी असफलता का कारण समझने में देर नहीं लगती। हम देखते हैं कि जिस प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर हमने काम किया, वह या तो अधूरा और सतही था, या अन्य वस्तुओं के प्रत्यक्ष ज्ञान के फलों से असंगत रूप से मिला था—और इसी को हम दोषपूर्ण तर्क कहते हैं। जब तक हम अपनी इन्द्रियों को ठीक से साधने और उपयोग करने का और अपने व्यवहार को उचित रूप से प्राप्त और प्रयुक्त प्रत्यक्ष ज्ञान द्वारा निर्धारित सीमा के भीतर ही रखने का ध्यान रखते हैं, तब तक हम देखेंगे कि हमारे प्रयोग के फल से यह सिद्ध हो जाता है कि हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान उस वस्तु की विषयगत प्रकृति के अनुकूल है, जिसका हम अपनी इंद्रियों द्वारा बोध करते हैं। अभी तक एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है, जिसमें हम इस परिणाम पर पहुंचे हों कि वैज्ञानिक रूप से नियंत्रित हमारा इन्द्रिय ज्ञान बाह्य जगत के विषय में हमारे मन में ऐसे विचारों को जन्म देता है, जो अपनी प्रकृति से ही वास्तविकता के प्रतिकूल हों, अथवा यह कि बाह्य जगत और उसके विषय में हमारे इंद्रिय ज्ञान के बीच कोई स्वाभाविक असंगति है।

---

* "प्रारंभ में कार्य का ही अस्तित्व था"—गेटे की कृति 'फ़ाउस्ट' से।—सं०

लेकिन तब नव-कांटवादी अज्ञेयवादी आ जाते हैं और कहते हैं—हमें किसी वस्तु के गुणों का सच्चा अवबोध हो सकता है, परंतु हम किसी भी इन्द्रिय अथवा मानसिक प्रक्रिया से वस्तु-निजरूप को समझ नहीं सकते। यह "वस्तु-निजरूप" हमारी समझ के बाहर है। हेगेल ने बहुत पहले इसका उत्तर दिया था—अगर आप किसी वस्तु के सभी गुणों को जानते हैं, तो आप स्वयं उस वस्तु को जानते हैं; अगर कोई बात रह जाती है, तो यही कि यह वस्तु हमसे बाहर है और जब आपने अपनी इन्द्रियों द्वारा इस बात को भी ज्ञात कर लिया, तो आपने कांट के विख्यात Ding an sich [वस्तु-निजरूप] के शेषांश को भी ग्रहण कर लिया और कोई बात बाक़ी नहीं रही। इसमें इतना और जोड़ा जा सकता है कि कांट के समय में प्राकृतिक वस्तुओं का हमारा ज्ञान सचमुच इतना आंशिक और विच्छिन्न था कि उनका यह सन्देह करना स्वाभाविक ही था कि इन वस्तुओं में से हर एक के बारे में हमारा जो न्यून ज्ञान है, उससे परे एक रहस्यमय "वस्तु-निजरूप" का अस्तित्व है। परन्तु विज्ञान की विराट प्रगति के कारण एक के बाद एक ये पकड़ में न आनेवाली वस्तुएं पकड़ में लाई गयी हैं, विश्लेषित की गयी हैं, इतना ही नहीं, **पुनरुत्पादित** भी की गयी हैं। और जिस वस्तु का हम उत्पादन कर सकते हैं, उसे अज्ञेय हरगिज़ नहीं समझ सकते। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध के रसायन विज्ञान के लिए जैव पदार्थ इसी तरह के रहस्यमय पदार्थ थे। अब हम जैव प्रक्रियाओं की सहायता के बिना ही, एक के बाद एक, इन जैव पदार्थों को उनके रासायनिक तत्त्वों से तैयार करना सीख रहे हैं। आधुनिक रसायन-विज्ञानी कहते हैं कि जहां हमने किसी भी पिण्ड की रासायनिक संरचना को जान लिया, हम उसे उसके तत्त्वों से तैयार कर सकते हैं। हमें अभी उच्चतम जैव पदार्थों, अर्थात् ऐल्बूमिनी पिण्डों की रासायनिक संरचना जानने में बहुत देर है, परन्तु कोई कारण नहीं है कि हम इस ज्ञान को प्राप्त न करें—चाहे इसमें शताब्दियां लग जायें—और उससे लैस होकर कृत्रिम ऐल्बूमिन उत्पन्न न करें। लेकिन अगर हम यह कर पाये, तब हम साथ ही जैव जीवन को भी उत्पन्न कर लेंगे, कारण अपने निम्नतम से लेकर उच्चतम रूपों में जीवन ऐल्बूमिन पिण्डों के अस्तित्व का ही सामान्य रूप है।

लेकिन ये औपचारिक मानसिक प्रतिबन्ध लगा लेते ही हमारे अज्ञेयवादी की बातचीत और उसका पूरा रवैया ऐसा होता है, जैसे वह घोर भौतिकवादी हो, और असलियत में वह है भी वही। वह कह सकता है कि जहां तक **हम** जानते हैं, भूतद्रव्य और गति, या जैसा आजकल कहा जाता है, ऊर्जा, न तो उत्पन्न

की जा सकती है और न नष्ट, परन्तु हमारे पास इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह किसी भी समय उत्पन्न नहीं की गयी थी। मगर अगर आप उसकी इस स्वीकारोक्ति को किसी ख़ास मामले में उसके ख़िलाफ़ इस्तेमाल करने की कोशिश करें, तो वह आपके दावे को उसी वक़्त ख़ारिज करवा देगा। अमूर्त रूप में वह चाहे अध्यात्मवाद की संभावना को मान ले, पर व्यवहार में वह उसे अपने पास भी फटकने भी नहीं देगा। वह आपको बतायेगा कि जहां तक हम जानते हैं और जान सकते हैं, विश्व का न तो कोई सृजनकर्त्ता है और न शासक; जहां तक हम जानते हैं, भूतद्रव्य और ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न विनष्ट; हमारे लिए मन ऊर्जा का एक प्रकार है, मस्तिष्क की एक क्रिया है; हम इतना ही जानते हैं कि भौतिक जगत शाश्वत नियमों से अनुशासित है, आदि, आदि। इस प्रकार, जहां तक वह वैज्ञानिक है, जहां तक वह कुछ जानता है, वह भौतिकवादी है; पर अपने विज्ञान से बाहर, उन क्षेत्रों में, जिनके बारे में वह कुछ नहीं जानता, वह अपने अज्ञान का यूनानी भाषा में अनुवाद कर देता है और उसे अज्ञेयवाद के नाम से पुकारता है।

जो भी हो, एक बात साफ़ मालूम होती है: यदि मैं अज्ञेयवादी होता, तो भी यह स्पष्ट है कि इस पुस्तक में मैंने इतिहास की जिस अवधारणा को चित्रित किया है, उसे मैं "ऐतिहासिक अज्ञेयवाद" नहीं कह सकता था। ईश्वर में विश्वास रखनेवाले लोग मेरे ऊपर हंसते और अज्ञेयवादी गुस्से में आकर मुझसे पूछते कि क्या मैं उनका मज़ाक़ उड़ाने जा रहा हूं? इसलिए मैं आशा करता हूं कि ब्रिटिश भद्रता को भी बहुत ज़्यादा धक्का नहीं लगेगा, अगर मैं इतिहास की गति की उस अवधारणा को नाम देने के लिए अंग्रेज़ी में, और साथ ही और बहुत-सी भाषाओं में, "ऐतिहासिक भौतिकवाद" शब्द का प्रयोग करूं, जिसके अनुसार सभी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं की मुख्य प्रेरक शक्ति और उनका अन्तिम कारण समाज के आर्थिक विकास में, उत्पादन तथा विनिमय प्रणालियों के परिवर्तन में और फलस्वरूप समाज के विभिन्न वर्गों में विभाजन में और एक दूसरे के ख़िलाफ़ इन वर्गों के संघर्षों में निहित है।

मेरे ऊपर इतना अनुग्रह संभवत: और भी शीघ्र किया जाये, अगर मैं यह दिखा दूं कि ऐतिहासिक भौतिकवाद ब्रिटिश भद्रता के लिए भी हितकर सिद्ध हो सकता है। मैंने इस बात का उल्लेख किया है कि आज से चालीस या पचास साल पहले इंगलैंड में आकर बसनेवाले हर सुसंस्कृत विदेशी की दृष्टि में वह चीज़ बुरी तरह खटकती थी, जिसे अंग्रेज़ भद्र मध्यवर्ग की धर्मान्धता और मूर्खता ही

समझने को वह मजबूर था। अब मैं यह सिद्ध करने जा रहा हूं कि उस ज़माने का भद्र अंग्रेज़ मध्यवर्ग इतना बुद्धू नहीं था, जितना वह एक बुद्धिजीवी विदेशी को लगता था। उसकी धार्मिक प्रवृत्तियों का कारण समझा जा सकता है।

जब यूरोप मध्ययुग से निकला, शहरों का उदीयमान मध्यवर्ग ही उसका क्रांतिकारी तत्त्व था। उसने मध्ययुगीन सामन्ती व्यवस्था के अन्दर अपने लिए एक मान्य स्थान बना लिया था, परन्तु यह स्थान भी उसकी विस्तरणशील शक्ति के लिए बहुत संकुचित हो गया था। सामंती व्यवस्था के रहते मध्यवर्ग का, **पूंजीपति वर्ग** का, विकास असंभव था, अतएव सामंती व्यवस्था का पतन अवश्यंभावी था।

लेकिन सामंतवाद का महान अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र रोमन-कैथोलिक चर्च था। उसने बावजूद अन्दरूनी लड़ाइयों के समस्त सामंतीकृत पश्चिमी यूरोप को एक वृहत राजनीतिक प्रणाली के अंतर्गत एकजुट किया था, और इस प्रणाली का पार्थक्यवादी यूनानियों से उतना ही विरोध था, जितना मुस्लिम देशों से। उसने सामंती संस्थाओं के चारों ओर ईश्वरीय पावित्र्य का प्रभामण्डल फैला दिया था। उसने सामंती नमूने पर पदों की अपनी एक क्रमबद्ध व्यवस्था क़ायम कर रखी थी, और अंत में कैथोलिक जगत की पूरी एक-तिहाई भूमि का अधिकारी होने के नाते वह स्वयं सबसे अधिक शक्तिशाली सामंती प्रभु था। इसके पहले कि लौकिक सामंतवाद पर हर देश में और हर बात को लेकर आक्रमण किया जा सकता, उसके इस पवित्र केंद्रीय संगठन को नष्ट करना आवश्यक था।

इसके अलावा, मध्यवर्ग के उत्थान के साथ ही विज्ञान का शक्तिशाली पुनरुत्थान भी हो रहा था। खगोल-विज्ञान, यांत्रिकी, भौतिकी, शरीररचना-विज्ञान, शरीरक्रिया-विज्ञान – इन सब का अध्ययन-अनुशीलन फिर से आरंभ हुआ। औद्योगिक उत्पादन के विकास के लिए पूंजीपति वर्ग को एक ऐसे विज्ञान की आवश्यकता थी, जो प्राकृतिक वस्तुओं के भौतिक गुणों का और प्राकृतिक शक्तियों की क्रिया-पद्धतियों का निश्चय करे। उस समय तक विज्ञान और कुछ नहीं, चर्च का विनीत दास था और धर्म द्वारा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन न कर पाया था, और इसलिए वस्तुतः यह विज्ञान था ही नहीं। अब विज्ञान ने चर्च के ख़िलाफ़ विद्रोह किया; विज्ञान के बिना पूंजीपति वर्ग का काम नहीं चल सकता था, इसलिए पूंजीपति वर्ग को इस विद्रोह में सम्मिलित होना पड़ा।

जिन बातों को लेकर उदीयमान मध्यवर्ग का संस्थापित धर्म के साथ टकराना लाज़िमी था, ऊपर उनमें से केवल दो का ज़िक्र किया गया है, लेकिन यह दिखाने के लिए इतना काफ़ी है कि रोमन चर्च के दावों के ख़िलाफ़ लड़ने में जिस वर्ग

को सबसे सीधी दिलचस्पी थी, वह था पूंजीपति वर्ग और दूसरे, उस ज़माने में सामंतवाद के ख़िलाफ़ हर संघर्ष को मजहबी जामा पहनना पड़ता था और इस संघर्ष को सबसे पहले चर्च के ख़िलाफ़ चलाना पड़ता था। लेकिन अगर विश्वविद्यालयों ने और शहरों के व्यापारियों ने आवाज़ उठायी, तो यह लाज़िमी था – और हुआ भी ऐसा ही – कि आम देहाती जनता में, किसानों में उसकी गहरी गूंज सुनाई पड़ती, जिन्हें सर्वत्र अपने अस्तित्व तक के लिए अपने लौकिक तथा धार्मिक प्रभुओं से संघर्ष करना पड़ता था।

सामंतवाद के विरुद्ध पूंजीपति वर्ग के लम्बे संघर्ष की परिणति तीन महान, निर्णायक लड़ाइयों में हुई।

पहली लड़ाई वह है, जिसे जर्मनी का प्रोटेस्टेंट सुधार आंदोलन कहते हैं। लूथर ने चर्च के ख़िलाफ़ जो रणभेरी बजायी, उसके जवाब में राजनीतिक क़िस्म के दो विद्रोह हुए – पहला, फ़्रांज़ फ़ॉन सिकिंगन के नेतृत्व में छोटे सामंतों का विद्रोह (१५२३) और इसके बाद १५२५ का महान किसान युद्ध। दोनों पराजित हुए और इस पराजय का मुख्य कारण इन विद्रोहों में सबसे ज्यादा दिलचस्पी रखनेवाले दल, शहर के बर्गरों का ढुलमुलपन था। इस ढुलमुलपन के कारणों की चर्चा हम यहां नहीं कर सकते। उसी समय से इस संघर्ष ने लक्ष्य-भ्रष्ट होकर स्थानीय राजाओं और केंद्रीय सत्ता के बीच संघर्ष का रूप ले लिया और इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी अगले दो सौ वर्षों के लिए यूरोप के राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय राष्ट्रों में न रहा। फिर भी लूथर के सुधार आंदोलन ने एक नये धर्म को जन्म दिया, एक ऐसे धर्म को, जो निरंकुश राजतंत्र के सर्वथा अनुकूल था। उत्तर-पूर्वी जर्मनी के किसानों ने ज्योंही लूथरवाद को ग्रहण किया, वे गिरकर आज़ाद किसान से भूदास बन गये।

लेकिन जहां लूथर असफल रहा, वहां काल्विन की विजय हुई। काल्विन का मत उसके युग के सबसे साहसी पूंजीपतियों के उपयुक्त था। उसका पूर्वनियतिवाद का सिद्धान्त इस वास्तविकता की धार्मिक अभिव्यक्ति था कि होड़ के व्यापारिक जगत में सफलता या असफलता मनुष्य के कर्म या कौशल पर नहीं, बल्कि ऐसी परिस्थितियों पर निर्भर है, जिन पर उसका कोई वश नहीं है। यह सफलता या असफलता उस व्यक्ति पर निर्भर नहीं है, जो इच्छा करता है या दौड़-भाग करता है, बल्कि अज्ञात और शक्तिशाली आर्थिक शक्तियों की कृपा पर निर्भर है। यह बात आर्थिक क्रान्ति के युग में और भी सही थी, एक ऐसे युग में, जब सभी पुराने व्यापारिक मार्गों और केंद्रों की जगह नये मार्ग और केंद्र क़ायम हुए थे,

जब दुनिया के लिए भारत और अमरीका के मार्ग खुल गये थे, और जब विश्वास के सबसे पवित्र आर्थिक प्रतीक–सोना और चांदी के मूल्य तक–लड़खड़ाने और टूटने लगे थे। काल्विन के चर्च का संविधान सम्पूर्णतः जनवादी तथा गणतंत्रवादी था; और जहां ईश्वर के राज्य को ही गणतंत्र का रूप दे दिया गया हो, वहां इस लौकिक जगत के राज्य ही राजाओं, बिशपों और सामंतों के अधिकार में कैसे रह सकते थे? जहां जर्मन लूथरवाद स्वेच्छा से राजाओं का अस्त्र बन गया, काल्विनवाद ने हालैंड में एक गणतंत्र की स्थापना की और इंगलैंड में, और विशेषकर स्काटलैंड में सक्रिय गणतंत्रवादी पार्टियों की स्थापना की।

दूसरे महान पूंजीवादी आंदोलन ने काल्विनवाद में अपना सिद्धान्त पहले से ही तैयार पाया। यह आंदोलन इंगलैंड में हुआ। शहरों के मध्यवर्ग ने इसका सूत्रपात किया और देहाती इलाक़ों के मध्यम किसान वर्ग उसे विजय तक ले गया। यह भी एक विचित्र बात है कि तीनों महान पूंजीवादी विद्रोहों में किसानों से ही वह फ़ौज तैयार हुई, जिसे यह लड़ाई लड़नी थी, और किसान ही वह वर्ग है, जो एक बार विजय मिली नहीं कि उस विजय के आर्थिक परिणामों से शर्तिया चौपट हो जाता है। क्रामवेल के एक सौ वर्ष बाद इंगलैंड का यह मध्यम किसान वर्ग क़रीब-क़रीब ग़ायब हो चुका था। जो भी हो, अगर ये किसान न होते, और शहरों के **साधारण जन** [plebeian] न होते, तो अकेला पूंजीपति वर्ग इस लड़ाई को उसके कटु अंत तक न लड़ पाता और चार्ल्स प्रथम को सूली पर न चढ़ा पाता। पूंजीपति वर्ग की उन जीतों को, जिनके लिए परिस्थितियां तैयार हो चुकी थीं, हासिल करने के लिए भी क्रान्ति को और बहुत काफ़ी आगे ले जाना था–ठीक वैसे ही जैसे १७९३ में फ़्रांस में हुआ और १८४८ में जर्मनी में। वास्तव में यह पूंजीवादी समाज के विकास का एक नियम मालूम होता है।

ख़ैर, क्रांतिकारी सक्रियता के इस आधिक्य के बाद आवश्यक रूप से उसकी अनिवार्य प्रतिक्रिया भी हुई और उधर यह प्रतिक्रिया भी जिस बिंदु पर स्थिर हो सकती थी, उस पर न ठहरकर उससे आगे बढ़ गयी। इस तरह बहुत बार आगे-पीछे डगमगाने के बाद अंत में गुरुत्व का एक नया केंद्र स्थापित हुआ और इस जगह से फिर एक नया सिलसिला शुरू हुआ। इंगलैंड के इतिहास के उस शानदार युग की, जिसे भद्रजन "महान विद्रोह" के नाम से जानते हैं, और उत्तरकालीन संघर्षों की परिणति एक ऐसी अपेक्षाकृत तुच्छ घटना में हुई, जिसे उदारपंथी इतिहासकारों ने "गौरवमय क्रांति"[83] का नाम दिया है।

यह नया प्रस्थान-बिंदु उदीयमान मध्यवर्ग और भूतपूर्व सामंती ज़मींदारों के बीच समझौता था। और यद्यपि ये ज़मींदार आज की तरह अभिजात वर्ग ही कहलाते थे, वे दीर्घकाल से ऐसे पथ पर आरूढ़ थे, जिस पर चलकर वे बहुत बाद में आनेवाले फ़्रांस के लुई फ़िलिप की तरह "राज्य के पहले पूंजीपति" बन गये। इंगलैंड का यह सौभाग्य था कि बड़े-बड़े पुराने सामंतों ने गुलाबों की लड़ाई[84] में एक दूसरे को मार डाला था। उनके उत्तराधिकारी यद्यपि अधिकतर पुराने परिवारों के ही वंशधर थे, तथापि इन परिवारों से उनका संबंध सीधा नहीं, दूर का ही होता था; इसलिए वे उतने ख़ानदानी न रहकर बिल्कुल एक नया ही समूह बन गये थे, जिसके संस्कार और जिसकी प्रवृत्तियां पूंजीवादी अधिक थीं और सामंती कम। वे धन के मूल्य को पूरी तरह समझते थे और उन्होंने फ़ौरन सैकड़ों छोटे-छोटे किसानों को बेदख़ल कर और उनकी जगह भेड़ें रखकर लगान बढ़ाना शुरू कर दिया। हेनरी अष्टम ने चर्च की ज़मीनों को लुटाने के साथ ही एकसाथ बहुत-से नये पूंजीवादी ज़मींदार पैदा किये। पूरी सत्रहवीं शताब्दी में अनगिनत जागीरों को ज़ब्त करने और उन्हें नये रईसों को या कल के रईसों को बख़्श देने का जो सिलसिला चलता रहा, उसका भी यही नतीजा हुआ। फलस्वरूप हेनरी सप्तम के समय से ही अंग्रेज़ "अभिजात वर्ग" ने औद्योगिक उत्पादन के विकास में बाधा डालना तो दूर, परोक्ष रूप से उससे फ़ायदा उठाने की कोशिश की; और बड़े-बड़े ज़मींदारों का सदा एक ऐसा भाग था, जो आर्थिक कारणों से या राजनीतिक कारणों से, महाजनी और औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के मुखियों के साथ सहयोग करने को प्रस्तुत था। इसलिए १६८६ का समझौता बहुत आसानी से सम्पन्न हो गया। "धन और मनसब" के रूप में राजनीतिक लाभ बड़े-बड़े सामंती परिवारों के लिए छोड़ दिये गये, बशर्ते कि महाजनी, औद्योगिक और व्यापारी मध्यवर्ग के आर्थिक हितों पर यथेष्ट ध्यान दिया जाता रहे। उस ज़माने में ये आर्थिक हित इतने शक्तिशाली थे कि वे राष्ट्र की सामान्य नीति को निश्चित करने में समर्थ थे। छोटी-मोटी बातों को लेकर चाहे जो झगड़े हों, लेकिन कुल मिलाकर अभिजात वर्ग का शासक गुट यह अच्छी तरह जानता था कि उसकी अपनी आर्थिक समृद्धि औद्योगिक तथा व्यापारिक मध्यवर्ग की समृद्धि से अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है।

उस ज़माने से पूंजीपति वर्ग इंगलैंड के शासक वर्गों का एक तुच्छ परन्तु माना हुआ भाग हो गया। राष्ट्र की विशाल मेहनतकश जनता को अंकुश में रखने में औरों के साथ उसका भी स्वार्थ था। व्यापारी या कारख़ानेदार ख़ुद अपने क्लर्कों,

मजदूरों और घरेलू नौकरों के मुक़ाबले में मालिक की, या जैसा अभी हाल तक कहा जाता था, जन्मतः श्रेष्ठ की हैसियत रखता था। उसका स्वार्थ इस बात में था कि वह उनसे ज़्यादा से ज़्यादा और अच्छा से अच्छा काम ले; इसके लिए उन्हें इस बात की शिक्षा देनी थी कि वे क़ायदे के साथ उसकी बात मानें और उसके कहने में रहें। वह स्वयं धार्मिक था; अपने धर्म के झंडे के नीचे ही उसने राजा और सामंतों से संघर्ष किया था, और उसे यह मालूम करते देर न लगी कि अपने से जन्मतः नीचे लोगों के विचारों को प्रभावित करने और ईश्वर ने अपनी मर्ज़ी से उन्हें जिन मालिकों के मातहत रखा था, इन लोगों को उनकी इच्छा के अधीन रखने का अवसर भी यही धर्म देता था। संक्षेप में, अंग्रेज पूंजीपति वर्ग को अब "नीची श्रेणियों" को, राष्ट्र की विशाल उत्पादक जनता को, दबाये रखने के काम में हिस्सा लेना था, और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो तरीक़े काम में लाये गये, उनमें एक धर्म का प्रभाव भी था।

एक और बात थी, जिसने पूंजीपति वर्ग की धार्मिक प्रवृत्तियों को मज़बूत करने में मदद दी – यह इंगलैंड में भौतिकवाद का उदय था। इस नये सिद्धान्त ने मध्यवर्ग की पवित्र भावनाओं को धक्का ही नहीं दिया, उसने एक ऐसे दर्शन के रूप में अपने को घोषित किया, जो विद्वानों और सांसारिक शिक्षाप्राप्त व्यक्तियों के लिए ही उपयुक्त था। और इसके विपरीत धर्म था, जो पूंजीपति वर्ग समेत अशिक्षित जनता के लिए काफ़ी अच्छा था। हॉब्स के साथ वह शाही विशेषाधिकारों और सर्वशक्तिमत्ता के रक्षक के रूप में मैदान में आया, और उसने निरंकुश राजतंत्र का इसके लिए आह्वान किया कि वह इस puer robustus sed malitiosus* यानी जनता को दबाये रखे। इसी तरह हॉब्स के अनुवर्ती – बोलिंगब्रोक, शैफ़्ट्सबरी, इत्यादि के दर्शन में भौतिकवाद का नवीन निर्गुणवादी रूप एक अभिजातीय और कुछ चुने हुए दीक्षित लोगों द्वारा ही उपलभ्य सिद्धान्त बना रहा, और इसलिए मध्यवर्ग ने उसे घृणा की दृष्टि से देखा – उसके धर्म-विरोधी विश्वासों के कारण, और पूंजीवाद विरोधी राजनीतिक संबंधों के कारण भी। इसीलिए प्रगतिशील मध्यवर्ग का मुख्य भाग अभी भी, अभिजात वर्ग के भौतिकवाद तथा निर्गुणवाद के विरोध में, प्रोटेस्टेंट मतवादी संप्रदायों का अनुगामी बना रहा। इन संप्रदायों के झंडे के नीचे स्टूअर्ट राजवंश के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी

* मोटे-तगड़े, मगर उद्दंड लड़के। – सं०

गयी, इन्हीं के आदमियों ने यह लड़ाई लड़ी, और आज भी ये इंगलैंड की "महान उदारवादी पार्टी" की रीढ़ बने हुए हैं।

इस बीच भौतिकवाद इंगलैंड से फ़्रांस पहुंचा, जहां वह दार्शनिकों के एक दूसरे भौतिकवादी मत – देकार्तवाद [85] की एक शाखा के साथ घुलमिल कर एक हो गया। फ़्रांस में भी वह पहले पहल केवल अभिजातीय मत ही बना रहा। परंतु शीघ्र ही उसकी क्रांतिकारी प्रकृति उभरकर सामने आयी। फ़्रांसीसी भौतिकवादियों ने अपनी आलोचना धार्मिक विश्वास की बातों तक ही सीमित नहीं रखी, उन्हें जितनी भी वैज्ञानिक परम्परायें या राजनीतिक संस्थायें मिलीं, सबको उन्होंने अपनी आलोचना की लपेट में ले लिया, और अपना यह दावा कि हमारा सिद्धान्त सर्वव्यापी है साबित करने के लिए उन्होंने सबसे सीधा रास्ता अख़्तियार किया, और अपने विराट ग्रंथ 'विश्वकोश' में उसे साहस के साथ ज्ञान के हर विषय पर लागू किया। इसी 'विश्वकोश' से उनका नाम विश्वकोशकार पड़ा। इस प्रकार स्पष्ट रूप से भौतिकवाद या निर्गुणवाद इन दो में से एक रूप में भौतिकवाद फ़्रांस के सभी शिक्षित युवकों का मत बन गया; इस हद तक कि जब महान क्रांति भड़की, तब जिस सिद्धान्त का अंग्रेज राजतंत्रवादियों ने पोषण किया था, उसने फ़्रांसीसी गणतंत्रवादियों और आतंकवादियों को एक सैद्धान्तिक पताका दी और 'मनुष्य के अधिकारों का घोषणापत्र' [86] के लिए शब्द प्रस्तुत किये।

फ़्रांस की महान क्रांति पूंजीपति वर्ग की तीसरी बग़ावत थी; लेकिन यह पहली बग़ावत थी, जिसने अपना मजहबी जामा उतार फेंका था और जो खुल्लमखुल्ला राजनीतिक ढंग से लड़ी गयी। और यह पहली लड़ाई थी, जो तब तक लड़ी गयी, जब तक कि दो लड़ाकू दलों में से एक, यानी अभिजात वर्ग, ख़त्म न हो गया, और दूसरा, यानी पूंजीपति वर्ग, पूर्णतः विजयी न हो गया। इंगलैंड में क्रांति के पूर्व और क्रांति के बाद की संस्थाओं के अविच्छिन्न क्रम और ज़मींदारों और पूंजीपतियों के समझौते ने न्यायिक नज़ीरों में और क़ानून के सामंती रूपों की आदरपूर्ण अक्षुण्णता में अभिव्यक्ति पायी। फ़्रांस में क्रांति का अर्थ था अतीत की परम्परा से सम्पूर्ण संबंधविच्छेद। उसने सामंतवाद के अवशेषों तक को मिटा दिया और Code civil [87] की शक्ल में प्राचीन रोमन क़ानून को – और यह रोमन क़ानून, जिस आर्थिक मंज़िल को मार्क्स ने "माल-उत्पादन" कहा है, उसके क़ानूनी सम्बन्धों की प्रायः सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है – आधुनिक पूंजीवादी सम्बन्धों के अनुरूप बड़ी होशियारी से एक नया संशोधित रूप दिया – इतनी होशियारी से कि आज भी फ़्रांस का यह क्रांतिकारी क़ानून इंगलैंड सहित

सभी देशों में मिल्कियत के क़ानून में सुधार के लिए एक नमूने का काम देता है। फिर भी हमें यह भूल नहीं जाना चाहिए कि अगर अंग्रेज़ी क़ानून अभी भी पूंजीवादी समाज के आर्थिक संबंधों को एक ऐसी बर्बर सामंती भाषा में व्यक्त करता है, जो व्यक्त वस्तु से उसी तरह मेल खाती है, जैसे अंग्रेज़ी हिज्जे अंग्रेज़ी उच्चारण से – किसी फ़्रांसीसी ने कहा है कि vous écrivez Londres et vous prononcez Constantinople* – तो यह अंग्रेज़ी क़ानून ही वह क़ानून है, जिसने प्राचीन जर्मनों के अधिकारों के श्रेष्ठ भाग को – व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्थानीय स्वायत्त शासन और अदालत के सिवाय बाक़ी हर तरह के हस्तक्षेप से निर्भयता और मुक्ति – युगों से सुरक्षित रखा है और उसे अमरीका तथा उपनिवेशों तक पहुंचाया है, जबकि निरंकुश राजतंत्र के युग में ये अधिकार शेष यूरोप में विलुप्त हो गये और अभी भी उनका कहीं भी पूरी तरह उद्धार नहीं हो पाया है।

हम फिर अपने ब्रिटिश पूंजीपति की बात लें। फ़्रांसीसी क्रांति ने उसे यूरोप के राजतंत्रों की सहायता से फ़्रांस के समुद्री व्यापार को नष्ट करने, फ़्रांसीसी उपनिवेशों को हथियाने और फ़्रांस की समुद्री प्रतिद्वन्द्विता के आख़िरी दावों को कुचल देने का बढ़िया मौक़ा दिया। क्रांति से उसके लोहा लेने का एक कारण यह था। दूसरा कारण यह था कि इस क्रांति का तौर-तरीक़ा उसकी फ़ितरत के बिल्कुल ख़िलाफ़ था। इस क्रान्ति का "घृणित" आतंकवाद ही नहीं, पूंजीवादी शासन को आख़िरी छोर तक ले जाने की कोशिश भी। ब्रिटिश पूंजीपति अपने अभिजात वर्ग के बिना करता क्या, जिसने तहज़ीब और क़ायदा उसे सिखाया था, उसके लिये नये-नये फ़ैशन निकाले थे और जो घर में अमन क़ायम रखनेवाली सेना और बाहर औपनिवेशिक देशों और नये बाज़ारों को सर करनेवाली नौसेना के लिए अफ़सर मुहैया करता था। निस्सन्देह पूंजीपति वर्ग का एक प्रगतिशील अल्पसंख्यक भाग भी था, जिसके हितों पर समझौते में उतना ध्यान नहीं दिया गया था और यह भाग, जिसमें अधिकतर मध्यवर्ग के कम धनी लोग थे, क्रांति से सहानुभूति रखता था, लेकिन पार्लमेंट में उसकी कोई ताक़त न थी।

इस प्रकार यदि भौतिकवाद फ़्रांसीसी क्रांति का दर्शन बन गया, तो धर्मभीरु अंग्रेज़ पूंजीपति वर्ग अपने धर्म के साथ और भी मज़बूती के साथ चिपक गया। पेरिस के आतंक-राज ने क्या यह सिद्ध नहीं कर दिया था कि जनता की धार्मिक

* आप लिखते हैं लंदन और बोलते हैं कुंस्तुनतुनिया। – सं०

प्रवृत्तियों के नष्ट हो जाने का परिणाम क्या होता है? जितना ही भौतिकवाद फ्रांस से पड़ोसी देशों में फैलता गया और जितना ही उसे समान सैद्धान्तिक धाराओं से, विशेष रूप से जर्मन दर्शन से, बल मिला और वस्तुतः शेष यूरोप में जितना ही भौतिकवाद तथा स्वतंत्र विचार एक सुसंस्कृत व्यक्ति के आवश्यक गुण बनते गये उतनी ही मजबूती के साथ ब्रिटिश मध्यवर्ग अपने धार्मिक मत-मतान्तरों के साथ चिपकता गया। ये मत एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं, परन्तु वे सब स्पष्ट रूप से धार्मिक, ईसाई मत ही थे।

जहां फ्रांस में क्रांति ने पूंजीपति वर्ग की राजनीतिक विजय निश्चित कर दी थी, वहीं इंगलैंड में वाट, आर्कराइट, कार्टराइट और दूसरों ने औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात किया था, जिसने आर्थिक शक्ति के गुरुत्व के केंद्र को पूरी तरह स्थानान्तरित कर दिया। अभिजात ज़मींदारों की अपेक्षा पूंजीपतियों का धन और वैभव बहुत तेज़ी से बढ़ा। स्वयं पूंजीपति वर्ग के अंदर कारख़ानेदारों ने वित्तीय महाप्रभुओं को, बैंकरों, वग़ैरह को अधिकाधिक पृष्ठभूमि में ढकेल दिया। १६८६ का समझौता, बावजूद इसके कि उसमें धीरे-धीरे पूंजीपति वर्ग के हित में परिवर्तन हुए थे, अब दोनों पक्षों की सापेक्ष स्थिति के अनुरूप न रहा। इन पक्षों का स्वरूप भी बदल गया था: १८३० का पूंजीपति वर्ग पिछली शताब्दी के पूंजीपति वर्ग से बहुत भिन्न था। अभी भी जो राजनीतिक शक्ति अभिजात वर्ग के हाथ में छोड़ दी गयी थी और जिसका उपयोग वे नये औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के दावों का विरोध करने में करते थे, अब उसका नये आर्थिक हितों से मेल न रह गया। अभिजात वर्ग के साथ एक नया संघर्ष आवश्यक हो गया और उसका अंत नयी आर्थिक शक्ति की विजय में ही हो सकता था। पहले तो १८३० की फ्रांसीसी क्रांति के आघात से, सारे प्रतिरोध के बावजूद, सुधार-क़ानून[88] को पास किया गया। इस क़ानून ने पार्लमेंट में पूंजीपति वर्ग को एक शक्तिशाली और सम्मानित स्थान प्रदान किया। इसके बाद अनाज क़ानूनों[89] को मंसूख़ किया गया और इसने भूमिधर अभिजात वर्ग पर पूंजीपति वर्ग का, विशेष रूप से उसके सबसे सक्रिय भाग, कारख़ानेदारों का, प्रभुत्व सदा के लिए स्थापित कर दिया। यह पूंजीपति वर्ग की सबसे बड़ी विजय थी, परन्तु एकमात्र अपने हित में प्राप्त की गयी उसकी अन्तिम विजय भी थी। बाद में उसने जो जीतें हासिल कीं, उनका उसे एक नयी सामाजिक शक्ति के साथ बांटकर उपभोग करना पड़ा, और यह नयी शक्ति पहले तो उसके साथ थी, पर बहुत जल्द उसकी प्रतिद्वन्द्वी बन गयी।

औद्योगिक क्रांति ने बड़े-बड़े कारख़ानेदार-पूंजीपतियों के एक वर्ग को जन्म दिया था, लेकिन उसने एक और वर्ग को, बहुत बड़े वर्ग को भी जन्म दिया था–यह वर्ग था कारख़ानों में काम करनेवाला मज़दूर वर्ग। जिस अनुपात में औद्योगिक क्रांति का औद्योगिक उत्पादन की एक शाखा के बाद दूसरी शाखा पर अधिकार होता गया, उसी अनुपात में यह वर्ग भी संख्या में बढ़ता गया, और इसी अनुपात में उसने अपनी ताक़त भी बढ़ायी। अपनी इस ताक़त का सबूत उसने १८२४ में ही दे दिया, जब उसने पार्लमेंट को ऐसे क़ानूनों को रद्द करने के लिए मजबूर किया, जिनके अनुसार मज़दूरों को अपना संगठन बनाने की मनाही थी।[90] सुधार-आंदोलन के काल में मज़दूरों ने सुधार-पार्टी के अंदर एक उग्र पक्ष क़ायम किया। १८३२ के ऐक्ट में उन्हें वोट देने के अधिकार से वंचित रखा गया था, इसलिए उन्होंने अपनी मांगों को पीपुल्स चार्टर[91] के रूप में रखा, और शक्तिशाली पूंजीवादी अनाज क़ानून विरोधी लीग[92] के मुक़ाबले में अपने को एक स्वतंत्र पार्टी, चार्टिस्ट पार्टी के रूप में संगठित किया। यह पार्टी आधुनिक युग में मज़दूरों की पहली पार्टी थी।

इसके बाद शेष यूरोप में फ़रवरी और मार्च १८४८ की क्रांतियां हुईं, जिनमें मज़दूरों ने इतना आगे बढ़कर हिस्सा लिया, और कम से कम पेरिस में ऐसी मांगें रखीं, जो पूंजीवादी समाज के दृष्टिकोण से निश्चय ही स्वीकार नहीं की जा सकती थीं। क्रांतियों के बाद चारों ओर ज़ोरदार प्रतिक्रिया हुई। पहले १० अप्रैल १८४८ को चार्टिस्टों की हार,[93] फिर उसी साल जून में पेरिस मज़दूर विद्रोह का कुचला जाना, और फिर इटली, हंगरी, दक्षिण जर्मनी में १८४९ की आफ़तें, और अंत में २ दिसंबर १८५१ को पेरिस पर लुई बोनापार्त की विजय।[94] कम से कम कुछ वक़्त के लिए मज़दूर वर्ग के दावों का हौवा दूर कर दिया गया, लेकिन इसके लिए कितनी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी! अगर अंग्रेज़ पूंजीपति ने आम जनता की धार्मिक भावना को क़ायम रखने की ज़रूरत पहले ही समझ ली थी, तो इन सारे अनुभवों के बाद उसने यह ज़रूरत और भी कितनी महसूस की होगी! अपने यूरोपीय भाई-बंदों की हिक़ारत-भरी हंसी की परवाह न कर वह लगातार साल दर साल निम्न श्रेणियों की धर्मशिक्षा पर हज़ारों-लाखों की राशि ख़र्च करता रहा। अपने देश के धार्मिक उपकरणों से ही सन्तुष्ट न रहकर उसने एक व्यापार के रूप में धर्म के सबसे बड़े संगठनकर्ता "भाई जोनाथन" से अपील की, अमरीका से रिवाइवलिज़्म का आयात किया, मूडी तथा सांकी जैसे लोगों को बुलाया,[95] और अंत में उसने "मुक्ति-फ़ौज"

की ख़तरनाक मदद को क़बूल किया; ख़तरनाक इसलिए कि यह सेना प्रारंभिक ईसाई धर्म के प्रचार में फिर से जान डालती है, ग़रीबों को ख़ुदा के बंदे कहकर पुकारती है, पूंजीवाद के विरुद्ध धार्मिक तरीक़ों से संघर्ष करती है और इस प्रकार वह प्रारंभिक ईसाई वर्ग-विरोध के एक तत्त्व का पोषण करती है, जो किसी भी दिन उन धनीमनी लोगों को परेशानी में डाल सकता है, जो आज उसके लिए नक़द रुपये देते हैं।

ऐतिहासिक विकास का यह एक नियम मालूम होता है कि पूंजीपति वर्ग किसी भी यूरोपीय देश में—कम से कम स्थायी काल के लिए—राजनीतिक सत्ता को उस प्रकार अकेले अपने अधिकार में नहीं रख सकता, जिस प्रकार मध्ययुग में सामंती अभिजात वर्ग ने रखा था। यहां तक कि फ़्रांस में भी, जहां सामंतवाद को बिल्कुल ख़त्म कर दिया गया, समूचा पूंजीपति वर्ग शासन पर अपना पूरा अधिकार थोड़े-थोड़े समय के लिए ही रख सका। १८३० से १८४८ तक लुई फ़िलिप के शासन-काल में पूंजीपति वर्ग के एक बहुत छोटे-से भाग ने राज्य पर शासन किया; वोट देने की शर्त इतनी ऊंची रखी गयी थी कि इस वर्ग का अधिकांश इस अधिकार से वंचित था। १८४८ से १८५१ तक, द्वितीय जनतंत्र के काल में समूचे पूंजीपति वर्ग ने हुकूमत ज़रूर की, लेकिन महज़ तीन साल के लिए। उसकी अयोग्यता के कारण द्वितीय साम्राज्य की स्थापना हुई। अब कहीं जाकर तीसरे जनतंत्र के युग में समूचे पूंजीपति वर्ग ने बीस साल से ज़्यादा शासन की बागडोर अपने हाथ में रखी है, पर उसके पतनोन्मुख होने के ज़ोरदार लक्षण अभी से देखने में आ रहे हैं।[96] पूंजीपति वर्ग का स्थायी शासन अमरीका जैसे देशों में ही संभव हुआ है, जहां सामंतवाद का नाम न था और समाज आरंभ से ही पूंजीवादी आधार पर चला। और फ़्रांस और अमरीका तक में पूंजीपति वर्ग के उत्तराधिकारी—मज़दूर—अभी से दरवाज़ा खटखटाने लगे हैं।

इंगलैंड में पूंजीपति वर्ग का एकाधिपत्य कभी नहीं रहा। १८३२ की विजय के बाद भी बड़ी-बड़ी सरकारी नौकरियां एक तरह से अकेले अभिजात वर्ग के अधिकार में ही रहीं। इस बात को धनी मध्यवर्ग ने चुपचाप कैसे सह लिया, यह मेरे लिए एक रहस्य ही बना रहा, और यह रहस्य तब खुला, जब बड़े उदारवादी कारख़ानेदार डब्ल्यू० ए० फ़ोर्स्टर ने एक सार्वजनिक सभा में बोलते हुए ब्रैडफ़ोर्ड के युवकों से अपील की कि वे संसार में सफलता प्राप्त करने के लिए फ़्रांसीसी भाषा सीखें। अपने अनुभव का हवाला देते हुए उन्होंने बताया कि जब मंत्रिमंडल के एक मंत्री की हैसियत से उन्हें एक ऐसे समाज में आना-जाना पड़ा,

जहां फ़्रांसीसी भाषा कम से कम उतनी ही आवश्यक थी, जितनी अंग्रेज़ी, तब कैसे उन्हें मुंह चुराना पड़ा और सबके सामने शर्मिंदा होना पड़ा! दरअसल बात यह है कि उस ज़माने का मध्यवर्ग निरपवाद रूप से एकदम अपढ़ तथा नवाब था, और उसके लिए सिवा इसके कोई चारा न था कि वह ऊपर की उन सरकारी नौकरियों को अभिजात वर्ग के लिए ही छोड़ दे, जहां तेज़ व्यापार-बुद्धि से बसी कोरी द्वीपीय संकीर्णता तथा द्वीपीय दंभ के बदले और ही गुणों की आवश्यकता थी।* आज भी अख़बारों में मध्यवर्गीय शिक्षा के बारे में जो कभी ख़त्म न होनेवाली बहस चल रही है, उससे यही ज़ाहिर होता है कि अभी भी अंग्रेज़ मध्यवर्ग अपने को श्रेष्ठतम शिक्षा के योग्य नहीं समझता, बल्कि अपेक्षाकृत साधारण शिक्षा की ही कामना करता है। इस तरह अनाज क़ानूनों के रद्द कर दिये जाने के बाद भी यह स्वाभाविक ही समझा गया कि काबडेनों, ब्राइटों,

---

*व्यापारिक मामलों में भी राष्ट्रीय-अंधराष्ट्रवादी दंभ कोई अच्छा परामर्शदाता नहीं है। अभी हाल तक औसत अंग्रेज़ कारख़ानेदार किसी अंग्रेज़ के लिए अपनी भाषा छोड़कर दूसरी भाषा बोलना अपमानजनक समझता था, और उसे इस बात पर गर्व ही अधिक होता था कि "ग़रीब" विदेशी इंगलैंड में आकर बस गये हैं और उन्होंने उसके माल को विदेशों में बेचने की झंझट और परेशानी से उसे बरी कर दिया है। उसने कभी इस बात पर ग़ौर नहीं किया कि इस तरह इन विदेशियों ने, अधिकांशत: जर्मनों ने, ब्रिटेन के विदेश व्यापार के, आयात तथा निर्यात के, एक बहुत बड़े हिस्से पर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया और विदेशों के साथ अंग्रेज़ों का सीधा व्यापार लगभग पूरी तरह से उपनिवेशों, चीन, संयुक्त राज्य अमरीका और दक्षिणी अमरीका तक ही सीमित रह गया। न ही उसने इस बात पर ग़ौर किया कि ये जर्मन दूसरे देशों के जर्मनों के साथ व्यापार करते थे, और उन्होंने धीरे-धीरे पूरी दुनिया में व्यापारिक बस्तियों का एक पूरा जाल बिछा दिया था। लेकिन जब, क़रीब चालीस साल पहले, जर्मनी ने पूरी संजीदगी के साथ निर्यात के लिए उत्पादन आरम्भ किया, अनाज निर्यात करनेवाले देश से उसे कुछ ही समय के भीतर अव्वल दर्जे के औद्योगिक देश में बदल देने में यह जाल ख़ूब काम आया। और तब, क़रीब दस साल पहले, अंग्रेज़ कारख़ानेदार घबराया और उसने अपने राजदूतों और वाणिज्य-दूतों से पूछा कि इसका क्या कारण है कि वह अपने ग्राहकों को अब और लगाये नहीं रख सकता। और उन्होंने एक स्वर से उत्तर दिया – (१) तुम अपने ग्राहक की भाषा नहीं सीखते, बल्कि यह आशा करते हो कि वह तुम्हारी भाषा सीखेगा; (२) तुम अपने ग्राहक की आवश्यकता, आदत और रुचि के अनुकूल होने की कोशिश तक नहीं करते, बल्कि यह आशा करते हो कि वह अपने को तुम्हारे अनुकूल बनायेगा।

फ़ोर्स्टरों, आदि जिन लोगों ने यह जीत हासिल की थी, वे देश के राजकीय शासन में भाग लेने से वंचित रहें, जब तक बीस साल बाद एक नये सुधार क़ानून[97] ने उनके लिए मंत्रिमण्डल का द्वार नहीं खोल दिया। ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग में अपनी सामाजिक हीनता की भावना आज तक इतनी गहरी जमी हुई है कि सभी राजकीय समारोहों में राष्ट्र का उचित प्रतिनिधित्व करने के लिए वे अपने और जनता के ख़र्च पर अकर्मण्य व्यक्तियों की एक सजावटी बिरादरी को पालते हैं, और जब उनमें से कोई इस विशिष्ट तथा विशेषाधिकारसम्पन्न समाज में, जिसका अन्ततः उन्होंने स्वयं ही निर्माण किया है, प्रवेश पाने के योग्य समझा जाता है, वह इसे अपना बड़ा भारी सम्मान समझता है।

इस तरह औद्योगिक तथा व्यापारी मध्यवर्ग अभी तक भूस्वामी अभिजात वर्ग को राजनीतिक सत्ता से वंचित करने में पूरे तौर पर सफल नहीं हो पाया था कि एक दूसरा प्रतिद्वंद्वी, मजदूर वर्ग, मैदान में आ उतरा। चार्टिस्ट आंदोलन तथा शेष यूरोप की क्रांतियों के बाद की प्रतिक्रिया, और साथ ही १८४८ और १८६६ के बीच ब्रिटिश व्यापार के अभूतपूर्व विस्तार ने (जिसका कारण आम तौर पर केवल मुक्त व्यापार बताया जाता है, लेकिन जो इससे कहीं ज़्यादा रेल, समुद्री जहाज़रानी और साधारणतः परिवहन के साधनों के शक्तिशाली विकास का फल था) मज़दूर वर्ग को फिर उदारवादी पार्टी के अधीन होने पर विवश किया था; चार्टिस्ट युग से पहले की तरह वह उस पार्टी का उग्र पक्ष बन गया था। वोट देने के अधिकार का मज़दूरों का दावा धीरे-धीरे अप्रतिरोध्य बन गया, और जहां उदारवादी पार्टी के ह्विग नेताओं ने मुंह चुराया, वहां डिसरायली ने टोरी दल को अनुकूल अवसर से लाभ उठाने और पार्लमेंट की सीटों के पुनर्वितरण के साथ नगरों में किरायेदारों का मताधिकार [household suffrage] लागू करने के लिये प्रेरित करके अपनी श्रेष्ठता को प्रदर्शित किया। इसके बाद गुप्त मतदान द्वारा चुनाव होना शुरू हुआ; और तब १८८४ में किरायेदारों का यह मताधिकार काउंटियों में भी लागू किया गया और सीटों का एक नये सिरे से बंटवारा किया गया, जिससे कि चुनाव-क्षेत्र कुछ हद तक एक दूसरे के बराबर हो गये। इन सब कार्रवाइयों से मज़दूर वर्ग की निर्वाचन-शक्ति बहुत बढ़ गयी, यहां तक कि आज कम से कम १५०—२०० चुनाव-क्षेत्रों में अधिकांश मतदाता इस वर्ग के ही हैं। लेकिन संसदीय सरकार परंपरा के प्रति आदर सिखानेवाला बहुत बड़ा स्कूल है; अगर मध्यवर्ग उन लोगों को, जिन्हें लार्ड जॉन मैनर्स मज़ाक़ में "हमारे पुराने सामंत" कहते थे, 'भय और आदर

की दृष्टि से देखता था, तो ग्राम मेहनतकश जनता "ग्रपने से बड़े" कहे जानेवाले लोगों को, यानी मध्यवर्ग को, ग्रादर ग्रौर सम्मान की दृष्टि से देखती थी। सचमुच ग्राज से पंद्रह साल पहले ग्रंग्रेज़ मज़दूर एक ग्रादर्श मज़दूर था; ग्रौर वह ग्रपने मालिक का इतना ख़याल ग्रौर इतनी इज़्ज़त करता था ग्रौर ग्रपने हक़ों को मांगने में इतना संकोचशील ग्रौर विनयशील था कि उसे देखकर ग्रपने देश के मज़दूरों की लाइलाज कम्युनिस्ट ग्रौर क्रांतिकारी प्रवृत्तियों से विक्षुब्ध Katheder-Socialist [98] मत के हमारे जर्मन ग्रर्थशास्त्रियों को बेहद तसल्ली मिलती थी।

परन्तु यह व्यवहार-कुशल ग्रंग्रेज़ मध्यवर्ग जर्मन प्रोफ़ेसरों से ज़्यादा दूर तक देखता था। उसने ग्रपनी शक्ति को मज़दूर वर्ग के साथ बांटकर उपभोग किया था ग्रवश्य, पर ग्रत्यंत ग्रनिच्छा से। उसने चार्टिस्ट ज़माने में यह देख लिया था कि यह puer robustus sed malitiosus, यानी जनता, क्या कर सकती है। ग्रौर तब से उसे विवश होकर पीपुल्स चार्टर के एक बड़े ग्रंश को ब्रिटेन के क़ानून का ग्रंग बनाना पड़ा था। ग्रगर कभी जनता को नैतिक साधनों से वश में रखना था, तो ग्रब, ग्रौर जनता को प्रभावित करने का सर्वोत्तम नैतिक साधन धर्म ही था, ग्रौर ग्रब भी है। इसीलिए स्कूलों की प्रबंध-समितियों में पादरियों का बहुमत है ग्रौर इसीलिए यह पूंजीपति वर्ग रिचुग्रलिज़्म [99] से लेकर "मुक्ति-फ़ौज" तक ग्रनेक प्रकार के रिवाइवलिज़्म को प्रश्रय देने के लिए ग्रपने ग्राप पर ग्रधिकाधिक कर लगाता है।

ग्रौर ग्रब ब्रिटिश भद्रता द्वारा शेष यूरोप के पूंजीपतियों के स्वतंत्र विचार तथा धार्मिक शिथिलता पर विजय पाये जाने की घड़ी ग्रायी। फ़्रांस ग्रौर जर्मनी के मज़दूर विद्रोही हो गये थे। उन्हें समाजवाद का रोग बुरी तरह लग गया था। ऊपर उठने के लिए इस्तेमाल किया जानेवाला तरीक़ा क़ानूनी है कि ग़ैरक़ानूनी, इसकी उन्हें पर्याप्त कारणों से ख़ास फ़िक्र न रह गयी थी। यह puer robustus दिन-ब-दिन ज़्यादा malitiosus होता जा रहा था। फ़्रांसीसी ग्रौर जर्मन पूंजीपतियों के लिए ग्राख़िरी चारा यही रह गया कि वे चुपके से ग्रपने स्वतंत्र विचारों को छोड़ दें – उस लड़के की भांति, जो बड़ी शान से सिगार पीता हुग्रा जहाज़ पर ग्राये, ग्रौर जब जहाज़ के हचकोले खाने से मिचली ग्राने लगे तो चुपके से जलते हुए सिगार को समुद्र में फेंक दे। जो लोग पहले धर्म का मज़ाक़ उड़ाते थे, ग्रब वे एक एक कर ग्रपने बाह्य ग्राचरण में धर्म-परायण बनने लगे, चर्च के बारे में, चर्च के जड़ विश्वासों तथा ग्राचार-विचार के बारे में

श्रद्धापूर्ण बातें करने लगे और जहां तक अनिवार्य था, उनके अनुकूल आचरण भी करने लगे। फ़्रांसीसी पूंजीपति शुक्रवार को निरामिष आहार करते, और जर्मन पूंजीपति रविवार को चर्च की बेंचों पर बैठकर लंबे-लंबे प्रोटेस्टेंट उपदेश सुनते। भौतिकवाद ने उन्हें मुसीबत में डाल दिया था। "Die Religion muss dem Volk erhalten werden" – "जनता के लिए धर्म को जीवित रखा जाना चाहिए" – समाज को सम्पूर्ण विनाश से बचाने का यह एकमात्र और अन्तिम उपाय था। उनका यह दुर्भाग्य था कि उन्होंने इस बात को तभी समझा, जब उन्होंने धर्म को हमेशा के लिये ख़त्म कर देने के लिए भरसक सब कुछ कर डाला था। अब अंग्रेज़ी पूंजीपति की बारी थी कि वह हिक़ारत से हंसकर कहे, "बेवक़ूफ़ो, तुमने अब समझा है! मैं तुम्हें यह बात आज से दो सौ साल पहले ही बता सकता था!"

फिर भी मुझे भय है कि न तो अंग्रेज़ की धार्मिक जड़ता, और न ही शेष यूरोपीय पूंजीपति वर्ग का post festum* मत-परिवर्तन सर्वहारा वर्ग के उठते हुए ज्वार को रोक सकेगा। परम्परा एक ज़बरदस्त बाधक शक्ति है, इतिहास की जड़ शक्ति है, परन्तु केवल निष्क्रिय होने के कारण उसका टूटना अवश्यंभावी है, और इसलिए धर्म स्थायी रूप से पूंजीवादी समाज की ढाल नहीं हो सकता। यदि क़ानून, दर्शन और धर्म-सम्बन्धी हमारे विचार किसी समाज में प्रचलित आर्थिक सम्बन्धों की न्यूनाधिक दूरवर्ती संतान हैं, तो अन्ततः ऐसे विचार इन संबंधों में संपूर्ण परिवर्तन के प्रभाव से बच नहीं सकते। और यदि हम दिव्य ज्ञान में विश्वास नहीं करते, तो हमें मानना होगा कि कोई भी धार्मिक सिद्धान्त किसी ढहते हुए समाज को टेक देकर गिरने से रोकने में नाकाफ़ी रहेगा।

और दरअसल इंगलैंड में भी मेहनतकश जनता ने फिर बढ़ना शुरू कर दिया है। इसमें सन्देह नहीं कि वह तरह-तरह की परम्पराओं से जकड़ी हुई है। पूंजीवादी परम्परायें, जैसे यह पूर्वाग्रह कि इंगलैंड में दो ही पार्टियां संभव हैं – कंज़रवेटिव पार्टी और उदारवादी पार्टी, कि मज़दूर वर्ग महान उदारवादी पार्टी के द्वारा ही अपनी मुक्ति प्राप्त कर सकता है। स्वतंत्र रूप से कार्य करने की पहली हिचकिचाती हुई कोशिशों से मिली हुई मज़दूरों की परम्परायें, जैसे कि बहुत-सी पुरानी ट्रेड-यूनियनों से उन मज़दूरों को बाहर रखना, जो बाक़ायदा शागिर्द न रह चुके हों, जिसका मतलब है ऐसी हर ट्रेड-यूनियन द्वारा हड़ताल-तोड़कों

---

* महफ़िल बिखर जाने के बाद। – सं०

का पोषण। लेकिन इस सबके बावजूद, जैसा प्रोफ़ेसर ब्रेंटानो तक को बड़े अफ़सोस के साथ अपने Katheder-Socialist भाइयों से कहना पड़ा है, अंग्रेज़ मज़दूर वर्ग आगे बढ़ रहा है। वह आगे बढ़ता है तो आहिस्ता, इंगलैंड में जैसे हर चीज़ आगे बढ़ती है, संभले हुए क़दम उठाता हुआ, कभी हिचकिचाता हुआ, तो कभी न्यूनाधिक असफल और प्रयोगमूलक प्रयत्न करता हुआ; कभी वह आगे बढ़ता है, तो समाजवाद के नाम से ही शक खाता हुआ, बहुत सावधानी के साथ, जबकि वह समाजवाद के सार को धीरे-धीरे आत्मसात् करता रहता है। और यह आंदोलन बढ़ता है और फैलता है और मज़दूरों की एक परत के बाद दूसरी परत पर दख़ल करता है। इसने अब लंदन के ईस्ट-एण्ड* के अनिपुण मज़दूरों को झकझोरकर नींद से उठा दिया है, और हम सब जानते हैं कि बदले में इन नई शक्तियों ने इस आंदोलन को कितनी प्रबल प्रेरणा दी है। और अगर इस आंदोलन की रफ़्तार इतनी नहीं है, जितनी कुछ लोगों में बेसब्री है, तो उन्हें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि मज़दूर वर्ग ने ही अंग्रेज़ चरित्र के सर्वश्रेष्ठ गुणों को जीवित रखा है, और इंगलैंड में जब एक क़दम उठा लिया जाता है, तो फिर साधारणतः वह क़दम पीछे नहीं हटता। अगर उपरोक्त कारणों से, पुराने चार्टिस्टों के बेटे पूरे खरे नहीं उतरे, तो क्या हुआ, आसार इसी बात के हैं कि उनके पोते अपने पूर्वजों के योग्य निकलेंगे।

लेकिन यूरोपीय मज़दूर वर्ग की विजय इंगलैंड पर ही निर्भर नहीं है। वह कम से कम इंगलैंड, फ़्रांस और जर्मनी के सहयोग से ही प्राप्त की जा सकती है।[100] फ़्रांस और जर्मनी, दोनों में, मज़दूर आंदोलन इंगलैंड से काफ़ी आगे बढ़ा हुआ है। यही नहीं जर्मनी में उसकी सफलता सन्निकट है। पिछले पचीस वर्षों में उसने वहां जो प्रगति की है, वह सचमुच अभूतपूर्व है। और वह तीव्र से तीव्रतर गति से आगे बढ़ रहा है। यदि जर्मन मध्यवर्ग में राजनीतिक योग्यता, अनुशासन, साहस, शक्ति, लगन, आदि गुणों का शोचनीय अभाव देखने में आया है, तो जर्मन मज़दूर वर्ग ने इन सभी गुणों का प्रचुर प्रमाण दिया है। चार सौ वर्ष पहले यूरोपीय मध्यवर्ग के पहले विद्रोह की शुरूआत जर्मनी में हुई;

---

*ईस्ट-एण्ड – लंदन का पूर्वी भाग, जहां मज़दूर लोग रहते हैं। –**सं०**

आज जो स्थिति है, उसे देखते हुए, क्या यह बात संभावना के परे है कि जर्मनी ही यूरोपीय सर्वहारा की पहली महान विजय की रंगभूमि होगा?

फ़्रेडरिक एंगेल्स

२० अप्रैल १८९२

Frederick Engels, «*Socialism: Utopian and Scientific*». London, 1892 पुस्तक और लेखक द्वारा जर्मन में संक्षिप्त अनुवाद «*Die Neue Zeit*» पत्रिका में १८९२–१८९३ में प्रकाशित हुआ।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक

१

आधुनिक समाजवाद सारतः दो बातों की मान्यता का प्रत्यक्ष फल है – एक ओर आज के समाज में सम्पत्तिवानों और सम्पत्तिहीनों, पूंजीपतियों और उजरती मजदूरों के वर्ग-विरोध का, और दूसरी ओर उत्पादन में फैली हुई अराजकता का। परंतु अपने सैद्धान्तिक रूप में आधुनिक समाजवाद मूलतः अठारहवीं शताब्दी के महान फ़्रांसीसी दार्शनिकों द्वारा स्थापित सिद्धान्तों का प्रकटतः एक अधिक युक्तिसंगत विस्तार मालूम पड़ता है। हर नये सिद्धान्त की तरह आधुनिक समाजवाद को भी आरंभ में उपलब्ध विचार-सामग्री के साथ अपना संबंध जोड़ना पड़ा, भौतिक-आर्थिक परिस्थितियों में उसकी जड़ें चाहे कितनी भी गहरी क्यों न हों।

फ़्रांस के वे महापुरुष, जिन्होंने आनेवाली क्रान्ति के लिये लोक-मानस को तैयार किया था, स्वयं उग्र क्रान्तिकारी थे। वे किसी भी बाह्य प्रमाण को स्वीकार नहीं करते थे। धर्म, प्रकृति-विज्ञान, समाज, राजनीतिक संस्थायें – हर चीज़ की अत्यंत निर्मम आलोचना की गयी; हर चीज़ को विवेक-बुद्धि के न्याय-सिंहासन के सम्मुख अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करना था, अन्यथा अपने अस्तित्व का अधिकार खो देना था। मानव विवेक हर वस्तु का एकमात्र माप बन गया। यह वह समय था, जब हेगेल के शब्दों में दुनिया सिर के बल खड़ी थी,* पहले

---

* फ़्रांसीसी क्रान्ति से संबंध रखनेवाला अंश यह है: "विधि के विचार ने, उसकी धारणा ने तुरन्त अपना प्रभाव प्रकट किया, और अन्याय का पुराना ढांचा उसके सामने टिक न सका। इसलिये अब विधि की इस धारणा के अनुसार एक संविधान की स्थापना हो गयी है और अब से हर चीज़ को इसी पर आधारित होना होगा। जब से सूरज आकाश में है, और ग्रह उसकी परिक्रमा कर रहे

तो इस अर्थ में कि मानव-मस्तिष्क और उसके चिन्तन द्वारा प्राप्त सिद्धान्त ही मनुष्य के सारे क्रियाकलाप और सम्बन्धों का आधार होने का दावा करते थे, परंतु धीरे-धीरे इस व्यापकतर अर्थ में भी कि जो वास्तविकता इन सिद्धांतों के उलटे पड़ती थी, उसे सचमुच उलट-पलट दिया जाना था। तब विद्यमान समाज और शासन-सत्ता के हर रूप को, हर पुरानी परम्परागत धारणा को अयुक्तियुक्त कहकर कूड़ेख़ाने में डाल दिया गया; संसार ने अभी तक अपने को केवल पूर्वाग्रहों के सहारे चलने दिया था; अतीत में हर वस्तु केवल सहानुभूति और तिरस्कार का पात्र थी। अब पहली बार तर्क-बुद्धि के राज्य का, एक नये प्रभात का उदय हुआ, अंधविश्वास, अन्याय, विशेषाधिकार, अत्याचार को अब से मिट जाना था और उनके स्थान पर शाश्वत सत्य, शाश्वत औचित्य, प्रकृति-सम्मत समानता और मानव के अहरणीय अधिकारों की प्रतिष्ठा होनी थी।

आज हम जानते हैं कि तर्क-बुद्धि का यह राज्य पूंजीपतियों का तथाकथित आदर्शीकृत राज्य भर था; इस शाश्वत औचित्य की परिणति पूंजीवादी न्याय में हुई; यह समानता क़ानून की दृष्टि में पूंजीवादी समानता में बदल गयी। पूंजीवादी स्वामित्व मनुष्य का एक मौलिक अधिकार घोषित किया गया, और तर्क-बुद्धि के राज्य – रूसो के सामाजिक समझौते – की स्थापना पूंजीवादी जनवादी गणतंत्र के रूप में हुई, और इसी रूप में हो भी सकता था। अपने पूर्ववर्ती विचारकों की तरह अठारहवीं शताब्दी के महान विचारक भी अपने युग की सीमाओं का उल्लंघन नहीं कर सकते थे।

हैं, तब से आज तक ऐसा दृश्य कभी देखने में नहीं आया कि मनुष्य सिर के बल – यानी विचार के बल – खड़ा हो, और इसके अनुरूप ही वास्तविकता का निर्माण कर रहा हो। अनाक्सागोरस ने ही सबसे पहले कहा था कि संसार में Nûs – तर्क-बुद्धि – का ही राज है; लेकिन अब मनुष्य ने यह पहली बार समझा है कि मानसिक जगत पर विचार का शासन होना चाहिए। यह एक **गौरवपूर्ण प्रभात था। हर चिन्तनशील प्राणी ने इस पवित्र दिन को मनाने में भाग लिया है। एक उच्च भावना** उस समय लोगों के मन को आंदोलित कर रही थी, **मनुष्य की तर्क-बुद्धि का उत्साह सारे संसार भर में फैल गया,** मानो ईश्वरीय नियम और पार्थिव जगत दोनों का अब संयोग हो गया हो।" (हेगेल, 'इतिहास का दर्शन', १८४०, पृ० ५३५।) क्या अब समय नहीं आ गया है कि स्वर्गीय प्रोफ़ेसर हेगेल की इस आम तौर से ख़तरनाक और विध्वंस-मूलक शिक्षा के विरुद्ध समाजवादी-विरोधी क़ानून लागू किया जाये?

लेकिन सामंती अभिजात वर्ग और पूंजीपति वर्ग के – जो समाज के शेष भाग का प्रतिनिधि होने का दावा करता था – विरोध के साथ-साथ, शोषकों और शोषितों, निठल्ले अमीरों और ग़रीब मेहनतकशों का सामान्य विरोध भी था। यही वह परिस्थिति थी, जिसके कारण पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों के लिये अपने को एक विशेष वर्ग के ही नहीं, समस्त पीड़ित मानवजाति के प्रतिनिधि के रूप में पेश करना संभव हो सका। इतना ही नहीं। पूंजीपति वर्ग अपने जन्म काल से ही अपने प्रतिपक्ष से आक्रांत था – उजरती मजदूरों के बिना पूंजीपतियों का अस्तित्व नहीं हो सकता, और जिस अनुपात में मध्ययुग के शिल्प-संघों के मालिक आधुनिक युग के पूंजीपति बन गये, उसी अनुपात में शिल्प-संघों के कारीगर-मज़दूर और इन संघों से बाहर काम करनेवाले दैनिक मजदूर सर्वहारा बन गये। और यद्यपि, कुल मिलाकर, यह सही है कि **सामंतों के ख़िलाफ़ अपने संघर्ष में** पूंजीपति वर्ग अपने हितों के साथ ही उस युग के विभिन्न मेहनतकश वर्गों के हितों का भी प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकता था, तो भी हर महान पूंजीवादी आंदोलन में एक ऐसे वर्ग के स्वतंत्र विस्फोट भी हुए, जो न्यूनाधिक विकसित रूप में आधुनिक सर्वहारा वर्ग का पूर्वज था। उदाहरण के तौर पर जर्मनी के धर्म-सुधार और किसान-युद्ध के समय अनैबैप्टिस्ट[101] और टामस मुंज़र का आन्दोलन; महान अंग्रेज क्रांति के समय लेवेलर्स[102] तथा फ़्रांस की महान क्रांति के समय बाब्योफ़ का आंदोलन।

इस अभी तक अविकसित वर्ग के क्रान्तिकारी विद्रोहों के अनुरूप सैद्धान्तिक प्रस्थापनायें पेश की गयीं; १६ वीं और १७ वीं शताब्दियों में आदर्श सामाजिक परिस्थितियों के काल्पनिक चित्र खींचे गये[103] और १८ वीं सदी में तो सचमुच कम्युनिस्ट सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया (मोरेली और मैब्ली के सिद्धान्त)। समानता की मांग राजनीतिक अधिकारों तक ही सीमित न रही, व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियों में भी समानता स्थापित करने की मांग की गयी। वर्ग-विशेषाधिकारों को ही नहीं, ख़ुद वर्ग-भेद को मिटा देना था। इस नयी शिक्षा ने सबसे पहले एक ऐसे कम्युनिज़्म का रूप धारण किया, जो कठोर, त्यागपूर्ण जीवन के आदर्श में विश्वास करता था और सांसारिक सुखों को त्याज्य समझता था। इसके बाद काल्पनिक समाजवाद के तीन महान प्रवर्त्तक आये – सेंत-साइमन, जिनके लिये अभी तक सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन के साथ-साथ मध्यवर्ग के आन्दोलन का भी कुछ महत्त्व था, फ़ुरिये और ओवेन, जिन्होंने उस देश में, जहां पूंजीवादी उत्पादन का सबसे अधिक विकास हो चुका था, इस विकास से उत्पन्न वर्ग-

विरोधों से प्रभावित होकर वर्ग-भेद को मिटाने की अपनी योजनाओं को व्यवस्थित रूप से और उन्हें सीधे-सीधे फ़्रांसीसी भौतिकवाद के साथ जोड़ते हुए तैयार किया।

तीनों में एक समानता थी। ऐतिहासिक विकास ने इस बीच जिस सर्वहारा वर्ग को जन्म दिया था, इनमें से कोई भी उसके हितों के प्रतिनिधि के रूप में सामने नहीं आता। फ़्रांसीसी दार्शनिकों की ही तरह वे शुरू से ही किसी वर्ग विशेष को नहीं, बल्कि एकसाथ समूची मानवजाति को ही स्वतंत्र करने का दावा करते थे। उन्हीं की तरह वे तर्क-बुद्धि तथा शाश्वत न्याय का राज्य स्थापित करना चाहते थे, पर इस राज्य की उनकी धारणा और फ़्रांसीसी दार्शनिकों की धारणा में आकाश-पाताल का अंतर था।

कारण, हमारे इन तीन समाज-सुधारकों की दृष्टि में इन फ़्रांसीसी दार्शनिकों के सिद्धान्तों पर आधारित यह पूंजीवादी जगत भी उतना ही असंगत और अन्यायपूर्ण है, जितना सामंतवाद और समाज की सभी पुरानी व्यवस्थायें रही हैं, और इसलिये उन्हीं की तरह उसकी जगह भी कूड़ेख़ाने में ही है। यदि अभी तक संसार में विशुद्ध तर्क-बुद्धि और न्याय का शासन स्थापित नहीं हो सका, तो इसका कारण यही है कि लोगों ने इसे ठीक से समझा नहीं। आवश्यकता एक महान प्रतिभावान व्यक्ति की थी, जो अब उत्पन्न हो गया है और जिसने सत्य को परख लिया है। परंतु उसका उत्पन्न होना और सत्य का स्पष्ट रूप से परखा जाना एक अनिवार्य घटना न थी, ऐतिहासिक विकास की शृंखला की एक आवश्यक कड़ी न थी, बल्कि एक सुखद संयोग था। वह पांच सौ वर्ष पहले भी उत्पन्न हो सकता था, और अगर ऐसा हुआ होता, तो मानवजाति पांच सौ वर्षों की भूलों, परेशानियों और झगड़ों से बच जाती।

हम देख चुके हैं कि किस तरह क्रान्ति के अग्रदूत, अठारहवीं शताब्दी के फ़्रांसीसी दार्शनिकों ने तर्क-बुद्धि को हर वस्तु की एकमात्र कसौटी मानकर सदा उसका आश्रय लिया। उनके अनुसार एक विवेकपूर्ण राज्य और एक विवेकपूर्ण समाज की स्थापना आवश्यक थी और जो वस्तु इस शाश्वत तर्क-बुद्धि से मेल न खाये, उसे निर्मम भाव से नष्ट कर देना था। हम यह भी देख चुके हैं कि यह शाश्वत तर्क-बुद्धि वस्तुतः पूंजीपति में परिवर्तित हो रहे अठारहवीं सदी के नागरिक की समझ का आदर्शीकृत रूप के सिवा और कुछ न था। विवेकपूर्ण समाज और शासन की यह धारणा फ़्रांसीसी क्रान्ति के रूप में साकार हुई।

परन्तु यह नयी व्यवस्था, पुरानी अवस्थाओं की अपेक्षा अधिक विवेकपूर्ण होते हुए भी, सर्वथा विवेकपूर्ण न निकली। जिस राज्य को तर्क-बुद्धि के आधार

पर क़ायम किया गया था, वह बिल्कुल ढह गया। रूसो के "सामाजिक समझौते" की परिणति आतंक राज्य[104] में हुई और पूंजीपति वर्ग ने, जिसे अपनी राजनीतिक योग्यता में विश्वास नहीं रह गया था, इस आतंक से बचने के लिये पहले तो डाइरेक्टरेट[105] के भ्रष्टाचार का सहारा लिया, और फिर नेपोलियन की स्वेच्छाचारिता की शरण ली। प्रतिश्रुत शाश्वत शान्ति प्रभुता और अधिकार के लिये निरंतर युद्ध में बदल गयी। उनकी तर्क-बुद्धि पर आधारित समाज की भी यही हालत हुई। अमीर और ग़रीब का विरोध सबकी समृद्धि में विलीन होने के बजाय शिल्प-संघों के तथा अन्य प्रकार के विशेषाधिकारों के, जिन्होंने इस विरोध को कुछ हद तक हलका किया था, नष्ट हो जाने से और गिरजों की दान-संस्थाओं के भंग हो जाने से और भी उग्र हो गया। सामंती बंधनों से "सम्पत्ति की स्वतंत्रता" अब वस्तुतः प्राप्त हो गयी थी, लेकिन छोटे पूंजीपतियों और लघु भूस्वामियों के लिये, जो बड़े-बड़े पूंजीपतियों और ज़मींदारों की ज़बरदस्त होड़ से दबे हुए थे, यह स्वतंत्रता इन महाप्रभुओं के हाथ अपनी लघु सम्पत्ति बेच देने की स्वतंत्रता ही सिद्ध हुई और इस प्रकार जहां तक छोटे पूंजीपतियों और लघु भूस्वामियों का संबंध था, सम्पत्ति की स्वतंत्रता "सम्पत्ति से **वंचित होने** की स्वतंत्रता" बन गयी। पूंजीवादी आधार पर उद्योग के विकास ने मेहनतकश जनता की ग़रीबी और मुसीबत को समाज के अस्तित्व की एक शर्त बना दिया। कार्लाइल के शब्दों में आदमी और आदमी का एकमात्र संबंध नक़द लेन-देन ही रह गया। अपराधों की संख्या साल-ब-साल बढ़ने लगी। पहले सामंती बुराइयां दिन-दहाड़े नंगा नाच करती थीं, अब वे दूर तो नहीं हुईं, लेकिन कम से कम पृष्ठभूमि में ज़रूर चली गयीं। उनकी जगह पूंजीवादी बुराइयां, जो अभी तक चुपके-चुपके होती रहती थीं, दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगीं। व्यापार अधिकाधिक धोखा और फ़रेब बनता गया। "बंधुत्व" का क्रान्तिकारी आदर्श-वाक्य[106] होड़ के छल-कपट और ईर्ष्याद्वेष के रूप में फलीभूत हुआ। ज़ोर-ज़बरदस्ती द्वारा दमन की जगह भ्रष्टाचार ने ले ली, खड्ग की जगह स्वर्ण समाज का प्रथम उत्तोलक बन गया। पहली रात बिताने का अधिकार सामंती प्रभुओं के हाथ से निकलकर पूंजीवादी कारख़ानेदारों के हाथ में आ गया। वेश्यावृत्ति अश्रुतपूर्व रूप से बढ़ गयी। विवाह पहले ही की तरह वेश्यावृत्ति को ढंक रखने का क़ानून द्वारा स्वीकृत आवरण बना रहा, और साथ ही साथ व्यभिचार भी धड़ल्ले से चलता रहा।

संक्षेप में दार्शनिकों ने जो सुंदर आशायें बंधायी थीं, उनकी तुलना में "तर्क-

बुद्धि की विजय" द्वारा उत्पन्न सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थायें घोर निराशाजनक थीं और इन आशाओं का मखौल भर थीं। कमी केवल उन लोगों की थी, जो इस निराशा को वाणी दे सकें। अठारहवीं शताब्दी का अंत होते-होते ऐसे लोग भी आ गये। १८०२ में सेंत-साइमन के 'जेनेवा के पत्र' प्रकाशित हुए; १८०८ में फ़ुरिये की पहली पुस्तक निकली, यद्यपि उसके सिद्धान्त का ढांचा १७९९ में ही तैयार हो गया था; १ जनवरी १८०० को रॉबर्ट ओवेन ने न्यू-लेनार्क[107] का संचालन अपने हाथ में लिया।

लेकिन उन दिनों पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके साथ पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग का विरोध अत्यंत अविकसित अवस्था में था। आधुनिक उद्योग का आरंभ इंगलैंड में तो अभी-अभी हो चुका था, परंतु फ़्रांस में अब भी उसका कहीं पता न था। परन्तु आधुनिक उद्योग ही एक ओर तो उन विरोधों को विकसित करता है, जिनके कारण उत्पादन-प्रणाली में क्रान्ति और उसके पूंजीवादी स्वरूप का अंत नितान्त आवश्यक हो जाता है—और यह विरोध उन वर्गों का ही विरोध नहीं है, जिन्हें आधुनिक उद्योग ने जन्म दिया है, बल्कि स्वयं उत्पादक शक्तियों और विनिमय-पद्धतियों का विरोध है; और दूसरी ओर, वह इन्हीं विराट उत्पादक शक्तियों के रूप में इन विरोधों का अंत करने के साधन भी विकसित करता है। इसलिए अगर १८०० के आसपास नयी सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न होनेवाले विरोध आकार ग्रहण ही कर रहे थे, तो यह बात उनका अंत करनेवाले साधनों के विषय में और भी ज़्यादा लागू होती थी। आतंक राज्य के दिनों में पेरिस के सर्वस्वहीन जनसाधारण थोड़े समय के लिये समाज पर हावी हो गये थे, और इस तरह उनके नेतृत्व में स्वयं पूंजीपति वर्ग की इच्छा के खिलाफ़ पूंजीवादी क्रांति विजयी हुई थी। परंतु ऐसा करके उन्होंने यही सिद्ध किया कि उन अवस्थाओं में उनके प्रभुत्व का स्थायी हो सकना कितना असंभव था। इसी सर्वस्वहीन जनसाधारण से सर्वहारा वर्ग का एक नये वर्ग के बीज-केन्द्र के रूप में पहली बार विकास हुआ। अभी यह वर्ग स्वतंत्र राजनीतिक क्रिया के सर्वथा अयोग्य था। वह एक ऐसी पिसी हुई और सतायी गयी श्रेणी के रूप में सामने आया, जो अपनी सहायता आप करने में असमर्थ थी, और उसे सहायता अगर पहुंच सकती थी, तो बाहर से, या ऊपर से ही।

समाजवाद के प्रवर्त्तकों पर भी यह ऐतिहासिक परिस्थिति हावी थी। पूंजीवादी उत्पादन की तथा वर्ग-संबंधों की अपरिपक्व अवस्था के अनुरूप ही अपरिपक्व सिद्धांत निकले। सामाजिक समस्याओं का जो समाधान अभी तक अविकसित

आर्थिक अवस्थाओं के गर्भ में छिपा हुआ था, उसे इन कल्पनावादियों ने मानव-मस्तिष्क में से ढूंढ़ निकालने की कोशिश की। समाज में अन्याय था, मनुष्य की तर्क-बुद्धि का यह काम था कि उसे दूर करे। यह आवश्यक था कि एक नयी और अधिक निर्दोष समाज-व्यवस्था का आविष्कार किया जाये और उसे बाहर से, प्रचार द्वारा, या जहां संभव हो, आदर्श प्रयोगों के उदाहरण द्वारा समाज के ऊपर लाद दिया जाये। इन नयी समाज-व्यवस्थाओं का काल्पनिक और अवास्तविक होना पहले से निश्चित था और जितने विस्तृत रूप से उनकी योजनायें बनायी गयीं, उतनी ही वे निरी हवाई होकर रह गयीं।

इन तथ्यों के एक बार निश्चित हो जाने के बाद हमारे लिए प्रश्न के इस पक्ष पर और ध्यान देना आवश्यक नहीं है, क्योंकि अब वह बिल्कुल अतीत की बात है। हम साहित्य-जगत के छुटभैयों के लिए यह काम छोड़ सकते हैं कि वे इन हवाई बातों को लेकर, जिनके ऊपर आज हमें हंसी ही आती है, उधेड़-बुन करें, बड़ी संजीदगी के साथ बाल की खाल निकालें और कल्पनावादियों की इस "विक्षिप्त कल्पना" की तुलना में अपने दो-टूक तर्क की श्रेष्ठता का राग अलापें। जहां तक हमारा संबंध है, हमें उन महान विचारों और विचारों के अंकुरों का दर्शन कर असीम आनंद होता है, जो हर जगह अपने काल्पनिक आवरण से बाहर झांकते दिखाई देते हैं, और जिन्हें ये कूपमंडूक नहीं देख पाते।

सेंत-साइमन महान फ़्रांसीसी क्रांति की संतान थे और जिस समय क्रांति हुई, उनकी अवस्था तीस वर्ष की भी न थी। यह क्रांति विशेषाधिकारसंपन्न **निठल्ले** वर्गों के ऊपर, सामंतों और पुरोहितों के ऊपर, राज्य की तृतीय श्रेणी की, अर्थात् उत्पादन और व्यापार में **काम करनेवाली** राष्ट्र की विशाल जनता की विजय थी। परन्तु तृतीय श्रेणी की विजय का यथार्थ रूप बहुत जल्द प्रकट हो गया और यह मालूम हो गया कि यह विजय इस श्रेणी के एक बहुत छोटे-से भाग की ही विजय थी; उसका अर्थ था राजनीतिक सत्ता पर इस श्रेणी के सामाजिक विशेषाधिकारसंपन्न भाग का, यानी सम्पत्तिधारी पूंजीपति वर्ग का अधिकार। और बेशक क्रांति के दौरान यह पूंजीपति वर्ग बड़ी तेज़ी से बढ़ा था – कुछ हद तक सामंतों और गिरजों की जिन ज़मीनों को पहले ज़ब्त कर लिया गया और बाद में **नीलाम पर चढ़ाया गया**, उनकी सट्टेबाज़ी करके, और कुछ हद तक फ़ौजी ठेकों के ज़रिये राष्ट्र को लूटकर। डाइरेक्टरेट के ज़माने में इन ठगों की तूती बोलती थी, जिसके कारण देश विनाश के कगार पर पहुंच गया, और नेपोलियन को coup d'état करने का एक बहाना मिल गया।

इसीलिए तृतीय श्रेणी और विशेषाधिकारसम्पन्न वर्गों का जो विरोध था, उसने सेंत-साइमन की दृष्टि में "काम करनेवालों" और "निठल्लों" के विरोध का रूप ग्रहण किया। इन निठल्लों में पुराने विशेषाधिकारसम्पन्न वर्ग ही नहीं थे, बल्कि वे सभी लोग थे, जो उत्पादन अथवा वितरण में भाग लिये बिना अपनी आय पर जीवन-यापन करते थे। और काम करनेवालों में उजरती मज़दूर ही नहीं थे, उनमें कारख़ानेदार, व्यापारी और बैंकर भी थे। निठल्ले वर्गों में बौद्धिक नेतृत्व और राजनीतिक प्रभुत्व की योग्यता नहीं रह गयी थी। यह बात प्रमाणित हो चुकी थी और क्रांति ने इस बात को अन्तिम रूप से निश्चित कर दिया। आतंक राज्य के अनुभव ने सेंत-साइमन की दृष्टि में यह प्रमाणित कर दिया कि सम्पत्तिविहीन वर्गों में भी यह योग्यता न थी। तब प्रश्न यह था कि कौन नेतृत्व करे और आदेश दे? सेंत-साइमन मानते थे कि विज्ञान और उद्योग, दोनों एक नये धार्मिक सूत्र में बंधकर धार्मिक विचारों की उस एकता को फिर से स्थापित करेंगे, जो सुधार-आंदोलन के ज़माने से नष्ट हो गयी थी, एक "नया ईसाई धर्म" स्थापित करेंगे, जो अनिवार्यतः रहस्यवादी तथा कठोर रूप से श्रेणीबद्ध होगा। विज्ञान का मतलब था विद्वानों से, और उद्योग का मतलब था – सबसे पहले काम करनेवाले पूंजीपतियों, कारख़ानेदारों, व्यापारियों और बैंकरों से। सेंत-साइमन ने निश्चय ही यही उद्देश्य रखा था कि ये पूंजीपति अपने को एक प्रकार के सार्वजनिक अधिकारियों में, सामाजिक न्यायधारियों में रूपान्तरित करेंगे, लेकिन फिर भी मज़दूरों की अपेक्षा उनका दरजा ऊंचा रहेगा और आर्थिक क्षेत्र में उनकी एक विशेष स्थिति रहेगी। बैंकरों पर ख़ास तौर पर यह ज़िम्मेदारी डाली जानी थी कि वे उधार-व्यवस्था के नियमन द्वारा समाज के समूचे उत्पादन का संचालन करें। यह धारणा एक ऐसे युग के सर्वथा अनुरूप थी, जब फ़्रांस में आधुनिक उद्योग का और उसके साथ पूंजीपति और सर्वहारा वर्ग के विरोध का सूत्रपात हो ही रहा था। परंतु सेंत-साइमन ने जिस चीज़ पर ख़ास तौर से ज़ोर दिया, वह यह थी: उन्हें सबसे पहले और सबसे ज़्यादा उस वर्ग के भाग्य में दिलचस्पी थी, जो संख्या में सबसे ज़्यादा था और सबसे ज़्यादा ग़रीब भी था ("la classe la plus nombreuse et la plus pauvre")।

सेंत-साइमन ने अपने 'जेनेवा के पत्र' में पहले से ही यह सिद्धांत निर्धारित कर दिया था कि

"हर आदमी को काम करना चाहिये।"

इसी पुस्तक में उन्होंने यह भी माना है कि आतंक राज्य सम्पत्तिविहीनों का राज्य था। और इस धनहीन जन-समुदाय को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा,

"तुम्हारे साथियों के शासनकाल में फ़्रांस में क्या हुआ, देखो; उन्होंने अकाल की हालत पैदा कर दी।"

परंतु फ़्रांसीसी क्रांति को एक वर्ग-युद्ध के रूप में स्वीकार करना और वह भी केवल सामंत वर्ग और पूंजीपति वर्ग के ही नहीं, बल्कि सामंतों, पूंजीपतियों **और सम्पत्तिविहीनों** के बीच वर्ग-युद्ध के रूप में स्वीकार करना, सन् १८०२ में यह एक अत्यंत अर्थगर्भित आविष्कार था। १८१६ में सेंत-साइमन ने घोषणा की कि राजनीति उत्पादन का विज्ञान है। उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि राजनीति अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण रूप से विलीन हो जायेगी। इस बात का ज्ञान कि आर्थिक परिस्थिति ही राजनीतिक संस्थाओं का आधार है, यहां बीज रूप में ही दिखाई देता है। फिर भी यह विचार अभी से यहां स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है कि भविष्य में व्यक्तियों के ऊपर होनेवाला राजनीतिक शासन वस्तुओं के प्रबंध में और उत्पादन की प्रक्रियाओं के संचालन में बदल दिया जायेगा – दूसरे शब्दों में, "राज्य का अंत" हो जायेगा, ठीक वही बात, जिसे लेकर इधर इतना शोर हुआ है।

अपने समकालीन विचारकों की तुलना में सेंत-साइमन की यह श्रेष्ठता एक बार फिर प्रकट हुई, जब १८१४ में पेरिस में मित्र-सेनाओं के प्रवेश* के तुरंत बाद और फिर १८१५ में शतवासर[108] के समय उन्होंने यह घोषणा की कि फ़्रांस और इंगलैंड का संश्रय, और इन दोनों देशों का जर्मनी के साथ संश्रय ही यूरोप की समृद्धि, विकास और शांति की एकमात्र गारंटी हो सकता है। १८१५ में फ़्रांसीसियों को वाटरलू[109] के विजेताओं के साथ मैत्री करने का उपदेश देने के लिए साहस और ऐतिहासिक दूरदृष्टि, दोनों की समान रूप से आवश्यकता थी।

अगर हम सेंत-साइमन में एक इतना व्यापक दृष्टिकोण पाते हैं कि बाद में आनेवाले समाजवादियों के प्रायः सभी विचार, जो विशुद्ध रूप से आर्थिक नहीं

---

* ३१ मार्च १८१४। – सं०

हैं, उसमें बीज-रूप में विद्यमान हैं, तो फ़ुरिये की कृतियों में हम उनके युग की सामाजिक व्यवस्था की एक ऐसी आलोचना पाते हैं, जो परिहास लिए विशिष्ट रूप से फ़्रांसीसी है, लेकिन जो इस कारण कम मुकम्मल नहीं है। फ़ुरिये ने पूंजीपति वर्ग को क्रांति से पहले के उसके उत्साही पैग़म्बरों को और क्रांति के बाद के उसके मतलबी चाटुकारों को उन्हीं के वक्तव्यों की कसौटी पर परखा है। उन्होंने पूंजीवादी संसार की भौतिक और नैतिक हीनता और दरिद्रता को निर्ममतापूर्वक उघाड़कर रख दिया। और इस वास्तविकता के मुक़ाबले उन्होंने पहले के दार्शनिकों के चकाचौंध कर देनेवाले वचनों को रखा, जो कहते थे कि एक ऐसे समाज का जन्म होगा, जिसमें तर्क-बुद्धि का ही राज्य होगा; एक ऐसी सभ्यता पनपेगी, जिसमें सब लोग सुखी होंगे, जिसमें मनुष्य के विकास की अनंत संभावनायें होंगी। उन्होंने इस वास्तविकता के मुक़ाबले अपने समय के पूंजीवादी विचारकों की रंगीन लच्छेदार बातों को भी रखा और यह दिखा दिया कि हर जगह बातें ख़ूब लंबी-चौड़ी की जाती हैं, लेकिन वास्तविकता अत्यन्त दयनीय है! उन्होंने अपने तीखे व्यंग्य से निरर्थक शब्दों के इस जाल को छिन्न-भिन्न कर डाला।

फ़ुरिये केवल आलोचक ही नहीं थे, उनके शांत और कभी विचलित न होनेवाले स्वभाव ने उन्हें एक व्यंग्यकार, और सच पूछिये तो संसार का एक महान व्यंग्यकार बना दिया था। जितने सशक्त और आकर्षक रूप से उन्होंने क्रान्ति के पतन के बाद फैलनेवाली सट्टेबाज़ी और धोखाधड़ी का चित्रण किया, उतने ही सशक्त और आकर्षक रूप से उन्होंने फ़्रांसीसी व्यापार में फैली बनियौटी का भी चित्रण किया, जो उस व्यापार की लाक्षणिक विशेषता बन गयी थी। पूंजीवादी समाज में स्त्री के स्थान और स्त्री-पुरुष के संबंधों के पूंजीवादी स्वरूप की उनकी आलोचना इससे भी अधिक शानदार है। उन्होंने सबसे पहले इस बात की घोषणा की कि किसी भी समाज में स्त्री की स्वाधीनता की मात्रा पूरे समाज की स्वाधीनता का स्वाभाविक माप है।

परंतु समाज के इतिहास-संबंधी अपनी धारणा में फ़ुरिये सबसे महान हैं। उन्होंने अब तक इतिहास के पूरे प्रक्रम को विकास के चार युगों में बांटा — वन्यावस्था, बर्बरता, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और सभ्यता। यह अंतिम अवस्था, अर्थात् सभ्यता का युग आज की तथाकथित पूंजीवादी समाज-व्यवस्था का, अर्थात् उस समाज-व्यवस्था का युग है, जिसने १६ वीं शताब्दी के आरंभ में जन्म लिया। उन्होंने सिद्ध किया कि

"बर्बरता के युग में जो बुराइयां सीधे-सादे ढंग से होती थीं, सभ्यता के युग में वे एक अत्यन्त जटिल, रहस्यमय, सन्देहपूर्ण और पाखंडपूर्ण रूप ग्रहण कर लेती हैं,"

कि सभ्यता अपने ही अन्तर्विरोधों की परिधि में, एक "दुष्ट चक्र" में चक्कर काट रही है। वह इन अन्तर्विरोधों को लगातार उत्पन्न करती है, लेकिन उन्हें सुलझा नहीं पाती, और इसलिए वह अपने इच्छित अथवा घोषित लक्ष्य के विपरीत लक्ष्य पर पहुंचती है, और इस तरह, उदाहरण के लिए,

"सभ्यता के अन्तर्गत **अत्यधिक प्रचुरता से ही ग़रीबी पैदा होती है।**"

इस तरह फ़ुरिये ने द्वन्द्वात्मक प्रणाली का उसी अधिकार के साथ प्रयोग किया, जिस अधिकार के साथ उनके समकालीन हेगेल ने। संपूर्णता की ओर मानव-विकास की असीम संभावनाओं की जो बात हुआ करती थी, इस द्वन्द्वात्मक प्रणाली का उन्होंने उसके विरुद्ध उपयोग किया और कहा कि प्रत्येक ऐतिहासिक युग में एक उत्थान की अवस्था होती है और दूसरी अवसान की, और इस वक्तव्य को उन्होंने समस्त मानवजाति के भविष्य पर लागू किया। कांट ने जैसे प्रकृति-विज्ञान के क्षेत्र में यह विचार प्रकट किया था कि अंत में जाकर पृथ्वी का ही नाश हो जायेगा, उसी प्रकार इतिहास-विज्ञान में फ़ुरिये ने यह विचार रखा कि अंत में मानवजाति का ही नाश हो जायेगा।

फ़्रांस में जिस समय क्रांति का एक तूफ़ान पूरे देश में आया हुआ था, उसी समय इंगलैंड में एक अधिक शांत क्रांति हो रही थी, लेकिन शांत होते हुए भी यह क्रांति कम ज़बरदस्त न थी। भाप और कल-पुर्ज़े बनानेवाली मशीनें मैनुफ़ेक्चर को आधुनिक उद्योग में बदल रही थीं, और इस तरह वे पूंजीवादी समाज के समूचे आधार में ही क्रांतिकारी परिवर्तन ला रही थीं। मैनुफ़ेक्चर काल में विकास की धीमी गति अब सचमुच उत्पादन के एक प्रबल, प्रचंड वेग में बदल गयी। लगातार बढ़ती हुई रफ़्तार से समाज बड़े-बड़े पूंजीपतियों और सम्पत्तिविहीन सर्वहारा वर्ग में विभक्त होने लगा। और दोनों के बीच पहले जैसा एक स्थिर मध्यवर्ग न रहा; उसकी जगह दस्तकारों और छोटे दूकानदारों का एक अस्थिर जनसमूह, आबादी का सबसे ढुलमुल हिस्सा था, जो एक अनिश्चित और संकटमय जीवन बिता रहा था।

इस नयी उत्पादन-प्रणाली के विकास का दौर अभी शुरू ही हुआ था। अभी तक यह उत्पादन की सहज, नियमित प्रणाली थी, और उन अवस्थाओं में यही प्रणाली संभव भी थी। फिर भी अभी से ही यह प्रणाली भयंकर सामाजिक बुराइयों को जन्म दे रही थी—बड़े-बड़े शहरों के सबसे गंदे हिस्सों में झुण्ड के झुण्ड बेघरबार लोगों का रहना; सभी परम्परागत नैतिक बंधनों का, पितृसत्तात्मक अधिकार का, पारिवारिक संबंधों का शिथिल होना; मज़दूरों से, ख़ासकर औरतों और बच्चों से बेहद काम लिया जाना; मज़दूर वर्ग का बिल्कुल पस्तहिम्मत हो जाना, जिसका कारण यह था कि वह यकायक नयी परिस्थितियों में—देहात से शहर में, कृषि से आधुनिक उद्योग में, जीवन की एक स्थिर, निश्चित अवस्था से रोज़ बदलनेवाली अनिश्चित अवस्था में—पड़ गया था।

ऐसी घड़ी में एक सुधारक के रूप में उनतीस वर्ष का एक कारख़ानेदार सामने आया—उसके चरित्र में शिशुवत सरलता और उदात्तता थी, और इसके साथ ही वह उन थोड़े-से आदमियों में था, जो जन्मजात नेता होते हैं। रॉबर्ट ओवेन ने भौतिकवादी दार्शनिकों की शिक्षा को अंगीकार किया था—यह मानते थे कि मनुष्य का चरित्र एक ओर तो वंशगत गुणों पर, और दूसरी ओर व्यक्ति के जीवन-काल में, विशेष रूप से उसके विकास-काल में उसके परिवेश पर, निर्भर होता है। उनके वर्ग के अधिकांश लोगों को औद्योगिक क्रांति में गड़बड़ी और अव्यवस्था ही दीख पड़ी, बहती गंगा में हाथ धोने और इस गड़बड़ी से फ़ायदा उठाकर चटपट धनी बन जाने का एक अवसर ही दीख पड़ा। लेकिन ओवेन ने इस परिस्थिति में अपने प्रिय सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने का और इस प्रकार अव्यवस्था में व्यवस्था लाने का सुअवसर देखा। मैंचेस्टर के एक कारख़ाने में, जहां पांच सौ से ज़्यादा आदमी काम करते थे, वह सुपरिंटेंडेंट की हैसियत से इस सिद्धांत का पहले ही सफल प्रयोग कर चुके थे। १८०० से १८२९ तक उन्होंने एक प्रबंधक-साझीदार की हैसियत से स्काटलैंड में न्यू-लेनार्क की विशाल सूती मिल का इसी ढंग से, लेकिन और अधिक स्वाधीनता से संचालन किया। इसमें उन्हें इतनी सफलता मिली कि उनको यूरोप व्यापी ख्याति प्राप्त हो गयी। उन्होंने जिस आबादी को हाथ में लिया, उसमें विविध तत्व थे और अधिकतर पस्तहिम्मत लोग थे; और इस आबादी को, जिसकी संख्या बढ़ते-बढ़ते २,५०० तक पहुंच गयी थी, उन्होंने एक आदर्श बस्ती में बदल दिया, जिसमें शराबख़ोरी, पुलिस, मेजिस्ट्रेट, मुक़द्दमेबाज़ी, क़ानूने-मुफ़लिसी, दान, वग़ैरह का नाम न था। और इसके लिए उन्होंने किया बस यह कि लोगों को मानवोचित परिस्थितियों में रखा

ग्रौर विशेष रूप से नयी पीढ़ी का सावधानी से पालन-पोषण किया। वह शिशु-पाठशालाओं के प्रवर्त्तक थे ग्रौर उन्होंने सबसे पहले न्यू-लेनार्क में इन पाठशालाओं को स्थापित किया। दो वर्ष की ग्रवस्था से बच्चे स्कूल ग्राने लगते, ग्रौर वहां उन्हें इतना मज़ा ग्राता कि उन्हें घर ले जाना मुश्किल हो जाता। जहां ग्रोवेन के प्रतिद्वंद्वी ग्रपने ग्रादमियों से तेरह-चौदह घंटा काम लेते, न्यू-लेनार्क में रोज़ साढ़े दस घंटे ही काम होता। ग्रौर जब रुई की दिक़्क़त की वजह से कारख़ाना चार महीने बंद रहा, तब मज़दूरों को पूरे वक़्त ग्रपनी पूरी तनख़ाह मिलती रही। यह सब होने पर भी कारोबार का मूल्य दुगने से ज़्यादा हो गया, ग्रौर उससे ग्राख़िर तक मालिकों को गहरा मुनाफ़ा होता रहा।

इसके बावजूद ग्रोवेन संतुष्ट न थे। ग्रपने मज़दूरों के लिए जो जीवन उन्होंने सुलभ बनाया था, उनकी दृष्टि में ग्रभी भी उसके मानवोचित होने में बहुत कसर थी।

"ये लोग मेरी मर्ज़ी के ग़ुलाम थे।"

उन्होंने इन लोगों को जिन ग्रपेक्षाकृत सुविधापूर्ण परिस्थितियों में रखा था, वे ग्रभी ऐसी न थीं कि उनमें बुद्धि ग्रौर चरित्र का सभी दिशाओं में युक्तिसंगत विकास हो सकता ; उनकी सभी क्षमताओं का उन्मुक्त विकास होना तो दूर की बात थी।

"तो भी २,५०० व्यक्तियों की इस ग्राबादी का काम करनेवाला भाग समाज के लिए प्रति दिन जितना वास्तविक धन उत्पन्न करता था, पचास साल से भी कम पहले उसे उत्पन्न करने के लिए ६,००,००० की ग्राबादी के काम करनेवाले भाग की ज़रूरत पड़ती। मैंने ग्रपने ग्राप से पूछा, ६,००,००० ग्रादमी जितना धन ख़र्च करते, उससे २,५०० ग्रादमी बहुत कम धन ख़र्च करते हैं, फिर शेष धन कहां चला जाता है?"

इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट था। इस धन से कारख़ाने के मालिकों को उनकी लगायी पूंजी पर पांच प्रतिशत सूद ग्रौर ग्रलावा इसके ३,००,००० पौंड से ग्रधिक खरा मुनाफ़ा दिया जाता था। ग्रौर जो बात न्यू-लेनार्क पर लागू होती थी, वह इंगलैंड के ग्रौर सभी कारख़ानों पर ग्रौर भी ज़्यादा लागू होती थी।

"मशीनों का इस्तेमाल चाहे जितना ग्रधूरा रहा हो, लेकिन ग्रगर उनके द्वारा यह नया धन उत्पन्न न किया गया होता, तो नेपोलियन के ख़िलाफ़ ग्रौर

समाज के अभिजातीय सिद्धांतों की रक्षा के लिए यूरोप की लड़ाइयों को चलाया नहीं जा सकता था। और फिर भी यह नयी शक्ति मज़दूर वर्ग की ही सृष्टि थी।"*

इसलिए वही इस नयी शक्ति के फल का अधिकारी था। जिन विराट उत्पादक शक्तियों का हाल में ही सृजन हुआ था और अभी तक जिनका उपयोग इने-गिने व्यक्तियों को मालामाल करने और जनता को गुलाम बनाने के लिए किया गया था, ओवेन की दृष्टि में उन्होंने समाज के पुनर्निर्माण का एक आधार प्रस्तुत कर दिया था, और भविष्य में उनका सबकी सामान्य सम्पत्ति के रूप में, सबके सामान्य हित के लिए उपयोग होना था।

ओवेन का कम्युनिज्म इस विशुद्ध व्यावसायिक नींव पर आधारित था। कहना चाहिए कि व्यावसायिक लेखे-जोखे के फलस्वरूप ही उसकी उत्पत्ति हुई। उसका यह व्यावहारिक रूप अंत तक बना रहा। इस तरह हम देखते हैं कि १८२३ में ओवेन ने आयरलैंड में पीड़ित लोगों के सहायतार्थ कम्युनिस्ट बस्तियां स्थापित करने का प्रस्ताव रखा, और उनकी स्थापना की लागत, सालाना ख़र्च और संभाव्य आय का पूरा तख़मीना लगाया। उन्होंने भविष्य की एक सुनिश्चित योजना, भविष्य का एक पूरा नक़्शा बनाया — जिसमें नींव का नक़्शा, सम्मुख, पार्श्व और विहंगम दृश्य, सभी दिये हुए थे — और उसका प्राविधिक ब्योरा तैयार करने में उन्होंने ऐसे व्यावहारिक ज्ञान का परिचय दिया कि अगर समाज-सुधार की ओवेन-पद्धति को एक बार स्वीकार कर लिया जाये, तो फिर तफ़सीली बातों के इन्तज़ाम के ख़िलाफ़ व्यावहारिक दृष्टि से शायद ही कोई एतराज़ किया जा सके।

कम्युनिज्म की दिशा में प्रगति ही ओवेन के जीवन का भी मोड़ था। जब तक वह परोपकारी भर थे, उन्हें धन, प्रशंसा, सम्मान, गौरव, सब कुछ मिला। वह यूरोप के सबसे जनप्रिय व्यक्ति थे। उनके वर्ग के ही लोग नहीं, बल्कि राजे-महाराजे और राजनीतिज्ञ भी उनकी बात आदर के साथ सुनते थे और उनकी दाद देते थे। किन्तु जब उन्होंने अपने कम्युनिस्ट सिद्धांतों को पेश किया, परिस्थिति एकदम बदल गयी। समाज-सुधार के रास्ते में उन्हें ख़ासकर तीन बड़ी कठिनाइयां

---

*ओवेन के स्मृतिपत्र, 'विचार तथा व्यवहार में क्रांति'। ओवेन ने इसे "यूरोप के सभी लाल गणतंत्रवादियों, कम्युनिस्टों और समाजवादियों" को संबोधित करके लिखा था और उसे १८४८ की फ़्रांस की अस्थायी सरकार के पास और "महारानी विक्टोरिया तथा उनके उत्तरदायी मंत्रियों" के पास भी भेजा था।

दीख पड़ीं – निजी स्वामित्व, धर्म और विवाह का प्रचलित रूप। वह जानते थे कि अगर उन्होंने इन पर आक्रमण किया, तो परिणाम क्या होगा – समाज से निष्कासन, सरकारी हलक़ों द्वारा बहिष्कार, उनकी संपूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा की हानि। लेकिन इन बातों का डर उन्हें रोक न सका और उन्होंने परिणाम की चिंता किये बिना उन पर आक्रमण किया, और जिस बात की उन्हें आशंका थी, वह होकर रही। सरकारी हलक़ों ने उनका बहिष्कार किया, प्रेस ने उनकी ओर मौन उपेक्षा का रुख़ अपनाया, अमरीका में होनेवाले असफल कम्युनिस्ट प्रयोगों ने उन्हें चौपट कर दिया और उनमें उनकी सारी सम्पत्ति स्वाहा हो गयी। और तब उन्होंने अपना नाता सीधे मज़दूर वर्ग से जोड़ा और वह उसके बीच तीस वर्ष काम करते रहे। इंगलैंड में मज़दूरों की हर वास्तविक प्रगति, हर सामाजिक आंदोलन के साथ ओवेन का नाम जुड़ा हुआ है। १८१६ में उनके पांच वर्षों के संघर्ष की बदौलत ही कारख़ानों में औरतों और बच्चों के काम के घंटों पर रोक लगानेवाला पहला क़ानून पास किया गया था। ओवेन ही पहली कांग्रेस के सभापति थे, जिसमें इंगलैंड की सभी ट्रेड-यूनियनों ने मिलकर एक विशाल ट्रेड-यूनियन संगठन बनाया।[110] समाज के संपूर्ण कम्युनिस्ट संगठन के लिए उन्होंने दो संक्रमणकालीन संस्थाओं को चलाया। एक ओर तो उन्होंने फुटकर व्यापार और उत्पादन के लिए सहकारी संस्थाएं क़ायम कीं। तब से इन संस्थाओं ने कम से कम इस बात का व्यावहारिक प्रमाण तो दे ही दिया है कि व्यापारियों और कारख़ानेदारों की सामाजिक दृष्टि से कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर उन्होंने श्रम-बाज़ार चलाये। इन बाज़ारों में श्रम के नोट, जिनका युनिट काम का एक घंटा था, चलते थे, और ये नोट ही श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विनिमय का माध्यम होते थे। इन बाज़ारों का असफल होना पूर्वनिश्चित था, लेकिन फिर भी हमें इनमें बहुत बाद में आनेवाले प्रूदों के विनिमय बैंक[111] की शक्ल पहले से तैयार मिलती है। फ़र्क़ यह है कि जहां प्रूदों के बैंक को तमाम सामाजिक बुराइयों के लिए रामबाण कहा गया था, वहां इन बाज़ारों को समाज में एक अधिक मौलिक क्रांति की दिशा में पहला क़दम बताया गया था।

कल्पनावादियों की विचार-प्रणाली का उन्नीसवीं शताब्दी की समाजवादी धारणाओं पर बहुत दिनों तक प्रभाव रहा, और कुछ अंशों में अभी भी है। अभी हाल तक इंगलैंड और फ़्रांस के सभी समाजवादी उनके सामने शीश नवाते थे। और पहले का जर्मन कम्युनिज़्म भी, जिसमें वाइटलिंग का कम्युनिज़्म भी सम्मिलित है, इसी मत को मानता था। इन सबों के लिए समाजवाद निरपेक्ष

सत्य, तर्क-बुद्धि और न्याय की अभिव्यक्ति है, और एक बार जहां उसका आविष्कार हुआ नहीं कि वह अपनी ही शक्ति से सारे संसार को जीत लेगा। और चूंकि निरपेक्ष सत्य देश, काल तथा मनुष्य के ऐतिहासिक विकास से स्वतंत्र है, उसका आविष्कार कब और कहां होता है, यह एक निरी आकस्मिक बात है। इसके साथ ही हर मत के प्रवर्त्तक की निरपेक्ष सत्य, न्याय और तर्क-बुद्धि की अपनी अलग धारणा है। और चूंकि निरपेक्ष सत्य, न्याय और तर्क-बुद्धि की हर व्यक्ति की अपनी विशेष धारणा उसकी वैयक्तिक समझ, जीवन की परिस्थितियों, ज्ञान की मात्रा और बौद्धिक प्रशिक्षण से निश्चित होती है, इसलिए निरपेक्ष सत्यों के इस विरोध का अंत यही हो सकता था कि वे एक दूसरे को अपवर्जित करें। इससे एक प्रकार के औसत, खिचड़ी समाजवाद की ही उत्पत्ति हो सकती थी, और सच पूछिये तो यही समाजवाद अभी तक फ़्रांस और इंगलैंड के अधिकांश समाजवादी मज़दूरों के मन पर छाया हुआ है। इस खिचड़ी समाजवाद में हम तरह-तरह के विचारों का एक विचित्र-सा सम्मिश्रण पाते हैं—विभिन्न मतों के प्रवर्त्तकों के ऐसे आलोचनात्मक वक्तव्यों, आर्थिक सिद्धान्तों, भावी समाज की रूपरेखाओं का सम्मिश्रण, जो कम से कम विरोध उत्पन्न करें। जैसे नदी की धारा में बहते हुए पत्थर गोल-मटोल हो जाते हैं, वैसे ही वाद-विवाद के भंवर में पड़कर ये विचार और सिद्धान्त जितना ही घिसते हैं, उनका यह सम्मिश्रण उतनी ही आसानी से तैयार होता है।

समाजवाद को एक विज्ञान का रूप देने के पहले यह आवश्यक था कि उसे एक वास्तविक आधार पर खड़ा किया जाये।

२

इसी बीच, अठारहवीं शताब्दी के फ़्रांसीसी दर्शन के साथ और उसके बाद एक नये जर्मन दर्शन का आविर्भाव हुआ, जिसकी परिणति हेगेल की रचनाओं में हुई। इस दर्शन का सबसे बड़ा गुण यह था कि उसने द्वंद्ववाद को ही तर्कना का सर्वोच्च रूप माना और दर्शन के क्षेत्र में उसे फिर से प्रतिष्ठित किया। यूनान के प्राचीन दार्शनिक सभी जन्मजात स्वतःस्फूर्त द्वंद्ववादी थे और उनमें सर्वाधिक सर्वज्ञानसंपन्न मनीषी अरस्तू ने द्वंद्ववादी तर्कना के प्रमुख रूपों का विश्लेषण कर भी लिया था। यद्यपि नवीनतर दर्शन के अनुयायियों में (देकार्त और स्पिनोज़ा जैसे) द्वंद्ववाद के प्रतिभाशाली व्याख्याकार थे, तो भी यह दर्शन विशेष रूप से

अंग्रेज़ दार्शनिकों के प्रभाव से तथाकथित अधिभूतवादी तर्क-प्रणाली के साथ अधिकाधिक बंधता गया। इस तर्क-प्रणाली से अठारहवीं शताब्दी के फ़्रांसीसी भी प्रायः संपूर्णतया प्रभावित थे – उनकी विशिष्ट दार्शनिक कृतियों पर तो बहरसूरत यह प्रभाव है ही। दर्शन को यदि एक संकुचित अर्थ में लें, तो उसके बाहर अवश्य इन फ़्रांसीसियों ने द्वंद्ववाद की अत्यंत उत्कृष्ट रचनायें प्रस्तुत कीं। उदाहरण के लिए हम दिदेरो के «*Le Neveu de Rameau*» ['रामो का भतीजा'] और रूसो के «*Discours sur l'origine et les fondements de l'inégalité parmi les hommes*» ['मानवों में असमानता की उत्पत्ति तथा उसके आधार की विवेचना'] का नाम ले सकते हैं। हम यहां संक्षेप में इन दोनों चिंतन-प्रणालियों के मौलिक स्वरूप का वर्णन करेंगे।

जब हम समग्र प्रकृति या मानवजाति के इतिहास पर या अपने मन की प्रक्रियाओं पर विचार करते हैं, तब पहले हमें क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, संबंधों, विभिन्न तत्वों के योग और संयोजन से बना हुआ एक जाल-सा दिखाई देता है, जो कहीं ख़त्म नहीं होता, जिसमें कोई वस्तु स्थिर नहीं रहती, जो जहां जैसा था, वह वहां वैसा नहीं रहता, जिसमें हर वस्तु गतिशील है, परिवर्तनशील है, हर वस्तु का निर्माण होता है और नाश होता है। इस प्रकार हम इस चित्र को पहले समग्र रूप में देखते हैं, उसके अलग-अलग हिस्से हमारी नज़र में नहीं पड़ते, वे न्यूनाधिक पृष्ठभूमि में ही रहते हैं। हम गति, संक्रमण और परस्पर संबंधों को देखते हैं, किन्तु जिन वस्तुओं की यह गति है, ये योग और संबंध हैं, हम उन्हें नहीं देख पाते। विश्व की यह धारणा आदिम और भोली-भाली है, लेकिन मूलतः वह ग़लत नहीं है, और प्राचीन यूनानी दर्शन की धारणा भी यही थी, जिसे स्पष्ट रूप से सबसे पहले हेराक्लाइटस ने प्रतिपादित किया था। उसने कहा था – हर वस्तु है और नहीं भी है, क्योंकि हर वस्तु **अस्थिर** है, सतत परिवर्तनशील है, सतत निर्माण और नाश की अवस्था में है।

यह धारणा कुल मिलाकर दृश्य-जगत के चित्र के सामान्य स्वरूप को तो सही-सही व्यक्त करती है, लेकिन जिन तफ़सीलों से यह चित्र बना है, उनकी व्याख्या के लिए पर्याप्त नहीं है। और जब तक हम इन्हें नहीं समझें, हम पूरे चित्र को साफ़ तौर पर समझ नहीं सकते। इन तफ़सीलों को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि हम उन्हें उनके प्राकृतिक या ऐतिहासिक संबंधों से अलग करें और हर तफ़सील पर, चित्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग पर अलग-अलग विचार करें, उसके स्वरूप, उसके विशेष कारणों, परिणामों इत्यादि की पृथक् रूप से परीक्षा करें।

यह काम ख़ास तौर पर प्रकृति-विज्ञान और ऐतिहासिक अनुसंधान का है, और ये ही विज्ञान की वे शाखायें हैं, जिन्हें प्राचीन काल के यूनानियों ने निम्न स्थान दिया था, और इसका यथेष्ट कारण भी था, क्योंकि उन्हें सबसे पहले इन विज्ञानों के लिए सामग्री एकत्र करनी थी, जिसके आधार पर वे कार्य कर सकें। प्रकृति और इतिहास के संबंध में जब तक पहले कुछ सामग्री एकत्र न हो ले, तब तक आलोचनात्मक विश्लेषण, तुलना और वर्गों, श्रेणियों और जातियों के रूप में क्रम-स्थापना नहीं हो सकती। इसलिए यथार्थ प्रकृति-विज्ञान का आधार सबसे पहले सिकंदरियाई काल[112] के यूनानियों ने और बाद में मध्ययुग के अरबों ने स्थापित किया। वास्तविक प्रकृति-विज्ञान का आरंभ पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही होता है, और तब से इस विज्ञान ने लगातार बढ़ती हुई रफ़्तार से तरक़्क़ी की है। प्रकृति का उसके पृथक् अवयवों में विश्लेषण, विभिन्न वस्तुओं और प्रक्रियाओं का निश्चित वर्गीकरण, विविध रूपी जैव पिंडों की आंतरिक शरीर-रचना का अध्ययन – पिछले चार सौ वर्षों में प्रकृति-संबंधी हमारे ज्ञान में जो विराट प्रगति हुई है, उसकी ये बुनियादी शर्तें रही हैं। परंतु इस कार्य-प्रणाली ने हमारे लिए एक और विरासत भी छोड़ी है – उसने हमारे अंदर ऐसी आदत डाल दी है कि हम प्राकृतिक वस्तुओं और प्रक्रियाओं को संपूर्ण वास्तविकता से उनके संबंध को विच्छिन्न करके देखते हैं, उन्हें गति की नहीं, विराम की स्थिति में, मूलतः परिवर्तनशील नहीं, बल्कि स्थिर अवस्था में, जीवन की नहीं, मृत्यु की अवस्था में देखते हैं। और जब बेकन और लाक इस दृष्टिकोण को प्रकृति-विज्ञान के क्षेत्र से दर्शन के क्षेत्र में ले आये, तब उस संकीर्ण, अधिभूतवादी विचार-प्रणाली का जन्म हुआ, जो पिछली शताब्दी की एक विशेषता रही है।

अधिभूतवादी के लिए वस्तु और वस्तुओं के मानस-चित्र, अर्थात् विचार, एक दूसरे से विच्छिन्न हैं; वह उन्हें अन्वेषण की स्थिर और अपरिवर्तनीय प्रदत्त सामग्री मानता है; उन्हें एक दूसरे से अलग करके और एक के बाद एक देखता है। उसका चिन्तन ऐसे प्रतिपक्षों के रूप में होता है, जिनका परस्पर सामंजस्य हो ही नहीं सकता। वह बात करता है, तो 'हां' में, या 'नहीं' में; और जो न 'हां' में है और न 'नहीं' में, वह शैतान की शरारत है। उसकी दृष्टि में या तो किसी वस्तु का अस्तित्व है या नहीं है, कोई वस्तु एक ही समय में जो वह है, उससे भिन्न नहीं हो सकती, भाव-पक्ष और अभाव-पक्ष दोनों एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं, दोनों में उभयनिष्ठ कुछ नहीं है। कार्य और कारण की कोटियां एक दूसरे के बिल्कुल विपरीत हैं।

पहली नज़र में यह विचार-प्रणाली अत्यंत परिष्कृत और स्पष्ट मालूम होती है, क्योंकि यह प्रणाली तथाकथित स्वस्थ व्यवहार-बुद्धि की प्रणाली है। परंतु यह स्वस्थ व्यवहार-बुद्धि अपने घर की चहारदीवारी के अंदर तो बाइज़्ज़त बड़े मज़े से रह लेती है, लेकिन जहां उसने अनुसंधान के विशाल जगत में पदार्पण किया नहीं कि वह बड़े ख़तरे में पड़ जाती है। कुछ क्षेत्रों में, जिनका विस्तार इस बात पर निर्भर है कि अनुसंधान के विशिष्ट विषय का स्वरूप क्या है, अधिभूतवादी विचार-प्रणाली आवश्यक और उचित भी है, परंतु न्यूनाधिक काल के बाद यह प्रणाली एक ऐसी सीमा पर पहुंच जाती है, जिसके आगे ले जाने पर वह एकांगी, संकुचित, अमूर्त हो जाती है और अमिट विरोधों के भंवर में पड़कर रह जाती है। अलग-अलग वस्तुओं पर विचार करते समय अधिभूतवादी उनके परस्पर संबंधों को भूल जाता है, उनके अस्तित्व पर विचार करते समय वह उस अस्तित्व के आरंभ और अंत को भूल जाता है, वह उन्हें विराम-स्थिति में देखता है, लेकिन उनकी गति को भूल जाता है। वह वृक्षों को देखता है, पर वन को नहीं देख पाता।

मिसाल के तौर पर अपने रोज़मर्रा के जीवन में हम यह जानते हैं और कह सकते हैं कि कोई प्राणी जीवित है या नहीं। लेकिन ग़ौर से देखने पर यह मालूम होता है कि यह अक्सर एक बहुत पेचीदा सवाल होता है। क़ानूनदां इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। उन्होंने इस बात को लेकर बहुत माथापच्ची की है कि वह मुनासिब हद कौनसी है, जिसके आगे मां के गर्भ को नष्ट करने का मतलब है हत्या करना, और फिर भी वे इसको निश्चित नहीं कर पाये हैं। इसी प्रकार मृत्यु के क्षण को सम्पूर्ण रूप से निश्चित करना असंभव है, क्योंकि शरीरक्रिया-विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मृत्यु कोई आकस्मिक और क्षण भर में हो जानेवाली घटना नहीं है, वह एक बहुत लम्बी प्रक्रिया है।

इसी प्रकार प्रत्येक जीवधारी हर क्षण में जो वह है, उससे भिन्न भी है। वह हर क्षण बाहर से कुछ पदार्थ ग्रहण करता है और भीतर से कुछ अन्य पदार्थ ख़ारिज करता है। हर क्षण उसके शरीर की कुछ कोशिकायें मरती रहती हैं और अन्य कोशिकायें निर्मित होती रहती हैं और इस तरह न्यूनाधिक समय में उसके शरीर का पदार्थ बिल्कुल नया हो जाता है, पुराने पदाथ की जगह नये पदार्थ के अणु ले लेते हैं और इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रत्येक जीवधारी किसी समय में जो वह है, उससे भिन्न भी है।

इतना ही नहीं, सूक्ष्मतर अन्वेषण के बाद यह भी पता चलता है कि किसी

प्रतिपक्ष के दोनों छोर, भाव-पक्ष और अभाव-पक्ष, जैसे एक दूसरे के विरोधी हैं, वैसे ही अभिन्न भी हैं, और अपने सारे विरोध के बावजूद वे एक दूसरे में अंतर्व्याप्त हैं। और इसी प्रकार हम देखते हैं कि कार्य तथा कारण की धारणायें तभी सार्थक हैं, जब हम उन्हें पृथक् घटनाओं पर लागू करें। लेकिन जहां हम इन पृथक् घटनाओं को संपूर्ण विश्व के साथ सामान्य संबंध में देखते हैं, वे उस सार्विक अन्योन्यक्रिया में एक दूसरे से टकरा और गड्मड् हो जाती हैं, जिसमें कारण और कार्य निरंतर स्थान बदलते रहते हैं। जो एक समय और एक स्थान पर कार्य है, वही दूसरे समय और दूसरे स्थान पर कारण बन जाता है। और इसी तरह जो कारण है, वह कार्य बन जाता है।

अधिभूतवादी चिंतन का ढांचा ऐसा है कि उसमें इन प्रक्रियाओं और तर्क-प्रणालियों का कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत द्वंद्ववाद वस्तुओं और उनके मानस-चित्रों, अर्थात् विचारों को, उनके बुनियादी संबंध, गति, आरंभ और अंत को ध्यान में रखकर ही ग्रहण करता है। इसलिए ऊपर जिन प्रक्रियाओं का हमने उल्लेख किया है, वे द्वंद्ववाद की अपनी कार्य-प्रणाली का प्रमाण हैं।

द्वंद्ववाद का प्रमाण प्रकृति है, और यह मानना ही होगा कि आधुनिक विज्ञान ने इस प्रमाण के लिए अत्यंत मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत की है और यह सामग्री प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस प्रकार विज्ञान ने यह दिखा दिया है कि अन्ततः प्रकृति की क्रिया अधिभूतवादी नहीं, द्वंद्वात्मक है; वह एक सदा पुनरावर्त्तित वृत्त के अपरिवर्तनशील क्रम में चक्कर नहीं काटती, बल्कि वास्तविक ऐतिहासिक विकास के क्रम से गुज़रती है। इस संबंध में सबसे पहले डार्विन का नाम लेना होगा। उन्होंने यह सिद्ध किया कि सारा जैव जगत्—वनस्पति, जीव तथा स्वयं मनुष्य—विकास की एक ऐसी प्रक्रिया की उपज है, जो करोड़ों साल से चलती आ रही है। इस तरह उन्होंने प्रकृति की अधिभूतवादी धारणा पर सबसे कठोर आघात किया। परंतु ऐसे प्रकृतिज्ञानी बहुत कम हैं, जिन्होंने द्वंद्वात्मक प्रणाली से विचार करना सीख लिया है और अनुसंधान के निष्कर्षों तथा पूर्वकल्पित चिंतन-प्रणालियों के बीच इस विरोध के कारण प्रकृति-विज्ञान के सैद्धांतिक क्षेत्र में बेहद गड़बड़ी फैली हुई है, जिससे शिक्षक तथा शिक्षार्थी, लेखक तथा पाठक, सभी को निराशा होती है।

इसलिए विश्व का, उसके विकास का, मानवजाति के विकास का, और मानव के मस्तिष्क में इस विकास के प्रतिबिंब का सच्चा चित्र द्वंद्वात्मक प्रणाली के द्वारा ही मिल सकता है, क्योंकि यही प्रणाली जीवन और मृत्यु, पुरोगामी

ओर प्रतिगामी परिवर्तनों की असंख्य क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को सदा ध्यान में रखती है। नवीन जर्मन दर्शन इसी भावना को लेकर चला है। अपना दार्शनिक जीवन आरंभ करते ही कांट ने न्यूटन की एक स्थायी सौरमण्डल की धारणा को, जिसके अनुसार यह सौरमण्डल लोकविश्रुत प्रथम प्रणोदन के बाद से एक शाश्वत सतत अपरिवर्त्तनशील क्रम से चल रहा है, बदल डाला और उसे एक ऐतिहासिक क्रम के रूप में, एक चक्कर काटते हुए नीहारिका पुंज से सूर्य तथा सभी ग्रहों के निर्माण के परिणाम के रूप में प्रस्तुत किया। इससे उन्होंने साथ ही यह निष्कर्ष भी निकाला कि यदि सौरमण्डल की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई है, तो भविष्य में उसका विनाश भी निश्चित है। आधी शताब्दी बाद लाप्लास ने कांट के इस सिद्धांत का गणितीय प्रमाण प्रस्तुत किया और इसके भी आधी शताब्दी बाद वर्णक्रमदर्शी [स्पेक्ट्रोस्कोप] का आविष्कार होने पर यह प्रमाणित हो गया कि बाह्य अन्तरिक्ष में ऐसे तापदीप्त गैस पुंज हैं, जो संघनन की विभिन्न अवस्थाओं में हैं।

इस नये जर्मन दर्शन का चरम विकास हेगेल की प्रणाली में हुआ। इस प्रणाली में–और यही इसकी बहुत बड़ी ख़ूबी है–यह पूरा जगत–प्राकृतिक, ऐतिहासिक तथा बौद्धिक जगत्–पहली बार एक प्रक्रिया के रूप में, अर्थात् सतत प्रवाह, गति, परिवर्त्तन, रूपान्तरण तथा विकास की अवस्था में चित्रित किया गया है, और साथ ही उस आंतरिक संबंध को, उस सूत्र को पकड़ने की कोशिश की गयी है, जिससे इस समस्त गति और विकास को एक क्रमबद्ध व्यवस्था का रूप मिलता है। इस दृष्टिकोण से मानवजाति का इतिहास निरर्थक, हिंसक कार्यों का प्रचंड आवर्त्तन न रह गया–ऐसे कार्यों का आवर्त्तन, जो परिपक्व दार्शनिक तर्क-बुद्धि के न्याय-सिंहासन के सम्मुख सबके सब समान रूप से हेय तथा निंदनीय हैं, और जिन्हें शीघ्र से शीघ्र भूल जाना ही श्रेयस्कर है–बल्कि इस दृष्टि से यह इतिहास स्वयं मनुष्य के विकास की प्रक्रिया के रूप में दीख पड़ा। अब यह काम बुद्धि का था कि वह इस प्रक्रिया के टेढ़े-मेढ़े रास्ते से क्रमिक विकास की गति को परखे, और जो घटनाएं ऊपर से देखने में आकस्मिक जान पड़ती हैं, उनमें अन्तर्निहित नियम को खोज निकाले।

हेगेल की प्रणाली ने जिस समस्या को निरूपित किया, उसे वह सुलझा न पायी, लेकिन इस बात का यहां कोई महत्त्व नहीं है। उसका युगान्तरकारी महत्त्व इस बात में है कि उसने उस समस्या को निरूपित किया। यह समस्या ही ऐसी है कि कोई एक व्यक्ति उसे कभी सुलझा नहीं पायेगा। सेंत-साइमन के साथ हेगेल

अपने युग में सबसे अधिक सर्वज्ञानसम्पन्न व्यक्ति थे, जिनका मस्तिष्क सचमुच विराट था ; तब भी वह सबसे पहले, अपने ज्ञान की अनिवार्य सीमा से और दूसरे, अपने युग के, विस्तार और गहराई, दोनों में सीमित ज्ञान और धारणाओं की सीमा से बंधे हुए थे। इनके अलावा एक तीसरी सीमा भी थी। हेगेल भाववादी थे। उनके लिये उनके मस्तिष्क के विचार वास्तविक वस्तुओं और क्रियाओं के न्यूनाधिक अमूर्त्त प्रतिबिंब न थे, उल्टे, ये वस्तुयें और उनका विकास उस "विचार" के फलीभूत चित्र थे, जिसका अस्तित्व विश्व की सृष्टि के पहले से ही अनादि काल से रहा है। इस चिन्तन-प्रणाली ने हर चीज़ को सिर के बल खड़ा कर दिया, और संसार में वस्तुओं के यथार्थ संबंध को बिल्कुल उलट डाला। और यद्यपि हेगेल ने कितने ही विशिष्ट तथ्य-समूहों को ठीक-ठीक और बड़ी सूझ-बूझ के साथ हृदयंगम किया, फिर भी उपरोक्त कारणों से हेगेल की रचनाओं में बहुत कुछ ऐसा है, जो भोंडा है, बनावटी है, ज़बरदस्ती किसी तरह ठूंसा गया है—एक शब्द में कहें तो तफ़सीली बातों में ग़लत है। हेगेल की प्रणाली एक भयंकर भ्रूणपात है, परंतु इस प्रकार का अंतिम भ्रूणपात। वास्तव में यह प्रणाली एक ऐसे आंतरिक विरोध से पीड़ित थी, जिसका कोई इलाज न था। एक ओर, उसकी मूल प्रस्थापना यह धारणा थी कि मानव-इतिहास विकास की एक प्रक्रिया है, जिसकी स्वभावतः यह परिणति कभी नहीं हो सकती कि किसी तथाकथित निरपेक्ष सत्य के आविष्कार को बुद्धि की चरम सीमा मान ली जाये। परंतु दूसरी ओर, इस प्रणाली का यह दावा था कि वह इसी निरपेक्ष सत्य का सार है। प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक ज्ञान की एक ऐसी व्यवस्था, जो सर्वव्यापी और सदा के लिए निश्चित हो, द्वंद्ववादी तर्क-प्रणाली के मूलभूत नियम के प्रतिकूल है। और यह विचार कि बाह्य जगत के विषय में हमारा व्यवस्थित ज्ञान एक युग से दूसरे युग तक विराट प्रगति कर सकता है, इस नियम से बाहर नहीं, प्रत्युत उसके अन्तर्गत है।

जर्मन भाववाद के इस मौलिक अन्तर्विरोध के अवबोध का फल यह हुआ कि दार्शनिकों का झुकाव फिर भौतिकवाद की ओर हुआ, लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि यह भौतिकवाद अठारहवीं सदी के अधिभूतवादी, सर्वथा यांत्रिक भौतिकवाद से भिन्न था। पुराने भौतिकवाद की दृष्टि में समस्त पूर्वकालीन इतिहास हिंसा और निर्बुद्धिता का एक पुंज है ; आधुनिक भौतिकवाद की दृष्टि में यह इतिहास मानवजाति के विकास की एक प्रक्रिया है, और उसका लक्ष्य है इस विकास के नियमों का पता लगाना। अठारहवीं शताब्दी के फ़्रांसीसियों की और

हेगेल तक की यह धारणा थी कि संपूर्ण प्रकृति एक सीमित वृत्त में घूमती है और सदा के लिए अपरिवर्त्तनशील है; जैसा न्यूटन ने कहा था, उसके आकाशीय पिंड नित्य हैं; और जैसा लिनीयस ने कहा था, सभी जैव जातियां नित्य और अपरिवर्त्तनशील हैं। आधुनिक भौतिकवाद ने प्रकृति-विज्ञान के इधर हाल के आविष्कारों को ग्रहण किया है, जिनके अनुसार काल के प्रवाह में प्रकृति का भी एक इतिहास है, वह भी काल के अधीन है, और आकाशीय पिंड, उन जैव जातियों की तरह ही, जो अनुकूल परिस्थितियों में उनमें वास करते हैं, उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। और अगर अभी भी यह कहना होगा कि सम्पूर्ण प्रकृति निरंतर पुनरावर्तित होनेवाले वृत्तों में घूमती है, तो साथ ही यह भी मानना होगा कि ये वृत्त निरंतर वृहत्तर होते जाते हैं। दोनों पहलुओं से आधुनिक भौतिकवाद मूलतः द्वंद्वात्मक है, और अब उसे ऐसे दर्शन की सहायता की आवश्यकता न रह गयी, जो शेष सभी विज्ञानों पर वैसे ही शासन करने का दम भरे, जैसे राजा प्रजा पर करता है। जैसे ही प्रत्येक पृथक् विज्ञान वस्तुओं की विस्तृत समष्टि में और उनके बारे में ज्ञान की समष्टि में अपनी स्थिति स्पष्ट बना लेता है, वैसे ही इस समष्टि से संबंध रखनेवाला विशेष विज्ञान निरर्थक अथवा निष्प्रयोजन हो जाता है। पुराने दर्शन का अगर कोई भाग बचा रहता है, तो वह है चिंतन तथा उसके नियमों का विज्ञान → तर्कशास्त्र और द्वंद्ववाद। बाक़ी सब कुछ प्रकृति तथा इतिहास के तथ्यविषयक विज्ञान का अंग बन जाता है।

यद्यपि प्रकृति-संबंधी धारणा में क्रांति उसी हद तक हो सकती थी, जिस हद तक उसके लिए अनुसंधान द्वारा तथ्यविषयक सामग्री प्रस्तुत की गयी हो, बहुत पहले ही कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटनायें हो चुकी थीं, जिनके कारण इतिहास की धारणा में एक निर्णायक परिवर्तन संभव हुआ : १८३१ में लियों नामक नगर में मजदूरों का पहला विद्रोह हुआ; १८३८ और १८४२ के बीच इंगलैंड का चार्टिस्ट आंदोलन, जो पहला राष्ट्रव्यापी मजदूर आंदोलन था, अपने शिखर पर पहुंचा। सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग का वर्ग-संघर्ष यूरोप के सबसे उन्नत देशों के इतिहास में सामने आया, और उस हद तक सामने आया, जिस हद तक उनमें एक ओर आधुनिक उद्योग का और दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग के नये राजनीतिक प्रभुत्व का विकास हुआ था। तथ्यों ने अधिकाधिक प्रबल रूप से पूंजीवादी अर्थशास्त्र के उपदेशों को झूठा ठहराया, जिनके अनुसार पूंजी और श्रम के हित एक हैं, और जिनके अनुसार अनियंत्रित होड़ का फल होगा विश्वव्यापी

सामंजस्य और समृद्धि। इन नये तथ्यों की अब और उपेक्षा नहीं की जा सकती थी, और न ही उस फ़्रांसीसी और अंग्रेजी समाजवाद की उपेक्षा की जा सकती थी, जो उनकी सैद्धान्तिक, अपूर्ण ही सही, अभिव्यक्ति था। परन्तु इतिहास की पुरानी भाववादी धारणा में – और यह धारणा अभी तक निर्मूल न हुई थी – आर्थिक हितों पर आधारित वर्ग-संघर्षों का, या आर्थिक हितों का, कोई स्थान नहीं था; इस धारणा के अनुसार उत्पादन तथा सभी आर्थिक संबंध "सभ्यता के इतिहास" के आनुषंगिक और गौण तत्त्व हैं।

इन नये तथ्यों के कारण समस्त विगत इतिहास की फिर से परीक्षा करना आवश्यक हो गया। और तब यह देखा गया कि आदिम युगों को छोड़कर, समस्त विगत इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है, और समाज के ये संघर्षरत वर्ग सदा अपने युग की उत्पादन तथा विनिमय प्रणाली से, या एक शब्द में कहें तो, अपने युग की आर्थिक परिस्थितियों से उत्पन्न हुए हैं; और यह कि समाज का आर्थिक ढांचा ही वस्तुतः वह आधार है, जिसके ऊपर किसी भी ऐतिहासिक युग की क़ानूनी और राजनीतिक संस्थाओं का और धार्मिक, दार्शनिक तथा दूसरे विचारों का ऊपरी ढांचा खड़ा किया जाता है, और इस आधार को ग्रहण करके ही हम ऊपरी ढांचे को अंतिम रूप से समझ सकते हैं। हेगेल ने इतिहास को अधिभूतवाद से मुक्त किया, उन्होंने उसे द्वंद्ववादी रूप दिया, परंतु इतिहास की उनकी धारणा मूलतः भाववादी थी। भाववाद का अंतिम आश्रय इतिहास की दार्शनिक धारणा था, पर अब वह आश्रय भी जाता रहा; अब इतिहास की एक भौतिकवादी विवेचना प्रस्तुत की गयी। अभी तक मनुष्य की चेतना को उसके अस्तित्व का आधार माना गया था, पर अब मनुष्य के अस्तित्व को उसकी चेतना का आधार प्रमाणित करने का मार्ग खुल गया।

इस जमाने से समाजवाद किसी सूझ-बूझवाले मस्तिष्क की आकस्मिक खोज का फल न रह गया। अब वह ऐतिहासिक रूप से विकसित दो वर्गों, सर्वहारा और पूंजीपति वर्गों, के संघर्ष का अनिवार्य परिणाम समझा जाने लगा। अब उसका काम एक यथासंभव संपूर्ण और दोषहीन समाज-व्यवस्था का ख़ाका तैयार करना न रह गया। जिस ऐतिहासिक-आर्थिक घटनाक्रम से इन वर्गों और उनके विरोध का आवश्यक रूप से जन्म हुआ है, उसकी परीक्षा करना और इस प्रकार से उत्पन्न आर्थिक परिस्थितियों के अंदर से उन साधनों को ढूंढ़ निकालना, जिनसे इस संघर्ष का अंत किया जा सकता है – अब यह समाजवाद का कर्त्तव्य बन गया। परंतु इस भौतिकवादी धारणा से पहले के दिनों के समाजवाद का कोई

मेल न था, उसी प्रकार जैसे फ़्रांसीसी भौतिकवादियों की प्रकृति-संबंधी धारणा का द्वंद्ववाद तथा आधुनिक प्रकृति-विज्ञान के साथ कोई सामंजस्य न था। पहले के समाजवाद ने निस्संदेह अपने काल की पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके दुष्परिणामों की आलोचना की थी। परंतु वह उनके कारणों का निर्देश न कर सका, और इसलिए वह उन पर क़ाबू न पा सका। वह उन्हें बुरा समझकर त्याज्य ही ठहरा सकता था। पुराना समाजवाद पूंजीवाद के अन्तर्गत अनिवार्य मज़दूर वर्ग के शोषण की जितनी ही तीव्र निंदा करता था, उतना ही वह यह समझाने में, स्पष्ट रूप से यह दिखलाने में असमर्थ रहता था कि इस शोषण के मूल तत्त्व क्या हैं और उसका क्या स्रोत है। इसके लिए दो बातें अपेक्षित थीं – (१) पूंजी-वादी उत्पादन-प्रणाली के ऐतिहासिक संबंधों का निर्देश किया जाये, और यह दिखाया जाये कि एक विशेष ऐतिहासिक युग में उसका उत्पन्न होना अनिवार्य था, और इसीलिए उसका पतन भी अवश्यंभावी है; और (२) पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के मौलिक स्वरूप को, जो अभी भी एक रहस्य बना हुआ था, प्रकट किया जाये। **अतिरिक्त मूल्य** की खोज द्वारा यह रहस्योद्घाटन किया गया। यह दिखाया गया कि पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके अन्तर्गत होनेवाले मज़दूर के शोषण का आधार बिना भुगतान किये हुए अथवा अशोधित श्रम का हस्तगतकरण है। और अगर पूंजीपति अपने मज़दूर की श्रम-शक्ति को बाज़ार में बिकनेवाले माल के रूप में पूरा दाम देकर ख़रीदता है, तो भी वह उससे, जितना वह उस पर ख़र्च करता है, उससे अधिक मूल्य निकाल लेता है और अन्ततः इस अतिरिक्त मूल्य से ही मूल्यों के वे परिमाण बनते हैं, जिनसे सम्पत्तिधारी वर्गों के हाथ में निरंतर बढ़ती हुई पूंजी की राशि एकत्र होती जाती है। पूंजीवादी उत्पादन और पूंजी के उत्पादन – दोनों – का स्रोत स्पष्ट हो गया।

इतिहास की भौतिकवादी धारणा, और अतिरिक्त मूल्य द्वारा पूंजीवादी उत्पादन के रहस्य का उद्घाटन – इन दो महान आविष्कारों के लिए हम **मार्क्स** के आभारी हैं। इन आविष्कारों के साथ समाजवाद एक विज्ञान बन गया। अब इसके बाद जो काम था, वह यह कि उसके सभी ब्योरों और संबंधों को निश्चित किया जाये।

३

इतिहास की भौतिकवादी धारणा का प्रस्थान-बिंदु यह प्रस्थापना है कि मनुष्य के पोषण के लिए आवश्यक साधनों का उत्पादन, और उत्पादन के बाद उत्पादित वस्तुओं का विनिमय प्रत्येक सामाजिक व्यवस्था का आधार है; कि

थी, क़ानून की निगाह में माल के मालिकों की समानता और पूंजीवाद के बाक़ी सभी वरदान थे। अब से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली स्वतंत्र रूप से विकसित हो सकती थी। जब से भाप से, मशीनों से और मशीनों को बनानेवाली मशीनों से पुराना मैनुफ़ेक्चर आधुनिक उद्योग में बदला, पूंजीपति वर्ग के निर्देश में उत्पादक शक्तियों ने इस मात्रा में और इतनी तेज़ी के साथ विकास किया कि ऐसा कभी देखा-सुना न गया था। परन्तु अपने समय में जैसे पुराने मैनुफ़ेक्चर की, और उसके प्रभाव से अपेक्षाकृत अधिक विकसित दस्तकारी की, शिल्प-संघों की सामंती बाधाओं से टक्कर हुई थी, उसी प्रकार आज आधुनिक उद्योग का इतना अधिक विकास हो चुका है कि पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली उसे जिन सीमाओं के अंदर बांधे हुए है, उनसे वह टकरा रहा है। नयी उत्पादक शक्तियों के लिए उनका उपयोग करनेवाली पूंजीवादी प्रणाली अभी से ही पुरानी पड़ चुकी है। और उत्पादक शक्तियों तथा उत्पादन-प्रणाली का यह विरोध, आदिम पाप और ईश्वरीय न्याय के विरोध की तरह मनुष्य के मस्तिष्क में घटित होनेवाला विरोध नहीं है। यह विरोध हमारे मानसलोक में नहीं, बाह्य जगत में, वास्तव में विद्यमान है, वह वस्तुगत रूप में स्वयं उन लोगों की इच्छाओं और क्रियाओं से भी स्वतंत्र रूप में विद्यमान है, जिन्होंने उसका सूत्रपात किया है। आधुनिक समाजवाद इस वस्तुगत विरोध के विचारगत प्रतिबिंब के अलावा और कुछ नहीं है। यह विचारगत प्रतिबिंब सबसे पहले उस वर्ग के मानस पर अंकित होता है, जो इस विरोध को प्रत्यक्ष रूप से झेल रहा है, और वह वर्ग है मजदूर वर्ग।

तो फिर इस विरोध का स्वरूप क्या है?

पूंजीवादी उत्पादन से पहले, अर्थात् मध्ययुग में, सब जगह छोटे पैमाने के उद्योग की व्यवस्था प्रचलित थी – गांव में छोटे किसानों की, स्वतंत्र अथवा भूदास किसानों की खेती, शहरों में शिल्प-संघों के अन्तर्गत संगठित दस्तकारी। इस व्यवस्था का आधार था उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का निजी स्वामित्व। भूमि, वर्कशाप, खेती और दस्तकारी के औज़ार – ये सब श्रम के साधन थे, और ये साधन ऐसे थे कि अलग-अलग व्यक्ति ही उनका अलग-अलग इस्तेमाल कर सकते थे, और वे इस व्यक्तिगत उपयोग के अनुरूप ही बनाये गये थे। इस कारण वे अनिवार्य रूप से साधारण, सीमित और लघु थे। परंतु इसी कारण इन साधनों पर साधारणतः उत्पादकों का ही अधिकार होता था। इन सीमित और बिखरे हुए उत्पादन के साधनों को एकत्र और संकेन्द्रित करना, उन्हें विकसित करना, और उत्पादन के आजकल के शक्तिशाली यंत्रों में बदल देना – पूंजीवादी

इतिहास में जितनी सामाजिक व्यवस्थायें हुई हैं, उनमें जिस प्रकार धन का वितरण हुआ है और समाज का वर्गों अथवा श्रेणियों में बंटवारा हुआ है, वह इस बात पर निर्भर रहा है कि उस समाज में क्या उत्पादित हुआ है, और कैसे हुआ है, और फिर उपज का विनिमय कैसे हुआ है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सभी सामाजिक परिवर्तनों और राजनीतिक क्रांतियों के अन्तिम कारण मनुष्य के मस्तिष्क में नहीं, शाश्वत सत्य तथा न्याय के विषय में उसकी गहनतर अन्तर्दृष्टि में नहीं, बल्कि उत्पादन तथा विनिमय-प्रणाली में होनेवाले परिवर्तनों में निहित हैं। उनका पता प्रत्येक युग के **दर्शन** में नहीं, बल्कि **अर्थव्यवस्था** में लगाया जाना चाहिये। अगर लोग अब यह अधिकाधिक अनुभव करने लगे हैं कि वर्तमान सामाजिक संस्थायें अविवेकपूर्ण और अन्यायपूर्ण हैं, और "विवेक अविवेक में बदल गया है, और न्याय अन्याय में,"* तो यह केवल इस बात का प्रमाण है कि उत्पादन तथा विनिमय-प्रणाली में चुपचाप ऐसे परिवर्तन हुए हैं, जिनके साथ पुरानी आर्थिक अवस्थाओं के सांचे में ढली सामाजिक व्यवस्था का मेल नहीं रह गया है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि जो असंगतियां प्रकाश में आयी हैं, उन्हें दूर करने के साधन भी, न्यूनाधिक विकसित रूप में, इन्हीं परिवर्तित उत्पादन-प्रणालियों में निहित होंगे। इन साधनों को मौलिक सिद्धान्तों के निष्कर्ष के रूप में दिमाग़ से नहीं निकाला जा सकता, बल्कि उन्हें वर्तमान उत्पादन व्यवस्था के ठोस तथ्यों में ही पाया जा सकता है।

तब फिर इस संबंध में आधुनिक समाजवाद की स्थिति क्या है?

अब इस बात को प्रायः सभी मानने लगे हैं कि समाज का मौजूदा ढांचा आज के शासक वर्ग, पूंजीपति वर्ग ने ही तैयार किया है। जो उत्पादन-प्रणाली पूंजीपति वर्ग के लिए विशिष्ट है, और जो मार्क्स के समय से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के नाम से जानी जाती है, वह सामंती व्यवस्था से मेल नहीं खाती थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तियों, पूरी सामाजिक श्रेणियों तथा स्थानीय निगमों को दिये जानेवाले जिन विशेषाधिकारों, और ऊंच-नीच के जिन जन्मजात संबंधों से सामंती समाज का ढांचा बनता था, उनसे पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली का कोई सामंजस्य न था। इसलिये पूंजीपति वर्ग ने सामंती व्यवस्था को ढहा दिया और उसके खंडहरों पर पूंजीवादी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया; उसने एक ऐसा राज्य स्थापित किया, जिसमें मुक्त, अबाध होड़ थी, व्यक्तिगत स्वतंत्रता

* 'फ़ाउस्ट' में मेफ़िस्टोफ़ीलीस का कथन। —सं०

श्रम-विभाजन से अधिक शक्तिशाली था। मिलों में एक जन-समुदाय की सम्मिलित सामाजिक शक्ति द्वारा उत्पादन होता था और उनका माल व्यक्तिगत ढंग से उत्पादन करनेवाले छोटे उत्पादकों के माल से कहीं कम लागत पर तैयार होता था। इसका फल यह हुआ कि एक क्षेत्र के बाद दूसरे क्षेत्र में व्यक्तिगत उत्पादन को सामाजिक उत्पादन के आगे झुकना पड़ा। सामाजिक उत्पादन उत्पादन की पुरानी सारी पद्धतियों में क्रांतिकारी परिवर्तन ले आया। परंतु इसके साथ ही, उसके क्रांतिकारी स्वरूप को इतना कम समझा गया कि उलटे उसका उपयोग माल-उत्पादन की वृद्धि तथा विकास के साधन के रूप में किया गया। सामाजिक उत्पादन का जब आरंभ हुआ, तो उसने व्यापारिक पूंजी, दस्तकारी, उजरती श्रम – माल के उत्पादन और विनिमय के कुछ उपकरणों – को पहले से मौजूद पाया और उनका खुलकर इस्तेमाल किया। इस प्रकार, माल-उत्पादन के एक नये रूप में ही सामाजिक उत्पादन का जन्म हुआ, इसलिए स्वभावतः उसके अंतर्गत उपज के हस्तगतकरण का पुराना रूप अविकल चलता रहा, और उसे सामाजिक उत्पादन की उपज पर भी लागू किया गया।

मध्ययुग में माल-उत्पादन के विकास की जो अवस्था थी, उसमें इस बात का प्रश्न नहीं उठ सकता था कि श्रम की पैदावार का मालिक कौन है। आम तौर से होता यह था कि व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवाला आदमी अपने कच्चे माल से, जो अकसर उसका ही उपजाया या बनाया होता था, अपने औज़ारों से और अपने या अपने परिवार की मेहनत से उसे पैदा करता था। इसलिए उसके लिए इस नयी उपज को अपने अधिकार में करने की ज़रूरत न थी, क्योंकि वह कुदरती तौर पर उसका सोलहों आना मालिक था। उपज पर उसके स्वामित्व का आधार उसका **अपना श्रम** था। जहां बाहरी सहायता ली भी जाती थी, वह साधारणतः गौण होती, और उसके बदले में सामान्यतः मज़दूरी के अलावा और कुछ दिया जाता था – शिल्प-संघों के मज़दूर-कारीगर और शागिर्द उतना भोजन-वस्त्र तथा मज़दूरी के लिए काम नहीं करते थे, जितना शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से, ताकि वे स्वयं भी दस्तकार-मालिक बन सकें।

इसके बाद बड़े-बड़े वर्कशापों और कारख़ानों में उत्पादन के साधनों और उत्पादकों का संकेंद्रण और सचमुच उत्पादन के समाजीकृत साधनों में और समाजीकृत उत्पादकों में रूपांतरण हुआ। परंतु इस परिवर्तन के बाद भी समाजीकृत उत्पादकों, उत्पादन के साधनों तथा उनकी उपज के प्रति दृष्टिकोण में अंतर नहीं आया, अर्थात् पहले की ही तरह वे उत्पादन के व्यक्तिगत साधन और व्यक्तिगत

उत्पादन की ओर उसका झंडा उठाकर चलनेवाले पूंजीपति वर्ग की ठीक यही ऐतिहासिक भूमिका थी। 'पूंजी' के चौथे भाग में मार्क्स ने तफ़सील से समझाया है कि किस तरह पंद्रहवीं शताब्दी से यह ऐतिहासिक परिवर्तन विकास की तीन अवस्थाओं से होकर पूरा हुआ है। ये अवस्थाएं हैं–साधारण सहयोग, मैनुफ़ेक्चर और आधुनिक उद्योग। परंतु वहीं पर मार्क्स ने यह भी दिखाया है कि पूंजीपति वर्ग उत्पादन के इन तुच्छ साधनों को विराट उत्पादक शक्तियों में तभी बदल सकता था, जब वह, इसके साथ ही, उत्पादन के व्यक्तिगत साधनों को **सामाजिक** साधनों में बदल डाले, जिनका उपयोग **जनसमूह** द्वारा ही हो सकता हो। चरखे, करघे और लोहार के हथौड़े का स्थान कातने और बुननेवाली मशीनों और भाप घन ने ले लिया; जहां दस्तकार का अपना वर्कशाप था, वहां सैकड़ों और हज़ारों मज़दूरों के सहयोग से चलनेवाली मिल खुल गयी। इसी प्रकार उत्पादन भी व्यक्तिगत क्रियाओं के एक क्रम के स्थान पर सामाजिक क्रियाओं का एक क्रम बन गया, और पैदावार का स्वरूप भी व्यक्तिगत न रहकर सामाजिक हो गया। मिलों से जो सूत, कपड़ा या धातु का सामान बनकर निकलता था, उसे तैयार होने से पहले एक के बाद एक बहुत-से मज़दूरों के हाथ से गुज़रना पड़ता था, इसलिए वह उनके सम्मिलित उत्पादन का फल था। कोई भी आदमी उसके बारे में यह न कह सकता था, "**मैंने** इसे बनाया है, यह **मेरे** श्रम का फल है।"

जहां समाज विशेष में उत्पादन का मौलिक रूप वह स्वतःस्फूर्त श्रम-विभाजन होता है, जो किसी पूर्वकल्पित योजना के अनुसार नहीं, बल्कि आप से आप धीरे-धीरे जड़ जमा लेता है, वहां पैदावार **माल** का रूप ले लेती है, जिसके परस्पर विनिमय, क्रय और विक्रय, से ही व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवाले लोग अपनी विविध आवश्यकताओं की पूर्त्ति करते हैं। मध्ययुग में ऐसा ही हुआ करता था। उदाहरण के तौर पर, किसान खेती की उपज को दस्तकार के हाथ बेचता था और उससे दस्तकारी की चीज़ें ख़रीदता था। व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवाले, माल का उत्पादन करनेवाले लोगों के इस समाज में यह नयी उत्पादन-प्रणाली ज़बरदस्ती घुस आती है। जो श्रम-विभाजन आप से आप और **बिना किसी निश्चित योजना के** विकसित हुआ था और पूरे समाज पर छा गया था, उसके स्थान पर अब मिल के अंदर एक **निश्चित योजनानुसार** संगठित श्रम-विभाजन उत्पन्न हुआ। **व्यक्तिगत** उत्पादन के साथ-साथ **सामाजिक** उत्पादन भी चल पड़ा। दोनों का माल एक ही बाज़ार में और इसलिए लगभग एक ही क़ीमत पर बेचा जाता था। परंतु एक निश्चित योजना के अनुसार संगठन स्वतःस्फूर्त

जैसा हमने कहा है, सबसे पहले पूंजीपतियों ने शुरू में ही श्रम के अन्य रूपों के साथ उजरती श्रम को भी बाज़ार में पहले से तैयार पाया। परंतु यह उजरती श्रम अपवाद, गौण, अस्थायी तथा अन्य प्रकार के श्रम का सहायक या पूरक था। समय-समय पर खेतिहर मज़दूर दैनिक मज़दूरी पर काम ज़रूर करता था, लेकिन उसकी चंद बीघे अपनी ज़मीन भी होती थी, जिससे बहरसूरत वह गुज़ारा कर ही सकता था। शिल्प-संघों का संगठन ऐसा था कि आज का मज़दूर-कारीगर कल का मालिक होता था। परंतु जब उत्पादन के साधनों का स्वरूप सामाजिक हो गया और वे पूंजीपतियों के हाथ में एकत्न हो गये, तब यह सारी परिस्थिति बदल गयी। व्यक्तिगत उत्पादक के उत्पादन के साधन और उसकी उपज अधिकाधिक मूल्यहीन होती गयी, और उसके लिए सिवा इसके कोई चारा न रहा कि वह पूंजीपति का मज़दूर बन जाये। अभी तक उजरती श्रम अपवाद, गौण और सहायक था, अब वह समस्त उत्पादन का नियम और आधार बन गया; अभी तक वह अन्य प्रकार के श्रम का पूरक था, लेकिन अब वही मज़दूर का एकमात्न धंधा रह गया। दो-चार दिन उजरत पर काम करनेवाला मज़दूर अब जीवन भर के लिए उजरती मज़दूर बन गया। इसी ज़माने में सामंती व्यवस्था टूटी, सामंती प्रभुओं के नौकर-चाकर काम से निकाल दिये गये, किसान अपने खेतों से बेदख़ल कर दिये गये, और इन सब कारणों से स्थायी रूप से मजूरी पर काम करनेवाले मज़दूरों की संख्या और भी बहुत बढ़ गयी। पूंजीपतियों के हाथों में एकत्न उत्पादन के साधनों से उत्पादक, जिनके पास अपनी श्रम-शक्ति के अतिरिक्त और कुछ न था, संपूर्ण रूप से विच्छिन्न हो गये। **समाजीकृत उत्पादन तथा पूंजीवादी हस्तगतकरण-व्यवस्था की असंगति सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के विरोध के रूप में प्रकट हुई।**

हम देख चुके हैं कि उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवाले माल-उत्पादकों के समाज में घुस आयी थी। ये उत्पादक अपनी उपज का विनिमय करते थे, और इस विनिमय के द्वारा ही उनमें सामाजिक संबंध स्थापित होता था। परंतु माल-उत्पादन पर आधारित प्रत्येक समाज की यह विशेषता होती है कि उत्पादकों का अपने सामाजिक अंतःसंबंधों पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता। हर आदमी उत्पादन के उन साधनों की सहायता से अपने लिए उत्पादन करता है, जो उसे उपलब्ध होते हैं, और उतने ही परिमाण में करता है, जितना विनिमय द्वारा उसकी शेष आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए ज़रूरी होता है। कोई नहीं जानता कि जो वस्तु उसने तैयार की है, वह कितने परिमाण

उपज समझे जाते रहे। अभी तक श्रम की उपज को स्वयं श्रम के साधनों का स्वामी हस्तगत करता था, क्योंकि सामान्यतः यह उसकी अपनी उपज होती थी, और दूसरों से सहायता अपवादस्वरूप ही ली जाती थी। श्रम के साधनों का स्वामी श्रम की उपज को अब भी सदा अपने अधिकार में ले लेता था, यद्यपि अब यह **उसकी अपनी** उपज न रहकर **दूसरों के श्रम** की ही उपज हो गयी थी। इस प्रकार अब जो उपज सामाजिक उत्पादन का फल थी, उसे हस्तगत करनेवाले वे लोग न रह गये, जिन्होंने वस्तुतः उत्पादन के साधनों को सक्रिय किया था और जिन्होंने वस्तुतः माल का उत्पादन किया था, बल्कि **पूंजीपति** हो गये। उत्पादन के साधनों का, और स्वयं उत्पादन का स्वरूप बुनियादी तौर पर सामाजिक हो गया था। परंतु उन्हें उपज के हस्तगतकरण की एक ऐसी व्यवस्था के अधीन किया गया, जिसके लिए अलग-अलग व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत उत्पादन पूर्वमान्य था, और इसलिए, जिसके अन्तर्गत हर आदमी अपनी पैदावार का मालिक होता है और उसे बाज़ार में लाता है। जिन परिस्थितियों पर व्यक्तिगत हस्तगतकरण की यह व्यवस्था टिकी है, सामाजिक उत्पादन-प्रणाली उन्हें नष्ट कर देती है, लेकिन फिर भी उसे इस व्यवस्था के अधीन किया जाता है।*

इसी असंगति ने नयी उत्पादन-प्रणाली को उसका पूंजीवादी रूप दिया, और उसके भीतर ही **आज के सारे सामाजिक विरोधों की जड़ है**। इस नयी उत्पादन-प्रणाली ने उत्पादन के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में और सभी औद्योगिक देशों में जितना अधिक प्रभुत्व स्थापित किया, जितना ही उसने व्यक्तिगत उत्पादन को तुच्छ और महत्त्वहीन बना दिया, इतना तुच्छ कि उसके कुछ अवशेष ही रह गये, — **सामाजिक उत्पादन और पूंजीवादी हस्तगतकरण की असंगति उतने ही स्पष्ट रूप में प्रकाश में आती गयी।**

---

*इस संबंध में यह कहने की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं है कि हस्तगतकरण का **ढंग** वही रहने पर भी, उपरोक्त परिवर्तनों के कारण उसके **स्वरूप** में वैसा ही आमूल परिवर्तन होता है, जैसा उत्पादन में। अपनी पैदावार का मालिक होने और दूसरे की पैदावार का मालिक बन जाने में बहुत फ़र्क़ है। यहां पर क्षण भर के लिए रुककर हम यह भी समझ लें कि उजरती श्रम, जिसके भीतर पूरी पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली बीज रूप में निहित है, बहुत पुरानी चीज़ है; जहां-तहां, बिखरे हुए रूप में, दास-श्रम के साथ ही सदियों तक उसका अस्तित्व भी रहा है। परंतु यह बीज बाक़ायदा पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली में तभी विकसित हो सकता था, जब उसके लिए आवश्यक ऐतिहासिक पूर्वावस्थायें उत्पन्न हो जायें।

जाता था। उनकी औरतें पटुआ, ऊन इत्यादि कातती, बुनती थीं। विनिमय के लिए उत्पादन, माल-उत्पादन, अभी अपनी शैशवावस्था में था। इसलिए विनिमय सीमित था, बाज़ार छोटा था, उत्पादन-प्रणाली स्थिर थी; बाहरी दुनिया से अलगाव, अपने में स्थानीय पैमाने पर एकजुटता; गांव में मार्क* और नगरों में शिल्प-संघ—यह था उस काल का समाज।

परंतु माल-उत्पादन के विस्तार, और विशेष रूप से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के प्रचलन के साथ माल-उत्पादन के नियम, जो अभी तक अप्रकट थे, अधिक प्रत्यक्ष रूप से और अधिक शक्ति के साथ काम करने लगे। पुराने बंधन ढीले पड़े और पुरानी अपवर्जनकारी सीमायें भंग हुईं, और उत्पादक अधिकाधिक स्वतंत्र और एक दूसरे से विच्छिन्न माल-उत्पादकों में बदलते गये। यह स्पष्ट हो गया कि पूरे समाज का उत्पादन योजनानुशासित नहीं है, उसमें आकस्मिकता और अराजकता छायी हुई है, और यह अराजकता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। लेकिन जिस प्रधान साधन की सहायता से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली ने इस अराजकता को तीव्र किया, वह अराजकता का ठीक उलटा था। वह प्रत्येक उत्पादन-संस्थान में उत्पादन का एक सामाजिक आधार पर बढ़ता हुआ संगठन था। इस तरह पुरानी, शांतिपूर्ण, स्थिर अवस्था का अंत हो गया। जहां भी उद्योग की किसी शाखा में उत्पादन के इस संगठन का प्रवेश हुआ, उसने अपने निकट उत्पादन की अन्य किसी प्रणाली को ठहरने नहीं दिया। श्रम का क्षेत्र रणक्षेत्र बन गया। महान भौगोलिक खोजों ने,[113] और फलस्वरूप नये-नये प्रदेशों की आबादकारी ने बाज़ारों को कई गुना बढ़ा दिया, और जिस रफ़्तार से दस्तकारी मैनुफ़ेक्चर में बदल रही थी, उसे बहुत तेज़ कर दिया। भिन्न-भिन्न स्थानों के अलग-अलग उत्पादकों में ही संघर्ष नहीं छिड़ा, इन स्थानीय संघर्षों ने अपनी बारी में राष्ट्रीय संघर्षों को, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के व्यापारिक युद्धों को जन्म दिया।

अंत में आधुनिक उद्योग और विश्व बाज़ार की स्थापना ने इस संघर्ष को विश्वव्यापी बना दिया और साथ ही उसे इतना उग्र कर दिया, जैसा पहले कभी देखा-सुना नहीं गया था। भिन्न-भिन्न पूंजीपतियों का और साथ ही समूचे उद्योगों और देशों का जीना-मरना इस बात पर निर्भर हो गया कि उत्पादन की प्राकृतिक अथवा कृत्रिम अवस्थाओं के संबंध में किसे अधिक सुविधा प्राप्त है। इस संघर्ष

---

*पुस्तक के अंत में परिशिष्ट देखिये। [एंगेल्स यहां अपनी कृति 'मार्क' की ओर संकेत कर रहे हैं, जो इस संस्करण में शामिल नहीं है।—सं०]

में बाज़ार में आ रही है, या कितने परिमाण में उसकी आवश्यकता होगी। कोई नहीं जानता कि उसके माल की दरअसल मांग होगी कि नहीं, वह बिकेगा या नहीं, या बिकने पर उसकी लागत भी निकल सकेगी कि नहीं। सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में अराजकता का राज होता है।

परन्तु हर उत्पादन-प्रणाली की तरह माल-उत्पादन के भी अपने विशेष नियम हैं, जो उसमें अंतर्निहित हैं और उससे अलग नहीं किये जा सकते हैं, और ये नियम अराजकता के बावजूद, इसी अराजकता में और अराजकता के द्वारा अपनी क्रिया सम्पन्न करते हैं। ये नियम समाज के पारस्परिक अंतःसंबंधों के एकमात्र स्थायी रूप, विनिमय, में प्रगट होते हैं, और इस क्षेत्र में होड़ के अनिवार्य नियमों के रूप में व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवालों को प्रभावित करते हैं। पहले उत्पादक स्वयं इन नियमों से अपरिचित रहते हैं, धीरे-धीरे, अनुभव के बाद ही वे जाने जाते हैं। इसलिए वे उत्पादकों से स्वतंत्र और उनके विरोध में, उनकी विशिष्ट उत्पादन-प्रणाली के कठोर, प्राकृतिक नियमों के रूप में क्रियान्वित होते हैं। उपज उत्पादक को शासित करती है।

मध्ययुगीन समाज में, विशेषकर उसकी आरंभिक शताब्दियों में, उत्पादन मूलतः अलग अलग व्यक्तियों की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए होता था। उससे मुख्य रूप में उत्पादक और उसके परिवार की आवश्यकताओं की पूर्त्ति होती थी। जहां व्यक्तिगत अधीनता के संबंध थे, जैसे गांवों में, वहां वह सामंती अधिपति की आवश्यकताओं की पूर्त्ति में भी सहायक होता था। इसलिए यहां विनिमय का कोई स्थान न था और उपज माल का रूप धारण नहीं करती थी। किसान-परिवार को जिन चीज़ों की ज़रूरत होती थी—कपड़े, कुर्सी-मेज़ और साथ ही जीविका के साधन, प्रायः इन सब को वह ख़ुद तैयार कर लेता था। हां, उसकी अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए और सामंती अधिपति को जिंस के रूप में अदायगी के लिए जितना यथेष्ट था, जब वह उससे अधिक उत्पादन करने लगा, तभी उसने माल का भी उत्पादन किया। उसकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के बाद अतिरिक्त वस्तु जब सामाजिक विनिमय के लिए, विक्रय के लिए बाज़ार में आयी, तब उसने माल का रूप धारण कर लिया।

यह सच है कि शहरों के दस्तकारों को शुरू से ही विनिमय के लिए उत्पादन करना पड़ा। परंतु वे भी अपनी निजी आवश्यकताओं का सबसे अधिक भाग स्वयं पूरा कर लेते थे। उनके पास बगीचे और छोटे-मोटे खेत होते थे। वे अपने मवे-शियों को पंचायती जंगलों में छोड़ देते, जिनसे उन्हें लकड़ी और ईंधन भी मिल

सेना काम के लिए उपलब्ध रहती है, लेकिन जब अनिवार्य रूप से मंदी आती है, तो उसे बेकार बना दिया और दर-दर भटकने पर मजबूर किया जाता है। पूंजी के साथ अपने अस्तित्व के लिए मजदूर वर्ग के संघर्ष में यह रिज़र्व सेना उसके पांव की बेड़ी है, मज़दूरी को उस नीची सतह पर, जो पूंजी के हितों के अनुकूल है, क़ायम रखने का नियामक साधन है। इस तरह, मार्क्स के शब्दों में, होता यह है कि मशीन मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ पूंजी की लड़ाई में सबसे ज़बरदस्त हथियार बन जाती है; श्रम के साधन सदा मज़दूर के हाथ से उसकी रोटी छीन लेते हैं, और मज़दूर की उपज ही उसकी दासता का एक अस्त्र बन जाती है।* इस तरह होता यह है कि श्रम के साधनों में बचत श्रम-शक्ति की भयंकर बरबादी और जिन सामान्य परिस्थितियों में मज़दूर काम करते हैं, उन्हीं के आधार पर की जानेवाली चोरी बन जाती है।** इस तरह मशीन, जो श्रम-काल को कम करने का सबसे शक्तिशाली साधन है, मज़दूर और उसके परिवार के समय के प्रत्येक क्षण को पूंजी के मूल्य में वृद्धि के लिए पूंजीपति के अधीन करने का सबसे सफल साधन बन जाती है। इस तरह होता यह है कि कुछ लोगों का अतिश्रम दूसरों की बेकारी की पहली शर्त बन जाता है, और आधुनिक उद्योग, जो नये उपभोक्ताओं की खोज में सारी दुनिया की ख़ाक छानता है, अपने देश की जनता के उपभोग को निम्नतम स्तर पर, भुखमरी की हद पर पहुंचा देता है, और इस तरह अपने देश के बाज़ार को ही चौपट कर डालता है। "वह नियम, जो सापेक्ष अतिरिक्त जन-संख्या या औद्योगिक रिज़र्व सेना का [पूंजी के] संचय के विस्तार और तेजी के साथ सदा संतुलन स्थापित किया करता है, मज़दूर को पूंजी के साथ इतनी मज़बूती के साथ जड़ देता है, जितनी मज़बूती के साथ वलकन की बनायी हुई कीलें भी प्रोमीथियस को चट्टान के साथ नहीं जड़ सकी थीं। पूंजी के संचय के साथ-साथ इस नियम के फलस्वरूप ग़रीबी का भी संचय होता जाता है। इसलिये, यदि एक छोर पर धन का संचय होता है, तो उसके साथ-साथ दूसरे छोर पर, यानी उस वर्ग के छोर पर, जो **ख़ुद अपने श्रम की पैदावार को पूंजी के रूप में तैयार करता है**, ग़रीबी, यातनापूर्ण परिश्रम, दासता, अज्ञान, पाशविकता और मानसिक पतन का संचय होता जाता है" (मार्क्स, 'पूंजी',

---

*कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', खंड १, पृ० ४६३–५४६।—सं०

**वही, पृ० ५२२।—सं०

में जो गिरा, वह गया, उसे बेरहमी के साथ रास्ते से हटा दिया जाता है। अपने अपने अस्तित्व के लिए जिस संघर्ष की कल्पना डार्विन ने की थी, वह और भी प्रचंड रूप धारण कर प्रकृति से समाज के क्षेत्र में अंतरित हो जाता है। जीवन की वे अवस्थायें, जो पशुओं के लिए स्वाभाविक हैं, मानवीय विकास की अंतिम सीमा प्रतीत होती हैं। सामाजिक उत्पादन और पूंजीवादी हस्तगतकरण की असंगति अब **अलग-अलग कारखानों में उत्पादन के संगठन और पूरे समाज में उत्पादन की अराजकता के विरोध** के रूप में प्रकट होती है।

पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली में आरंभ से ही जो विरोध अंतर्निहित है, यह प्रणाली उसके इन्हीं दो रूपों के चक्र में घूमती है। यह उत्पादन-प्रणाली उस "दुष्ट चक्र" के बाहर निकलने में असमर्थ है, जिसका फ़ुरिये ने पहले ही पता लगा लिया था। अवश्य ही अपने समय में फ़ुरिये यह नहीं देख सके थे कि यह चक्र निरंतर संकुचित होता जाता है, उसकी गति अधिकाधिक सर्पिल होती जाती है और ग्रहों की गति ही की तरह केंद्र से टकराकर उसका अंत हो जाना निश्चित है। पूरे समाज के उत्पादन में फैली अराजकता की आग्रहकारी शक्ति ही ज्यादातर आदमियों को दिन-ब-दिन ज्यादा मुकम्मल तौर पर सर्वहारा बना रही है, और ये सर्वहारा जन ही अन्ततः उत्पादन की इस अराजकता को मिटा देंगे। सामाजिक उत्पादन में फैली अराजकता की आग्रहकारी शक्ति ही आधुनिक उद्योग के अंतर्गत मशीनों के असीम विकास की संभावनाओं को एक अनुल्लंघनीय नियम का रूप देती है, जिसके अनुसार प्रत्येक औद्योगिक पूंजीपति को अपनी मशीनों को उत्तरोत्तर उन्नत करना है, और नहीं तो बरबाद हो जाना है।

परंतु मशीनों की यह उन्नति मानव-श्रम को अनावश्यक बनाये दे रही है। अगर मशीनों के चलने और बढ़ने का मतलब यह है कि मशीन से काम करनेवाले थोड़े-से मज़दूर हाथ से काम करनेवाले लाखों मज़दूरों की जगह ले लेते हैं, तो मशीनों के सुधार और उन्नति का मतलब यह है कि मशीन से काम करनेवाले य मज़दूर स्वय अधिकाधिक संख्या में विस्थापित होते जाते हैं। और अन्ततः इसका मतलब यह है कि औसत तौर पर पूंजी के लिये जितने मज़दूरों की ज़रूरत है, मज़दूरी पर काम करने के लिए तैयार मज़दूर उनसे ज्यादा हो जाते हैं, यानी जैसा मैंने १८४५ में* कहा था एक पूरी औद्योगिक रिज़र्व सेना का निर्माण हो जाता है। जब उद्योग तेज़ी के साथ काम करता होता है, तब तो यह रिज़र्व

*'इंगलैंड में मज़दूर वर्ग की स्थिति', पृ० १०६।

मिलें बंद हो जाती हैं, और आम मजदूर जीविका के साधनों से वंचित हो जाते हैं, क्योंकि उन्होंने जीविका के साधनों का अत्यधिक उत्पादन कर डाला है; दिवाले के बाद दिवाला निकलता है, नोलाम के बाद नीलाम होता है। यह निष्क्रियता सालों तक रहती है, उत्पादक शक्तियों और उपज की बरबादी होती है, उन्हें बड़े पैमाने पर नष्ट किया जाता है, और यह क्रम तब तक चलता रहता है, जब तक कि ढेर का ढेर जमा माल न्यूनाधिक कम मूल्य पर खपा न दिया जाये, जब तक कि उत्पादन और विनिमय में धीरे-धीरे फिर गति न आये। धीरे-धीरे रफ़्तार तेज़ होती है। फिर चाल दुलकी हो जाती है, और उद्योग की यह दुलकी चाल पोइया में और पोइया बेतहाशा दौड़ में, उद्योग, व्यापारिक साख और सट्टेबाज़ी की एक पूरी घुड़दौड़ में बदल जाती है, और यह घुड़दौड़ ख़तरनाक छलांगों के बाद वहीं ख़त्म होती है, जहां से वह शुरू हुई थी – संकट के गड्ढे में। और यह क्रम बार-बार दुहराया जाता है। १८२५ से अब तक हम पांच बार इस दौर से गुज़र चुके हैं और इस समय (१८७७) हम छठी बार उससे गुज़र रहे हैं। और इन संकटों का स्वरूप इतना स्पष्ट है कि जब फ़ुरिये ने पहले संकट के बारे में कहा था कि वह crise pléthorique, यानी आधिक्य का संकट है, तो उन्होंने उन सबों के बारे में बिल्कुल पते की बात कह दी थी।

इन संकटों में सामाजिक उत्पादन और पूंजीवादी हस्तगतकरण-व्यवस्था के विरोध का अंत एक भयानक विस्फोट में होता है। माल का चलन कुछ समय के लिए रुक जाता है। मुद्रा, जो इस चलन का साधक है, अब बाधक बन जाती है। माल के उत्पादन तथा वितरण के सारे नियम उलट-पुलट जाते हैं। आर्थिक टक्कर अपने चरम बिन्दु पर पहुंच जाती है – **उत्पादन-प्रणाली विनिमय-प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह कर देती है।**

मिल के भीतर उत्पादन का सामाजिक संगठन इस हद तक विकसित हो जाता है कि सामाजिक उत्पादन में फैली अराजकता के साथ – यह अराजकता इस संगठन के साथ-साथ रहती है और उसके ऊपर हावी रहती है – उसका बिल्कुल सामंजस्य नहीं रह जाता। इन संकटों में बहुत-से बड़े और उनसे भी ज़्यादा छोटे पूंजीपतियों के चौपट हो जाने से पूंजी का जो बहुत तेज़ी से संकेन्द्रण होता है, उससे स्वयं पूंजीपति इस बात को अच्छी तरह समझ जाते हैं। पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली से जो उत्पादक शक्तियां उत्पन्न होती हैं, उनके ज़ोर दबाव से इस प्रणाली का पूरा ढांचा टूट जाता है। यह प्रणाली अब उत्पादन के साधनों के इस पूरे ढेर को पूंजी में परिणत नहीं कर पाती। वे बेकार पड़े रहते हैं और

पृ० ६७१)।* उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली से उपज के किसी दूसरे बंटवारे की आशा करना वैसे ही व्यर्थ है, जैसे किसी बैटरी के इलेक्ट्रोडों से यह आशा करना कि जब तक बैटरी से उनका सम्पर्क बना हुआ है, वे अम्लीकृत जल के परमाणुओं को विलग नहीं करेंगे, और धनछोर पर आक्सीजन तथा ऋणछोर पर हाइड्रोजन उन्मुक्त नहीं करेंगे।

हम देख चुके हैं कि सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में फैली अराजकता के कारण आधुनिक मशीनों के विकास की निरंतर बढ़ती हुई संभावना एक अनिवार्य नियम में बदल जाती है, जो प्रत्येक औद्योगिक पूंजीपति को इसके लिए विवश करता है कि वह अपनी मशीनों को बराबर सुधारता रहे और उनकी उत्पादक शक्ति को बराबर बढ़ाता रहे। उत्पादन के क्षेत्र का विस्तार करने की संभावना मात्र उसके लिए इसी तरह के एक अनिवार्य नियम में बदल जाती है। आधुनिक उद्योग की प्रचंड प्रसार-शक्ति, जिसके आगे गैसों की प्रसार-शक्ति बच्चों का खेल है, हमें गुण और परिमाण, दोनों में वृद्धि की अनिवार्य **आवश्यकता** प्रतीत होती है। और यह आवश्यकता ऐसी है कि वह सारी बाधाओं का जैसे उपहास करती है। उपभोग, बिक्री, आधुनिक उद्योग की पैदावार के बाज़ार ये बाधायें खड़ी करते हैं। परंतु बाज़ारों के बढ़ने की व्यापक और गहन क्षमता मुख्यतया बिल्कुल दूसरे ही नियमों से शासित होती है, जो कहीं कम तेज़ी से कार्य करते हैं। बाज़ार का प्रसार उत्पादन के प्रसार के साथ क़दम नहीं मिला पाता। दोनों में टक्कर होना लाज़िमी हो जाता है, पर चूंकि जब तक इस टक्कर से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली ही चूर-चूर न हो जाये, उससे कोई वास्तविक समाधान नहीं निकल सकता, इसलिए यह टक्कर समय के एक निश्चित व्यवधान से बार-बार होती रहती है। पूंजीवादी उत्पादन एक नया "दुष्ट चक्र" उत्पन्न कर देता है।

वास्तव में १८२५ से, जब पहली बार आम आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ था, हर दसवें वर्ष समस्त औद्योगिक तथा व्यापारिक जगत, तमाम सभ्य जातियों और उनके अधीन रहनेवाले न्यूनाधिक बर्बर लोगों का उत्पादन और विनिमय अव्यवस्थित हो जाता है। व्यापार ठप हो जाता है, बाज़ार माल से पट जाता है, पैदावार जमा होने लगती है, और जितना ही उसे बेचना मुश्किल होता है, उतना ही उसके ढेर लगते जाते हैं, नक़द पैसा ग़ायब हो जाता है, साख मिट जाती है,

* कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', खण्ड १, पृ० ७२२।–सं०

उद्देश्य से एक "ट्रस्ट" में, एक संघ में एकजुट हो जाते हैं। वे यह निश्चित करते हैं कि कुल कितना उत्पादन करना है, उसे अपने बीच में बांट लेते हैं, और इस प्रकार वे पहले से ही निश्चित बिक्री की दर लागू कर देते हैं। लेकिन व्यापार के मंद होने के साथ इस तरह के ट्रस्ट साधारणतः टूट जाते हैं, और इसी कारण वे संगठन के एक और संकेन्द्रित रूप को आवश्यक बना देते हैं। एक विशेष उद्योग, पूरा का पूरा, एक विराट ज्वाइंट स्टाक कम्पनी में बदल दिया जाता है, आंतरिक होड़ का स्थान इस एक कम्पनी का आंतरिक एकाधिकार ले लेता है। १८९० में इंगलैंड के क्षार-उत्पादन के साथ यही बात हुई। ४८ बड़े-बड़े कारखानों के एक में मिल जाने के बाद अब क्षार का सारा उत्पादन एक कम्पनी के हाथ में है, जिसमें ६०,००,००० पौंड की पूंजी लगी हुई है, और जिसका एक विशेष योजना के अनुसार संचालन होता है।

ट्रस्टों में होड़ की स्वतंत्रता ठीक उलटी चीज़ में, यानी एकाधिकार में बदल जाती है, और पूंजीवादी समाज का योजनाहीन उत्पादन आनेवाले समाजवादी समाज के योजनाबद्ध उत्पादन के सम्मुख हार मान लेता है। निस्संदेह अभी तक पूंजीपतियों को इससे फ़ायदा ही फ़ायदा है। परंतु अब इस स्थिति में शोषण इतना प्रत्यक्ष है कि उसका अंत निश्चित है। कोई भी राष्ट्र यह सहन नहीं करेगा कि उत्पादन इन ट्रस्टों के हाथ में रहे और मुट्ठी भर मुनाफ़ाख़ोर समाज का नग्न रूप से शोषण करें।

जो भी हो, ट्रस्ट हों या न हों, पूंजीवादी समाज के अधिकृत प्रतिनिधि – राज्य – को अन्ततः उत्पादन का संचालन अपने हाथ में लेना होगा*। राज्य-

*मैं कहता हूं: "**लेना होगा।**" कारण, जब उत्पादन और परिवहन के साधन **वास्तव में** इतने विकसित हो जाते हैं कि ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों द्वारा प्रबंध उनके लिए अपर्याप्त हो जाता है, और इसलिए जब राज्य का उन्हें अपने हाथ में लेना **आर्थिक दृष्टि से** अनिवार्य हो जाता है, तभी – चाहे आज का ही राज्य उन्हें अपने हाथ में ले – यह आर्थिक प्रगति होगी, एक आगे बढ़ा हुआ क़दम होगा, समस्त उत्पादक शक्तियों पर समाज के अधिकार-स्थापन की भूमिका होगा। मगर हाल में, जब से बिस्मार्क ने उद्योग-संस्थाओं पर राज्य के स्वामित्व की नीति अपनायी है, तब से एक तरह के नक़ली समाजवाद का उदय हुआ है, जो कभी-कभी पतित होकर बहुत कुछ चाटुकारिता का रूप ले लेता है और झटपट यह फ़तवा दे डालता है कि राज्य द्वारा **कोई भी** स्वामित्व, चाहे वह बिस्मार्क मार्का ही क्यों न हो, समाजवादी है। अगर राज्य का तम्बाकू के उद्योग को अपने हाथ में लेना समाजवाद है, तो समाजवाद के संस्थापकों में नेपोलियन

इसीलिए औद्योगिक रिज़र्व सेना को भी बेकार ही रहना पड़ता है। उत्पादन के साधन, जीविका के साधन, काम करने के लिए तैयार मज़दूर, उत्पादन के तथा सामान्य समृद्धि के सभी उपकरण और तत्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। परंतु यह "प्रचुरता ही दुःख और अभाव का कारण बन जाती है" (फ़ुरिये); क्योंकि इस प्रचुरता के ही कारण उत्पादन और जीविका के साधन पूंजी का रूप नहीं ले पाते। कारण, पूंजीवादी समाज में उत्पादन के साधन जब तक पहले ही पूंजी में, मानवीय श्रम-शक्ति का शोषण करने के साधन में न बदल दिये जायें, वे कार्य नहीं कर सकते। उत्पादन और जीविका के साधनों को पूंजी में परिणत करने की अनिवार्य आवश्यकता इन साधनों और मज़दूरों के बीच पिशाच की तरह खड़ी है। यह आवश्यकता ही उत्पादन के भौतिक और मानवीय उत्तोलकों के एकत्र होने में बाधक है, वही उत्पादन के साधनों को क्रियाशील होने से और मज़दूरों को काम करने और ज़िंदा रहने से रोकती है। इसलिए एक ओर तो यह पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली इन उत्पादक शक्तियों का और परिचालन करने में असमर्थ होने से स्वयं दोषी ठहरती है। दूसरी ओर, ये उत्पादक शक्तियां स्वयं ज़्यादा से ज़्यादा तेज़ी के साथ इस बात के लिए ज़ोर डालती हैं कि वर्तमान असंगतियों को दूर किया जाये, पूंजी के रूप में उनकी स्थिति का अंत किया जाये, और **व्यवहारतः यह मान लिया जाये कि वे सामाजिक उत्पादक शक्तियों का चरित्र रखती हैं।**

उत्पादक शक्तियों का, जैसे-जैसे वे शक्तिशाली होती जाती हैं, पूंजी के रूप में अपनी स्थिति के विरुद्ध यह विद्रोह, उनका सामाजिक स्वरूप स्वीकार किये जाने का उनका यह अधिकाधिक कठोर आदेश स्वयं पूंजीपति वर्ग को, पूंजीवादी परिस्थिति में जहां तक यह संभव है, उनके साथ सामाजिक उत्पादक शक्तियों के रूप में अधिकाधिक व्यवहार करने के लिए बाध्य करता है। औद्योगिक तेज़ी के दौर में, जब उधार का असीम विस्तार होता है, और उसी तरह मंदी के दौर में, जब बड़े-बड़े पूंजीवादी कारोबार चौपट हो जाते हैं, उत्पादन के साधनों की वृहत राशियों के समाजीकरण का वह रूप उत्पन्न होता है, जो हमें विभिन्न प्रकार की ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों में दिखाई देता है। उत्पादन और परिवहन के इन साधनों में से बहुत-से आरंभ से ही इतने विराट होते हैं कि रेलवे की ही तरह उनमें पूंजीवादी शोषण का कोई अन्य रूप चल ही नहीं सकता। विकास की एक और उन्नत अवस्था में यह रूप भी अपर्याप्त हो जाता है। किसी विशेष देश की किसी विशेष शाखा के बड़े-बड़े उत्पादक उत्पादन का नियमन करने के

है, जिसे पूंजीवादी समाज ग्रहण करता है, ताकि पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली की बाह्य परिस्थितियों को मजदूरों तथा अलग-अलग पूंजीपतियों की अनधिकार चेष्टा से बचाकर क़ायम रखा जा सके। आधुनिक राज्य, उसका स्वरूप कुछ भी हो, मूलतः एक पूंजीवादी मशीन है, वह पूंजीपतियों का राज्य है, समस्त राष्ट्र का आदर्श पूंजीपति है। जितना ही वह उत्पादक शक्तियों को अपने हाथ में लेता है, उतना ही वह वास्तव में राष्ट्रीय पूंजीपति बनता जाता है, और उतने ही अधिक नागरिकों का वह शोषण करता है। मजदूर उजरती मजदूर ही, सर्वहारा बने रहते हैं। पूंजीवादी संबंध का अंत नहीं होता, बल्कि कहना चाहिए, उसे चरम सीमा पर पहुंचा दिया जाता है। पर इस सीमा पर पहुंचकर यह संबंध ढह जाता है। उत्पादक शक्तियों पर राज्य का अधिकार हो जाने से विरोध का समाधान नहीं हो जाता, परंतु इसमें वे प्राविधिक अवस्थायें छिपी हुई हैं, जिनसे इस समाधान के तत्त्व बनते हैं।

यह समाधान यही हो सकता है कि आधुनिक उत्पादक शक्तियों के सामाजिक स्वरूप को व्यावहारिक रूप में स्वीकार कर लिया जाये और उत्पादन, हस्तगतकरण तथा विनिमय की प्रणालियों का उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वरूप के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाये। और यह तभी हो सकता है, जब समाज सीधे और प्रत्यक्ष रूप में उत्पादक शक्तियों पर, जो इतनी अधिक विकसित हो चुकी हैं कि पूरे समाज के नियंत्रण में ही रह सकती हैं, अधिकार स्थापित करे। उत्पादन के साधनों तथा उपज का सामाजिक स्वरूप आज उत्पादकों पर प्रतिघात कर रहा है, समय-समय पर वह उत्पादन और विनिमय को छिन्न-भिन्न कर देता है और प्रकृति के एक अंध, अनिवार्य और विध्वंसक नियम की तरह ही अपना असर डालता है। लेकिन जब समाज उत्पादक शक्तियों को अपने हाथ में ले लेगा, तब उत्पादक उत्पादन के साधनों और उपज के सामाजिक स्वरूप का उपयोग उसकी प्रकृति की पूरी समझ के साथ करेंगे, और तब वह विश्रृंखलता और समय-समय पर विघटन का कारण न रहकर स्वयं उत्पादन का सबसे शक्तिशाली उत्तोलक बन जायेगा।

ठीक प्राकृतिक शक्तियों की ही तरह सक्रिय सामाजिक शक्तियां भी, जब तक हम उन्हें समझते नहीं और उनका ध्यान नहीं रखते, अंध, बलात् और विध्वंसक रूप से कार्य करती हैं। लेकिन एक बार जब हम उन्हें समझ लेते हैं, उनकी क्रिया, उनकी दिशा, उनके परिणामों को ग्रहण कर लेते हैं, तब उन्हें अधिकाधिक अपनी इच्छा के अधीन करना और उनके द्वारा अपने उद्देश्यों को

सम्पत्ति में रूपांतरण की यह आवश्यकता, सबसे पहले डाक, तार, रेल, आदि अंत:संपर्क और संचार के विशाल संस्थाओं में अनुभव की जाती है।

अगर इन संकटों ने यह दिखा दिया है कि पूंजीपति वर्ग आधुनिक उत्पादक शक्तियों का प्रबंध करने में अब और समर्थ नहीं है, तो उत्पादन और परिवहन की बड़ी-बड़ी संस्थाओं के ज्वाइंट स्टाक कम्पनी, ट्रस्ट और राज्य-सम्पत्ति के रूप में बदले जाने से यह ज़ाहिर हो जाता है कि इस काम के लिए पूंजीपति वर्ग कितना अनावश्यक है। पूंजीपतियों के सभी सामाजिक कर्त्तव्य आज वेतनभोगी कर्मचारियों द्वारा संपन्न होते हैं। अब पूंजीपतियों की सामाजिक भूमिका इस बात में ही रह गयी है कि वे नफ़े की रक़म से अपनी जेबें भरें, चेक काटें और शेयर बाज़ार में, जहां एक पूंजीपति दूसरे पूंजीपति की पूंजी पर हाथ साफ़ करता है, जुआ खेलें। पहले उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली मज़दूरों को बेकार बना देती थी। अब वह मज़दूरों की तरह पूंजीपतियों को भी बेकार बना देती है, उन्हें एकदम औद्योगिक रिज़र्व सेना में तो नहीं, लेकिन फ़ालतू आबादी की श्रेणी में अवश्य डाल देती है।

परंतु ज्वाइंट स्टाक कम्पनी, ट्रस्ट अथवा राज्य-सम्पत्ति में रूपान्तरण का यह अर्थ नहीं है कि इससे उत्पादक शक्तियों का पूंजीवादी स्वरूप मिट जाता है। ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों और ट्रस्टों के बारे में तो यह ज़ाहिर ही है। और जहां तक आधुनिक राज्य का संबंध है, वह और कुछ नहीं, एक ऐसा संगठन

और मेट्रनिख़ की भी गिनती होनी चाहिए। अगर बेल्जियम की सरकार ने अत्यंत साधारण राजनीतिक और आर्थिक कारणों से अपनी मुख्य रेल लाइनों का स्वयं निर्माण किया है; अगर बिस्मार्क ने बिना किसी आर्थिक विवशता के प्रशा की मुख्य रेल लाइनों को राज्य के नियंत्रण में ले लिया है—सिर्फ़ इसलिए कि युद्ध की अवस्था में वह ज़्यादा सहूलियत के साथ उन्हें अपने अधिकार में रख सके, मूक पशुओं की तरह रेल कर्मचारियों से सरकार के लिए वोट दिलवा सके, और ख़ासकर अपने लिए आमदनी का एक ऐसा ज़रिया निकाल सके, जो संसद के वोटों पर निर्भर न हो—तो यह किसी भी अर्थ में, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, जान-बूझकर या अनजान में, समाजवादी कार्य नहीं है। नहीं तो हमें शाही Seehandlung[114], चीनी मिट्टी के शाही उद्योग और यहां तक कि फ़ौज के रेजीमेंटल सिलाई-विभाग को भी समाजवादी संस्था मानना होगा। यही नहीं, राज्य द्वारा वेश्यालयों पर अधिकार-स्थापन को भी, जिसका प्रस्ताव फ़्रेडरिक-विल्हेल्म तृतीय के राज्य-काल में एक कांइयां आदमी ने गंभीरतापूर्वक किया था, समाजवाद मानना होगा।

है और राज्य के रूप में राज्य को भी समाप्त कर देता है। अभी तक समाज वर्ग-विरोधों पर आधारित था, इसलिए उसे राज्य की आवश्यकता थी, अर्थात् उसे एक विशेष वर्ग के, अपने समय के शोषक वर्ग के एक ऐसे संगठन की आवश्यकता थी, जिसका उद्देश्य था उत्पादन की बाह्य परिस्थितियों को बनाये रखना, और विशेष रूप से जिसका उद्देश्य था शोषित वर्गों को जबरदस्ती उत्पीड़न की उस अवस्था में रखना, जो अपने समय की उत्पादन-प्रणाली (दास-प्रथा, भूदासता, उजरती श्रम) के अनुरूप हो। राज्य पूरे समाज का अधिकृत प्रतिनिधि था, उसकी सूत्रबद्धता का दृश्यमान प्रतिरूप था। परंतु वह पूरे समाज का प्रतिनिधि उसी हद तक था, जिस हद तक वह उस वर्ग का राज्य था, जो स्वयं उस समय पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करता था—प्राचीन काल में दासस्वामी नागरिकों का, मध्ययुग में सामंती प्रभुओं का, और हमारे ज़माने में पूंजीपतियों का राज्य। अन्ततः जब वह सचमुच पूरे समाज का वास्तविक प्रतिनिधि होता है, तब वह अनावश्यक भी हो जाता है। जब ऐसा सामाजिक वर्ग ही न रहे, जिसे अधीन रखना है, जब वर्ग-शासन और उत्पादन में फैली आजकल की अराजकता के आधार पर अस्तित्व के लिए चलनेवाले व्यक्तिगत संघर्ष का अंत हो जाये और इनसे पैदा होनेवाली टक्करें और ज़्यादतियां भी दूर कर दी जायें, तब समाज में ऐसे लोग ही नहीं रह जाते, जिनका दमन आवश्यक हो और तब एक विशेष दमनकारी शक्ति की, राज्य की, आवश्यकता ही नहीं रह जाती। राज्य जब समाज के नाम पर उत्पादन के साधनों को अपने अधिकार में लेता है, तब यह उसका पहला काम होता है, जिसके बल पर वह अपने को पूरे समाज के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित करता है। लेकिन राज्य के रूप में यही उसका अंतिम स्वतंत्र कार्य भी होता है। एक क्षेत्र के बाद दूसरे क्षेत्र में सामाजिक संबंधों में राज्य का हस्तक्षेप अनावश्यक हो जाता है और फिर धीरे-धीरे आप से आप समाप्त हो जाता है। व्यक्तियों पर शासन का स्थान वस्तुओं का प्रबंध और उत्पादन की प्रक्रियाओं का संचालन ले लेता है। राज्य का "अंत" नहीं किया जाता, **उसका लोप हो जाता है**। इससे यह समझा जा सकता है कि "स्वतंत्र जनता का राज्य"* के नारे का आंदोलनकारियों द्वारा कभी-कभी उसके औचित्यपूर्ण उपयोग और वैज्ञानिक दृष्टि से उसकी पूर्ण अपर्याप्तता दोनों के संबंध में क्या मूल्य है। और इससे यह भी समझा जा सकता है कि

---

* देखें इस खण्ड का पृ० ३७।—सं०

प्राप्त करना स्वयं हमारे ही ऊपर निर्भर हो जाता है। आजकल की विराट उत्पादक शक्तियों पर यह बात ख़ास तौर पर लागू होती है। जब तक हम क्रियाकलाप के इन सामाजिक साधनों के स्वभाव और चरित्र को समझने से हठपूर्वक इनकार करते हैं – और यह समझ पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके हामियों की फ़ितरत के खिलाफ़ है – तब तक ये शक्तियां, जैसा कि हम ऊपर तफ़सील से समझा चुके हैं, हमारे खिलाफ़, हमारे बावजूद काम करती हैं, तब तक ये हमारे ऊपर हावी रहती हैं।

परंतु एक बार जहां उनकी प्रकृति समझ ली गयी, वे एकसाथ काम करनेवाले उत्पादकों के वश में आ जाती हैं, वे भूत की तरह हमारे सिर पर सवार नहीं रहतीं, बल्कि हमारी इच्छा की चेरी बन जाती हैं। उनमें वही अंतर आ जाता है, जो आंधी के साथ गिरनेवाली बिजली की विध्वंसक शक्ति में और तार तथा वोल्टीय आर्क में इस्तेमाल होनेवाली नियंत्रित बिजली में है, जो अंतर दावानल और मनुष्य की सेवा करनेवाली अग्नि में है। आजकल की उत्पादक शक्तियों के वास्तविक स्वरूप को अन्ततः स्वीकार कर लेने के बाद उत्पादन की सामाजिक अराजकता के स्थान पर पूरे समाज और समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार एक निश्चित योजना के आधार पर उत्पादन का सामाजिक नियमन आरंभ होता है। और तब पूंजीवादी हस्तगतकरण-व्यवस्था के स्थान पर, जिसमें उपज पहले उत्पादक को और फिर हस्तगतकर्ता को वशीभूत करती है, उत्पादन के आधुनिक साधनों के स्वरूप पर आधारित उपज के हस्तगतकरण की एक नयी व्यवस्था स्थापित होती है – एक ओर, उत्पादन जारी रखने तथा वृद्धि के साधन के रूप में उपज का सीधे-सीधे समाज द्वारा और दूसरी ओर, जीविका तथा आनंद के साधन के रूप में उसका सीधे-सीधे व्यक्ति द्वारा हस्तगतकरण।

जब पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली अधिकांश जनसंख्या को अधिकाधिक पूर्ण रूप से सर्वहारा बना देती है, वह उस शक्ति को भी उत्पन्न करती है, जिसे अनिवार्य रूप से यह क्रांति सम्पन्न करनी है और नहीं तो मिट जाना है। जब यह प्रणाली उत्पादन के विराट साधनों को, जो पहले से ही सामाजिक रूप ग्रहण कर चुके हैं, अधिकाधिक राज्य-संपत्ति में बदल देती है, तब वह स्वयं इस क्रांति को पूरा करने का रास्ता भी दिखा देती है। **सर्वहारा वर्ग राजनीतिक सत्ता पर अधिकार कर लेता है और उत्पादन के साधनों को राज्य-संपत्ति में बदल देता है।**

परंतु जब वह ऐसा करता है, तब वह सर्वहारा के रूप में अपने अस्तित्व को समाप्त कर देता है, सभी वर्ग-विभेदों और वर्ग-विरोधों को समाप्त कर देता

ग्रौर वास्तव में समाज में वर्गों का उन्मूलन समाज के उस हद तक ऐतिहासिक विकास की पूर्वापेक्षा करता है कि इस या उस शासक वर्ग का ही नहीं, हर शासक वर्ग का, ग्रौर इसलिये स्वयं वर्ग-विभेद का ग्रस्तित्व एक कालातीत पुरावशेष बन जाये। इसलिये यह इसकी पूर्वापेक्षा करता है कि उत्पादन का विकास इस हद तक हो जाये कि समाज के एक विशेष वर्ग द्वारा उत्पादन के साधनों ग्रौर उपज का हस्तगतकरण, ग्रौर इसके साथ ही राजनीतिक प्रभुत्व, सांस्कृतिक एकाधिकार ग्रौर बौद्धिक नेतृत्व ग्रनावश्यक ही नहीं, प्रत्युत ग्रार्थिक, राजनीतिक ग्रौर बौद्धिक दृष्टि से विकास के लिए बाधक सिद्ध हो जायें।

विकास के इस बिंदु पर हम पहुंच गये हैं। पूंजीपति वर्ग का राजनीतिक ग्रौर बौद्धिक दिवालियापन ग्रब ख़ुद उससे ही छिपा नहीं है। उसका ग्रार्थिक दिवालियापन नियमित रूप से हर दसवें साल दिखाई देता है। हर संकट में ऐसी स्थिति होती है कि समाज ग्रपनी उत्पादक शक्तियों ग्रौर उपज का उपयोग नहीं कर पाता ग्रौर उनके बोझ के नीचे सांस भी नहीं ले पाता। उत्पादकों के पास उपयोग करने को कुछ नही है, क्योंकि उपभोक्ताग्रों की कमी है – इस विचित्र ग्रसंगति के सामने समाज ग्रपने को ग्रसहाय पाता है। उत्पादन के साधनों की प्रसार-शक्ति उन बंधनों को तोड़ डालती है, जो पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली ने उन पर लगाये थे। इन बंधनों से उनकी मुक्ति उत्पादक शक्तियों के ग्रविच्छिन्न ग्रौर निरंतर तीव्र होते हुए विकास की ग्रौर इसके साथ ही स्वयं उत्पादन की वस्तुतः ग्रसीम वृद्धि की पहली शर्त है। इतना ही नहीं। उत्पादन के साधनों पर समाज का ग्रधिकार होने से ग्राज उत्पादन पर जो कृत्रिम प्रतिबंध लगे हुए हैं, वे ही नहीं मिटते, उत्पादक शक्तियों ग्रौर उपज की ग्राज जो निश्चित रूप से बरबादी होती है, वह भी दूर हो जाती है। ग्राज तो वह बरबादी उत्पादन के साथ ग्रनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है ग्रौर संकट काल में ग्रपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है। ग्रौर भी, उत्पादन के साधनों पर समाज का ग्रधिकार ग्राज के शासक वर्गों ग्रौर उनके राजनीतिक प्रतिनिधियों की ग्रहमक़ाना फ़िज़ूलख़र्ची को ख़त्म कर देता है ग्रौर इस तरह उत्पादन के साधनों ग्रौर उपज की एक बड़ी राशि को समाज के लिए उपलब्ध कर देता है। ग्राज इतिहास में पहली बार इस बात की संभावना उत्पन्न हो गयी है कि सामाजिक उत्पादन के द्वारा समाज के प्रत्येक सदस्य को एक ऐसा जीवन उपलब्ध हो सके, जो भौतिक दृष्टि से यथेष्ट सम्पन्न हो ग्रौर दिन-दिन ज़्यादा संपन्न होता जाये; यही नहीं, एक ऐसा जीवन उपलब्ध हो, जिसमें हर व्यक्ति की शारीरिक ग्रौर मानसिक शक्तियों का

तथाकथित अराजकतावादियों द्वारा राज्य को एकदम ख़त्म कर देने की मांगों का क्या मूल्य है।

इतिहास में पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के आविर्भाव के बाद से कुछ व्यक्तियों और सम्प्रदायों ने भी अक्सर भविष्य के एक आदर्श के रूप में उत्पादन के सभी साधनों के समाज द्वारा हस्तगतकरण की न्यूनाधिक अस्पष्ट कल्पना की है। परंतु यह संभव तभी हो सकता था, ऐतिहासिक रूप से अनिवार्य तभी हो सकता था, जब उसके क्रियान्वयन के लिए वास्तविक परिस्थितियां मौजूद होतीं। समाज की हर प्रगति की तरह यह प्रगति भी कुछ नयी आर्थिक अवस्थाओं के कारण ही साध्य होती है, न कि इसलिए कि लोगों ने यह समझ लिया है कि वर्गों का अस्तित्व न्याय, समानता, आदि के विपरीत है, न ही इसलिए कि लोग वर्गों को ख़त्म करने के लिये तैयार हैं। समाज का शोषक और शोषित वर्गों में, शासक और उत्पीड़ित वर्गों में बंटवारा इस बात का आवश्यक परिणाम था कि पुराने ज़माने में उत्पादन का विकास सीमित और अपर्याप्त था। जब तक कुल सामाजिक श्रम से प्राप्त होनेवाली उपज बस उतनी ही थी, या उससे ज़रा ही ज़्यादा थी, जितनी सबके अस्तित्व के लिए नितांत आवश्यक थी, और इसलिए जब तक समाज के अधिकांश सदस्यों का पूरा या क़रीब-क़रीब पूरा समय परिश्रम करने में ही बीतता था, तब तक समाज का वर्गों में विभाजित रहना अनिवार्य था। समाज के इस अधिकांश भाग के, श्रम के क्रीत दासों के साथ ही एक और वर्ग उत्पन्न हुआ, जिसे प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता था। यह वर्ग समाज के सामान्य कार्य-कलाप की देखभाल करता था: श्रम, राज-काज, क़ानून, विज्ञान, कला, इत्यादि का प्रबंध और संचालन करता था। इस तरह श्रम-विभाजन का नियम ही वर्ग-विभाजन का आधार है। परंतु इसका यह मतलब नहीं है कि यह वर्ग-विभाजन हिंसा, लूट, जालसाज़ी और फ़रेब के तरीक़ों से नहीं हुआ। इसका यह मतलब नहीं है कि शासक वर्ग ने समाज पर एक बार हावी होने के बाद श्रमिक जनता की क़ीमत पर अपनी शक्ति को एकजुट नहीं किया, या कि उसने समाज के अपने नेतृत्व को जनता के और भी कठोर शोषण का रूप नहीं दिया।

लेकिन अगर इस बात को देखते हुए वर्गों के विभाजन का एक ऐतिहासिक औचित्य है, तो यह औचित्य एक निश्चित युग के लिए ही और निश्चित सामाजिक परिस्थितियों में ही है। उसका आधार उत्पादन का अपर्याप्त विकास था। आधुनिक उत्पादक शक्तियों का संपूर्ण विकास इस विभाजन को मिटा देगा।

में उसकी इच्छा के अनुरूप होंगे। यह मनुष्य की बाध्यता के राज से स्वतंत्रता के राज में छलांग है।

ऐतिहासिक विकास की जो रूपरेखा हमने दी है, उसका सारांश यह है :

१. **मध्ययुगीन समाज** – छोटे पैमाने का व्यक्तिगत उत्पादन। उत्पादन के साधन व्यक्तिगत उपयोग के अनुरूप बने थे, इसलिए वे आदिम, भद्दे, छोटे-मोटे और क्रिया-शक्ति में अत्यन्त सीमित थे। उत्पादन सीधे उपभोग के लिए होता था, स्वयं उत्पादक के उपभोग के लिए या उसके सामंती स्वामी के लिए। केवल जहां इस उपभोग के ऊपर उत्पादन का एक भाग बच रहता था, वह अतिरिक्त उपज बेचने के लिए दिया जाता था और विनिमय में उसका प्रवेश होता था। इसलिए माल-उत्पादन अभी अपनी शैशवावस्था में ही था। परंतु **पूरे समाज के उत्पादन की अराजकता** बीज-रूप में अभी से उसके भीतर निहित थी।

२. **पूंजीवादी क्रान्ति** – उद्योग का रूपान्तरण, पहले साधारण सहयोग और फिर मैनुफ़ेक्चर द्वारा। अभी तक बिखरे हुए उत्पादन के साधनों का बड़े-बड़े कारख़ानों में एकत्र होना। फलस्वरूप उनका उत्पादन के व्यक्तिगत साधनों से सामाजिक साधनों में रूपान्तरण। लेकिन यह एक ऐसा रूपान्तरण है, जो कुल मिलाकर विनिमय के रूप को प्रभावित नहीं करता। हस्तगतकरण की पुरानी व्यवस्था लागू रहती है। **पूंजीपति** का आविर्भाव होता है। उत्पादन के साधनों के मालिक की हैसियत से वह उपज को भी हस्तगत करता है और उसे माल का रूप देता है। उत्पादन एक सामाजिक क्रिया बन गया है। विनिमय और हस्तगतकरण व्यक्तिगत कार्य, अलग-अलग व्यक्तियों के ही कार्य बने रहते हैं। **पूंजीपति व्यक्तिगत रूप से सामाजिक उपज को हथिया लेता है।** यही वह मौलिक अंतर्विरोध है, जिससे और सब अंतर्विरोध उत्पन्न होते हैं, जिनके चक्र में हमारा वर्तमान समाज घूमता है और जिन्हें आधुनिक उद्योग उद्घाटित करता है।

(क) उत्पादक का उत्पादन के साधनों से विच्छेद। मजदूर की ज़िन्दगी भर उजरती श्रम करने की बाध्यता। **सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग का विरोध।**

(ख) जिन नियमों के अनुसार माल-उत्पादन होता है, उनका बढ़ता हुआ प्रभुत्व और प्रभाव। अनियंत्रित होड़। **अलग-अलग कारख़ानों में उत्पादन के सामाजिक संगठन और समग्र सामाजिक उत्पादन की अराजकता में विरोध।**

(ग) एक ओर, मशीनों की बराबर तरक़्क़ी, जो होड़ के कारण प्रत्येक कारख़ानेदार के लिए अनिवार्य हो जाती है और जिसके साथ ही साथ मज़दूर निरंतर बढ़ती हुई संख्या में विस्थापित होते हैं। **औद्योगिक रिज़र्व सेना।** दूसरी

उन्मुक्त विकास सुनिश्चित हो। इस बात की संभावना पहली बार उत्पन्न हुई है, लेकिन **हुई है अवश्य।***

उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार हो जाने से माल-उत्पादन का और साथ ही उत्पादक के ऊपर उपज के प्रभुत्व का अंत हो जाता है। सामाजिक उत्पादन में अराजकता की जगह एक निश्चित, व्यवस्थित संगठन क़ायम होता है। व्यक्तिगत जीवन के लिए संघर्ष ग़ायब हो जाता है। और तब एक मानी में मनुष्य पहली बार शेष प्राणि-जगत से अलग होता है और जीवन की निरी पाशविक अवस्थाओं से निकलकर यथार्थ रूप से मानवीय अवस्थाओं में प्रवेश करता है। जीवन की जो अवस्थायें मनुष्य को घेरे हैं और जो अभी तक उस पर शासन करती आयी हैं, उनका संपूर्ण क्षेत्र मनुष्य के अधिकार और नियंत्रण में आ जाता है। मनुष्य पहली बार प्रकृति का वास्तविक और सचेत रूप से स्वामी हो जाता है, क्योंकि अब वह अपने सामाजिक संगठन का स्वामी बन गया है। उसकी अपनी सामाजिक क्रियाओं के जो नियम, प्रकृति के नियमों की तरह अभी तक आदमी के मुक़ाबले में खड़े थे, उससे बाहर थे, उसके ऊपर हावी थे, अब उनका पूरी समझदारी के साथ उपयोग किया जायेगा और इस तरह उनके ऊपर क़ाबू पा लिया जायेगा। मनुष्य का अपना सामाजिक संगठन, जो अभी तक प्रकृति और इतिहास द्वारा लादी गयी एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में उसके मुक़ाबले में खड़ा था, अब उसकी अपनी स्वतंत्र क्रिया का परिणाम बन जाता है। जिन बाह्य, वस्तुगत शक्तियों ने अभी तक इतिहास पर शासन किया था, अब वे स्वयं मनुष्य के नियंत्रण में आ जाती हैं। इसी समय से मनुष्य स्वयं उत्तरोत्तर सचेत रूप से अपने इतिहास का निर्माण करेगा। इसी समय से मनुष्य द्वारा परिचालित सामाजिक क्रियाओं के परिणाम मुख्यतया और निरंतर बढ़ती हुई मात्रा

---

*पूंजीवादी दबाव के बावजूद उत्पादन के आधुनिक साधनों की विराट प्रसार-शक्ति का क़रीब-क़रीब सही अन्दाज़ कुछ आंकड़ों से मिल सकता है। मि० जिफ़ेन के अनुसार ब्रिटेन और आयरलैंड का कुल धन पूर्णांकों में इस प्रकार है :

१८१४ में २२० करोड़ पौंड
१८६५ में ६१० करोड़ पौंड
१८७५ में ८५० करोड़ पौंड

संकट-काल में उत्पादन के साधनों तथा उपज की बरबादी की एक मिसाल यह है कि द्वितीय जर्मन औद्योगिक कांग्रेस (बर्लिन, २१ फ़रवरी १८७८) में दिये गये आंकड़ों के अनुसार १८७३-१८७८ के संकट में **जर्मनी के लोहा उद्योग** में होनेवाला कुल घाटा २,२७,५०,००० पौंड था।

सर्वव्यापी मुक्ति के इस कार्य को पूरा करना आधुनिक सर्वहारा वर्ग का ऐतिहासिक कर्त्तव्य है। इस कार्य की ऐतिहासिक अवस्थाओं को और इस तरह कार्य की प्रकृति को पूरी तरह समझना, और आज के जिस पीड़ित सर्वहारा वर्ग को यह महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा करना है, उसे इसके महत्त्व और इसकी अवस्थाओं का पूर्ण ज्ञान देना – यह सर्वहारा आंदोलन की सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति, वैज्ञानिक समाजवाद का कर्त्तव्य है।

जनवरी और मार्च के पूर्वार्द्ध, १८८०, में एंगेल्स द्वारा लिखित।

«*La Revue socialiste*» पत्रिका में, न० ३, ४ और ५, २० मार्च, २० अप्रैल और ५ मई १८८० को और अलग पुस्तिका के रूप में फ़्रांसीसी में (F. Engels. «*Socialisme utopique et socialisme scientifique*». Paris, 1880) प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

ओर, उत्पादन का असीम विस्तार। होड़ के अंतर्गत यह भी हर कारख़ानेदार के लिए अनिवार्य बन जाता है। दोनों ही ओर, उत्पादक शक्तियों का अभूतपूर्व विकास; मांग से अधिक पूर्त्ति, अतिउत्पादन, बाज़ार का माल से पट जाना, हर दसवें वर्ष संकट, दुष्ट चक्र – **एक ओर, उत्पादन के साधनों और उपज की अधिकता और दूसरी ओर,** जीविका के साधनों से वंचित बेकार **मज़दूरों की अधिकता।** परंतु उत्पादन और सामाजिक समृद्धि के ये दो उत्तोलक एकसाथ काम नहीं कर पाते, क्योंकि पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के अंतर्गत उत्पादक शक्तियां तब तक काम नहीं कर सकतीं और उपज का तब तक परिचलन नहीं हो सकता, जब तक उन्हें पहले पूंजी का रूप न दे दिया जाये – लेकिन यह उनके अतिप्राचुर्य के ही कारण संभव नहीं हो पाता। इस विरोध ने एक निरर्थक हास्यास्पद रूप ले लिया है: **उत्पादन-प्रणाली विनिमय के रूप के ख़िलाफ़ विद्रोह कर देती है।** पूंजीपति वर्ग स्वयं अपनी सामाजिक उत्पादक शक्तियों का प्रबंध करने के अयोग्य ठहरा दिया जाता है।

(घ) उत्पादक शक्तियों के सामाजिक स्वरूप को आंशिक रूप से स्वीकार करने के लिए पूंजीपतियों को भी बाध्य होना पड़ता है। उत्पादन और संचार की बड़ी-बड़ी संस्थाओं का, पहले **ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों** के, फिर ट्रस्टों के और फिर **राज्य** के अधिकार में आ जाना। यह प्रमाणित हो जाता है कि पूंजीपति वर्ग एक फ़ालतू वर्ग बन गया है। उसके सभी सामाजिक कर्त्तव्य अब वेतनभोगी कर्मचारियों द्वारा संपादित होते हैं।

३. सर्वहारा क्रांति – विरोधों का समाधान। सर्वहारा वर्ग सार्वजनिक सत्ता पर अधिकार कर लेता है, और उसके द्वारा उत्पादन के उन समाजीकृत साधनों को, जो पूंजीपति वर्ग के हाथों से खिसकने लगे हैं, सार्वजनिक सम्पत्ति में बदल देता है। उत्पादन के साधनों ने अभी तक पूंजी का जो स्वरूप ग्रहण कर रखा था, उसे अपने इस कार्य द्वारा सर्वहारा वर्ग नष्ट कर देता है और उनके सामाजिक स्वरूप के विकास को पूर्णतः मुक्त कर देता है। अब से एक पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार सामाजिक उत्पादन संभव हो जाता है। उत्पादन का विकास समाज के विभिन्न वर्गों के अस्तित्व को कालातीत बना देता है। जैसे-जैसे सामाजिक उत्पादन से अराजकता ग़ायब होती जाती है, वैसे-वैसे राज्य का राजनीतिक प्रभुत्व भी समाप्त होता जाता है। मनुष्य अन्ततः सामाजिक संगठन की अपनी पद्धति का स्वामी बन जाता है, इसके साथ ही वह प्रकृति का शासक और स्वयं अपना स्वामी बन जाता है – स्वतंत्र हो जाता है।

इस तरह अन्ततोगत्वा हम यहां **निजी सम्पत्ति के एक रूप के निजी सम्पत्ति के दूसरे रूप में रूपान्तरण** की चर्चा कर रहे हैं। लेकिन जब रूसी किसानों द्वारा जोती जानेवाली भूमि कभी उनकी **निजी सम्पत्ति** नहीं थी तो फिर यह सिद्धान्त उन पर कैसे लागू किया जाये?

(२) **रूसी** ग्राम्य समुदाय के **अवश्यम्भावी विघटन** के पक्ष में ऐतिहासिक दृष्टि से एकमात्र संजीदा तर्क निम्नलिखित है –

बीती शताब्दियों पर दृष्टिपात करने से पता चलता है कि पूरे पश्चिमी यूरोप में सामुदायिक स्वामित्व न्यूनाधिक रूप से पुरातन क़िस्म का था; वह अब सामाजिक प्रगति के फलस्वरूप सब जगहों से लुप्त हो गया है। अकेले रूस में ही वह इस नियति से क्यों बचे?

इसका उत्तर मैं यह दूंगा – इसलिए कि परिस्थितियों के विलक्षण संयोग के कारण रूस में ग्राम्य समुदाय, जो अब भी राष्ट्रीय पैमाने पर विद्यमान है, अपने आद्य लक्षणों का धीरे-धीरे परित्याग करने और राष्ट्रीय पैमाने पर सामूहिक उत्पादन के तत्व के रूप में सीधे विकसित होने में सक्षम है। ठीक इसी कारण कि वह पूंजीवादी उत्पादन के साथ-साथ विद्यमान है, वह उसके सारे भयावह उतार-चढ़ावों के बीच से गुज़रे बिना उसकी सारी सकारात्मक उपलब्धियों का लाभ उठाने में सक्षम है। रूस आधुनिक संसार से अलग-थलग विद्यमान नहीं है; न वह ईस्ट इंडीज़ की भांति विदेशी आधिपत्य का शिकार है।

यदि पूंजीवादी प्रणाली के रूसी पक्षधर इस प्रकार के विकासक्रम की **सैद्धान्तिक** सम्भावना से इन्कार करें तो मैं उनके सामने यह प्रश्न करूंगा – क्या अपने यहां मशीनें, स्टीमर, रेलें, आदि प्रचलित करने के लिए रूस पश्चिम की तरह मशीन-उत्पादन के विकास की लम्बी ऊष्मायन-अवधि के बीच से गुज़रने के लिए विवश हुआ है? वे मुझे यह भी बतायें कि वे विनिमय की पूरी क्रियाविधि (बैंक, साख सोसायटियां, आदि) को, जिसे पश्चिम में संवर्द्धित होने में शताब्दियां लगीं, चुटकी भरते ही कैसे लागू करने में सफल रहे?

यदि भूदास प्रथा के उन्मूलन के समय ग्राम्य समुदायों को तत्काल सामान्य विकास की परिस्थितियां मुहैया कर दी गयी होतीं, यदि विशाल राजकीय ऋण, जिसकी अधिकतर अदायगी किसान करते थे, तथा उसके साथ अन्य विपुल धनराशियां, जो राज्य के माध्यम से "समाज के नये आधार-स्तम्भों" को मुहैया की जाती थीं (इनकी भी अदायगी किसान करते थे) – यदि ये सब व्यय ग्राम्य समुदाय के **भावी विकास** पर किये गये होते तो फिर आज कोई

वे० इ० जसूलिच के पत्र के उत्तर का पहला मसौदा[115]

(१) पूंजीवादी उत्पादन के मूल का विश्लेषण करते हुए मैंने कहा था कि उसका रहस्य इस तथ्य में निहित है कि वह "उत्पादन के साधनों से उत्पादक के विलगाव" पर आधारित है ('पूंजी' के फ़्रांसीसी संस्करण का पृष्ट ३१५, कालम १), कि "इस पूरी प्रक्रिया का आधार है **खेतिहर उत्पादक – किसान – की ज़मीन का उससे छीन लिया जाना।** इस भूमि-अपहरण का इतिहास अलग-अलग देशों में अलग-अलग रूप धारण करता है... उसका प्रतिनिधि रूप केवल इंगलैंड में देखने को मिलता है, जिसको हम यहां मिसाल की तरह पाठकों के सामने पेश करेंगे।" (पूर्वोक्त पुस्तक, कालम २)।*

ऐसा करते समय मैंने **साफ़ तौर पर** इस प्रक्रिया की "ऐतिहासिक अवश्यम्भाविता" को **पश्चिमी यूरोप के देशों** तक सीमित किया था। ऐसा क्यों? कृपया अध्याय ३२ देखें, जहां आपको यह पढ़ने को मिलेगा: "उसका [उत्पादन-प्रणाली का] विनाश, उत्पादन के बिखरे हुए व्यक्तिगत साधनों का सामाजिक दृष्टि से संकेन्द्रित साधनों में रूपांतरित हो जाना, अर्थात् बहुत-से लोगों की क्षुद्र सम्पत्ति का थोड़े-से लोगों की अति विशाल सम्पत्ति में बदल जाना, साधारण जनता का यह भयानक तथा अत्यन्त कष्टदायक सम्पत्ति-अपहरण पूंजी के इतिहास की भूमिका मात्र होता है। अपने श्रम द्वारा कमायी हुई **निजी सम्पत्ति** का स्थान... **पूंजीवादी निजी सम्पत्ति** ले लेती है, जो कि दूसरे लोगों के नाम मात्र के लिए स्वतंत्र श्रम पर – अर्थात् उजरती श्रम पर – आधारित होती है।" (पृष्ठ ३४१, कालम २)।**

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खंड २, भाग १। – सं०

** वही। – सं०

पढ़ते समय सावधानी बरती जानी चाहिए। वे तथ्यों को तोड़ने-मरोड़ने तक से बाज़ नहीं आते। उदाहरण के लिए सर हेनरी मेन, जो भारतीय समुदायों को बलपूर्वक नष्ट करने की ब्रिटिश सरकार की नीति के सक्रिय समर्थक थे, हमें पाखंडपूर्ण ढंग से बताते हैं कि इन समुदायों को सहारा देने के लिए सरकार द्वारा की गयी सारी कोशिशों को आर्थिक नियमों ने विफल बना दिया![117]

यह समुदाय निरन्तर बाहरी और अन्दरूनी युद्धों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में मिट गया; शायद उसकी हिंसात्मक मृत्यु हुई। जब जर्मन क़बीले इटली, स्पेन, गाल, आदि पर फ़तह पाने के लिए पहुंचे तो पुरातन क़िस्म के समुदाय का अस्तित्व नहीं रह गया था। परन्तु उसकी **नैसर्गिक जीवन्तता** दो तथ्यों से सिद्ध होती है। इस बात के इक्के-दुक्के उदाहरण हैं कि वह मध्य युगों की तमाम उथल-पुथलों के बावजूद बचा रह गया। उदाहरण के लिये वह मेरे ज़िले त्रियेर में आज भी अक्षुण्ण है। परन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि वह अपना स्थान लेने-वाले समुदाय पर – ऐसे समुदाय पर, जिसकी कृषियोग्य भूमि निजी सम्पत्ति बन गयी है जबकि जंगल, चरागाहें तथा बंजर भूमि, आदि सामुदायिक सम्पत्ति बन गये हैं – इतनी गहरी छाप छोड़ गया है कि मारेर द्वितीयक विरचना के इस समुदाय के अध्ययन के बल पर पुरातन आदिरूप का ख़ाका तैयार करने में सफल रहे। पुरातन समुदाय द्वारा छोड़े गये चारित्रिक लक्षणों की बदौलत नया समुदाय, जिसे जर्मनों ने अपने सारे विजित देशों में प्रचलित किया, पूरे मध्य युगों में मुक्ति तथा जन-जीवन का दुर्ग बन गया।

यद्यपि हम तासितुस के युग के बाद समुदाय के जीवन के बारे में अथवा इस बारे में कुछ नहीं जानते कि वह किस तरह तथा किस काल में लुप्त हुआ, हमें इस प्रक्रिया की शुरूआत के बारे में जूलियस सीज़र से कुछ न कुछ जानकारी अवश्य मिलती है। उनके काल में भूमि का वार्षिक पुनर्वितरण होने लगा था हालांकि यह अभी एक समुदाय के पृथक-पृथक सदस्यों के बीच नहीं बल्कि जर्मनों के **कुलों** [gentes] तथा **क़बीलों** [tribus des confédérations] के बीच होता था। इस प्रकार जर्मनी में **ग्राम्य समुदाय** को अधिक पुरातन क़िस्म ने जन्म दिया और वह एशिया से तैयारशुदा ढंग से आयात होने के बजाय स्वतःस्फूर्त विकास की उपज था। वहां – ईस्ट इंडीज़ में – भी वह सदैव पुरातन विरचना की **अन्तिम मंज़िल** या अन्तिम अवधि में पाया जाता है।

ग्राम्य समुदाय की सम्भावित नियति को विशुद्ध सैद्धान्तिक दृष्टि से निश्चित करने के लिए, अर्थात् सामान्य अवस्थाओं की सतत विद्यमानता को पहले से

भी समुदाय के उन्मूलन की "ऐतिहासिक अनिवार्यता" की बात न करता – हरेक इसे रूसी समाज में पुनरुद्धारक शक्ति के रूप में, उन देशों की तुलना में, जो आज भी पूंजीवादी प्रणाली के जूए के नीचे हैं, कुछ श्रेष्ठ वस्तु के रूप में स्वीकार करता।

रूसी समुदाय को बनाये रखनेवाला (उसके विकास के माध्यम से) एक अन्य उपादान यह है कि समुदाय पूंजीवादी उत्पादन का (पश्चिम में) समकालिक ही नहीं है, अपितु वह ऐसी अवधि से आगे गुज़रा और बना रहा, जब यह सामाजिक प्रणाली अक्षुण्ण थी और अब, इसके विपरीत, यह प्रणाली पश्चिम यूरोप तथा अमरीका दोनों जगह विज्ञान, जनसाधारण तथा ठीक उन उत्पादक शक्तियों के साथ संघर्षरत है, जिन्हें वह जन्म देता है। संक्षेप में रूसी समुदाय पूंजीवादी प्रणाली को संकटावस्था में पा रहा है, जिसका अन्त पूंजीवाद के उन्मूलन के साथ, सामुदायिक स्वामित्व की पुरातन क़िस्म की ओर आधुनिक समाजों की वापसी के साथ होगा, अथवा एक अमरीकी लेखक [मोर्गन], जिसमें निस्सन्देह किसी भी प्रकार की क्रान्तिकारी प्रवृत्तियां होने का सन्देह नहीं किया जा सकता तथा जिसकी रचनाओं का वाशिंगटन सरकार समर्थन कर रही है, के शब्दों में "नयी प्रणाली", जिसकी ओर आधुनिक समाज अग्रसर हो रहा है, "पुरातन क़िस्म के समाज का एक श्रेष्ठ रूप में पुनरुज्जीवन" होगी।[116] अतः "पुरातन" शब्द से बहुत भयभीत होने की ज़रूरत नहीं है।

परन्तु उस सूरत में कम से कम इस चीज़ से अवगत होना चाहिए कि ये परिवर्तन क्या हैं। हमें इनके बारे में कुछ भी पता नहीं है।

आदिम समुदायों के विघटन का इतिहास (उन्हें एक स्तर पर रखना ग़लत होगा; भूगर्भीय शैल-समूहों की तरह ये ऐतिहासिक समूह प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक, आदि प्रकारों की एक पूरी शृंखला होते हैं) अभी लिखा जाना है। अभी तक हमारे पास केवल स्थूल रूपरेखाएं हैं। फिर भी अब तक खोज का काम इतना काफ़ी आगे बढ़ चुका है कि उसके बल पर यह कहा जा सकता है – (१) कि आदिम समुदायों की जीवन्तता सामी, यूनानी, रोमन और दूसरे समाजों से तथा इससे भी बढ़कर आधुनिक पूंजीवादी समाजों से अतुलनीय रूप से अधिक थी; (२) कि उनके विघटन के कारण आर्थिक उपादानों में, जिन्होंने उन्हें एक ख़ास बिन्दु से आगे नहीं बढ़ने दिया, तथा उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में निहित हैं, जो समकालीन रूसी समुदाय के किसी भी प्रकार सदृश नहीं है।

पूंजीवादी इतिहासकारों ने आदिम समुदायों का जो इतिहास लिखा, उन्हें

है तथा अन्त में वन, चरागाही ज़मीन तथा बंजर भूमि, आदि निजी हाथों में पहुंच जाती है, जो पहले ही निजी सम्पत्ति के **सामुदायिक उपांग** बन चुकी हैं। यही कारण है कि "ग्रामीण समुदाय" सर्वत्र पुरातन सामाजिक संरचना की **सबसे हाल की क़िस्म** है। और यही कारण है कि पश्चिमी यूरोप के प्राचीन तथा अर्वाचीन दोनों समय के इतिहास में ग्रामीण समुदाय का काल सामुदायिक स्वामित्व से निजी स्वामित्व में, प्राथमिक से द्वितीयक संरचना में संक्रमण का काल है। परन्तु क्या इसका मतलब यह है कि "ग्रामीण समुदाय" को तमाम परिस्थितियों में एक ही प्रकार के मार्ग का अनुसरण करना होगा? यक़ीनन नहीं। उसका संघटक रूप इस विकल्प की गुंजाइश रखता है – या तो उसमें अन्तर्निहित निजी सम्पत्ति का तत्व सामूहिक तत्व पर हावी होगा अथवा सामूहिक तत्व सम्पत्ति के निजी तत्व पर हावी होगा। सब कुछ उस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर निर्भर करता है, जिसमें वह अग्रसर होगा। ...ये दोनों समाधान a priori* सम्भव हैं। परन्तु स्पष्टतया दोनों को सर्वथा भिन्न ऐतिहासिक परिवेशों की ज़रूरत है।

(३) रूस एकमात्र ऐसा यूरोपीय देश है जहां "ग्रामीण समुदाय" को राष्ट्रीय पैमाने पर वर्तमान काल तक अक्षुण्ण रखा गया है। वह ईस्ट इंडीज़ की तरह दूसरे देशों द्वारा विजय का शिकार नहीं हुआ है। साथ ही आधुनिक संसार से भी उसका सम्पर्क टूटा हुआ नहीं है। एक ओर भूमि पर समान स्वामित्व उसे भूखण्डों में होनेवाली खेती तथा निजी खेती को सीधे तथा धीरे-धीरे सामूहिक कृषि में रूपान्तरित करने की सम्भावना देता है और रूसी किसान यह काम चरागाही ज़मीन पर करने भी लग गये हैं जो टुकड़ों में विभक्त नहीं हुई है। रूसी भूमि की भौतिक समाकृति बड़े पैमाने पर मशीनों के उपयोग के लिए अनुकूल है। किसान श्रम की **आर्तेली** अवस्थाओं का अभ्यस्त है, यह तथ्य उसके लिए छोटे-छोटे टुकड़ों की अर्थव्यवस्था को सहकारी अर्थव्यवस्था में परिवर्तित करना आसान बना देता है। और अन्ततः रूसी समाज का, जो इतने लम्बे काल तक उसके खून-पसीने पर ज़िंदा रहा है, कर्त्तव्य है कि वह उसे इस संक्रमण के लिए आवश्यक साधन दे। दूसरी ओर पश्चिमी उत्पादन का, जो विश्व मंडी पर हावी है, **साथ-साथ अस्तित्व** रूस को पूंजीवादी उत्पादन की सारी उपलब्धियां – उसकी कावडिन घाटी[118] के बीच से गुज़रे बिना – समुदाय में शामिल करने में सक्षम बनाता है।

* प्रागनुभव। – **सं०**

मानते हुए, मुझे अब उन कतिपय चारित्रिक लक्षणों की ओर ध्यान आकृष्ट करना चाहिए जो "ग्रामीण समुदाय" को अधिक पुरातन क़िस्मों से अलग करते हैं।

सबसे पहले आरम्भिक आदिम समुदाय अपने सदस्यों की समान वंशावली पर आधारित थे; ग्रामीण समुदाय इस सबल परन्तु संकुचित कड़ी को तोड़कर समुदाय फैलने तथा पराये लोगों से सम्पर्कों के सामने टिके रहने में अधिक सक्षम हो गया।

दूसरे, ग्रामीण समुदाय में मकान तथा उसका पूरक आंगन–अहाता–जमीन जोतनेवाले की निजी सम्पत्ति हो चुके हैं, जबकि कृषि के प्रचलन से बहुत पहले सामुदायिक मकान पूर्ववर्ती समुदायों के भौतिक आधारों में से हुआ करता था।

अन्ततः कृषियोग्य भूमि यद्यपि सामुदायिक सम्पत्ति बनी रहती है, उसे समय-समय पर ग्रामीण समुदाय के सदस्यों के बीच इस तरह पुनर्वितरित किया जाता रहता है कि हर व्यक्ति अपने हिस्से में आनेवाले खेतों पर ख़ुद काश्त करता है और अपने श्रम के फ़लों को स्वयं ग्रहण करता है, जबकि अधिक पुरातन समुदायों में उत्पादन सामुदायिक रूप से हुआ करता था तथा केवल उपज बांटी जाती थी। सामूहिक अथवा सहकारी उत्पादन की यह पुरातन क़िस्म निस्सन्देह अलग-अलग व्यक्तियों की कमज़ोरी का फल थी, न कि उत्पादन के साधनों के समाजीकरण का।

यह आसानी से देखा जा सकता है कि "ग्रामीण समुदाय" में निहित द्वैधता किस तरह उसे जीवन शक्ति प्रदान करती है क्योंकि एक ओर सामुदायिक सम्पत्ति तथा उससे उत्पन्न सारे सामाजिक सम्बन्ध उसे एक ठोस आधार प्रदान करते हैं, जबकि निजी मकान, कृषियोग्य भूमि पर अलग-अलग टुकड़ों में काश्त तथा श्रम के फलों की निजी तौर पर प्राप्ति से व्यक्ति का विकास होता है, जो अधिक पुरातन समुदायों में विद्यमान अवस्थाओं में असंभव था।

परन्तु यह भी कम स्पष्ट नहीं है कि यही द्वैधता समय के बीतने के साथ विघटन का स्रोत बन गयी है। वैरभावपूर्ण वातावरण के प्रभाव से अलग, मवेशियों से शुरू होनेवाला सचल सम्पत्ति का (जिसमें भूदास तक शामिल हैं) क्रमिक संचयन, कृषि में सचल सम्पत्ति द्वारा अदा की जानेवाली अधिकाधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका तथा इस संचयन से संलग्न दूसरे बीसियों उपादान, जिनकी यहां व्याख्या मुझे विषय से बहुत दूर ले जायेगी, आर्थिक तथा सामाजिक समता भंग करने का काम करते हैं तथा स्वयं समुदाय के अन्दर हितों में टकराव पैदा करते हैं जिसके फलस्वरूप सर्वप्रथम कृषियोग्य भूमि निजी सम्पत्ति में बदल जाती

हुए देख रहा है—संक्षेप में वह पूंजीवादी प्रणाली को संकटावस्था में पा रहा है, जिसका अन्त पूंजीवाद के उन्मूलन के साथ, सामुदायिक स्वामित्व तथा सामूहिक उत्पादन की पुरातन क़िस्म के एक श्रेष्ठ रूप की ओर आधुनिक समाजों की वापसी के साथ होगा।

यह बताने की ख़ास ज़रूरत नहीं है कि समुदाय का विकासक्रम शनैः शनैः होता तथा पहला क़दम होता उसके **वर्तमान आधार** पर उसके लिए उचित अवस्थाओं का निर्माण।

परन्तु उसके मुक़ाबले में भूमि का निजी स्वामित्व खड़ा है, जिसके पास ज़मीन का लगभग आधा, बेहतर भाग है, राजकीय भूमि की तो बात ही क्या। यही कारण है कि भावी विकास के माध्यम से "ग्रामीण समुदाय" की अक्षुण्णता रूसी समाज की आम अग्रगति से मेल खाती है, जिसका पुनर्जन्म केवल इसी क़ीमत पर हो सकता है। शुद्ध आर्थिक दृष्टि से भी रूस ग्राम्य समुदाय के विकास के ज़रिए उस दलदल से बाहर निकल सकता है, जहां उसकी कृषि आज अपने को फंसी हुई पाती है; आंग्ल प्रणाली की लाइन पर पूंजीवादी लगान लागू कर उससे बाहर निकलने की कोशिश बेकार होगी; यह प्रणाली देश की सारी कृषि अवस्थाओं के विपरीत है।

रूसी "ग्रामीण समुदाय" द्वारा इस समय झेली जा रही सारी मुसीबतों को नज़रन्दाज़ कर यदि मात्र उसके संघटक रूप तथा उसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर ध्यान केन्द्रित किया जाये तो यह चीज़ तुरंत स्पष्ट हो जाती है कि उसका एक मूल लक्षण, भूमि का समान स्वामित्व, सामूहिक उत्पादन तथा हस्तगतकरण का स्वाभाविक आधार है। इससे भी अधिक, श्रम की **आर्तेली** अवस्था आदि होने के कारण रूसी किसान के लिए अर्थव्यवस्था की खंडीय प्रणाली से सामूहिक अर्थव्यवस्था में पदार्पण करना अधिक सुगम है, जिसे वह अविभक्त चरागाही ज़मीन, जलनिकास कार्यों तथा आम हित के दूसरे कार्यों में कुछ हद तक इस समय भी कर रहा है। परन्तु कृषि में खंडीय श्रम के स्थान पर, जो निजी हस्तगतकरण का स्रोत है, सामूहिक श्रम को लाने के लिए दो उपादान आवश्यक हैं—इस प्रकार के परिवर्तन की आर्थिक आवश्यकता तथा इसकी पूर्त्ति के लिए आवश्यक भौतिक अवस्थाएं।

जहां तक आर्थिक आवश्यकता का सम्बन्ध है, उसकी अनुभूति "ग्रामीण समुदाय" में उसी समय से होने लगेगी जब उसे सामान्य अवस्थाओं के अन्तर्गत

यदि "समाज के नये स्तम्भों" के प्रवक्ता आधुनिक ग्राम्य समुदाय के विकासक्रम की **सैद्धान्तिक** सम्भावना से इन्कार करें तो उनसे पूछा जाना चाहिए कि क्या रूस को भी मशीनें, स्टीमर, रेलें, आदि हासिल कर सकने के लिए पश्चिम की ही तरह लम्बी ऊष्मायन-अवधि के बीच से गुज़रना पड़ेगा। उनसे यह भी पूछा जाना चाहिए कि रूस विनिमय की क्रियाविधि (बैंकों, ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों, आदि) को, जिन्हें पश्चिम में संवर्द्धित होने में शताब्दियां लगीं, कैसे चुटकी भरते ही लागू करने में सफल हो गया।

रूस के "ग्रामीण समुदाय" में एक लक्षण है जो उसकी कमज़ोरी है तथा सारे पहलुओं की दृष्टि से उसके लिए अहितकर है। यह है इसका विलगाव, एक समुदाय के जीवन तथा दूसरे समुदाय के जीवन के बीच सम्पर्क का अभाव, यह **स्थानीयकृत सूक्ष्मविश्व**, जो इस प्रकार के अन्तर्निहित लक्षण के रूप में सर्वत्र नहीं मिलता, परन्तु जहां कहीं वह मौजूद है, उसने समुदायों के ऊपर केन्द्रीकृत निरंकुशता खड़ी की है। उत्तरी रूसी जनतंत्रों का एकीकरण सिद्ध करता है कि इस अलगाव को, जिसका कारण ज़ाहिर है, मूलतया क्षेत्र का विशाल फैलाव था, काफ़ी हद तक उन राजनीतिक घटनाओं ने सुदृढ़ बनाया था, जिन्हें रूस को मंगोलों के धावे के बाद झेलना पड़ा था। आज तो यह एक ऐसी रुकावट है जिसे आसानी से दूर किया जा सकता है। बस केवल इतना करना है कि सरकारी संस्थान वोलोस्त[119]* को हटाकर उसकी जगह स्वयं समुदायों द्वारा निर्वाचित किसानों की सभा स्थापित की जाये, जो उनके हितों की रक्षा करनेवाले एक आर्थिक तथा प्रशासनिक अंग के रूप में काम करे।

"ग्रामीण समुदाय" को उसके भावी विकास के माध्यम से अक्षुण्ण रखने के लिए ऐतिहासिक दृष्टि से एक सबसे अनुकूल उपादान यह है कि वह पश्चिमी पूंजीवादी उत्पादन का केवल समकालिक ही नहीं है और इस तरह वह उसके modus operandi** के आगे झुके बिना उसकी उपलब्धियों का केवल उपयोग ही नहीं कर सकता, अपितु वह उस अवधि को भी झेल चुका है, जिसमें पूंजीवादी प्रणाली अब भी अक्षुण्ण बनी हुई थी। अब तो वह पश्चिमी यूरोप तथा संयुक्त राज्य अमरीका दोनों जगह पूंजीवादी प्रणाली को मेहनतकश जनसाधारण से, विज्ञान से तथा ख़ुद उन उत्पादक शक्तियों से जिन्हें उसने जन्म दिया है, टकराते

* यह शब्द मार्क्स ने रूसी में लिखा था। – सं०

** कार्य-प्रणाली। – सं०

खेत जोतनेवालों का स्वामित्वहरण करने के लिए उन्हें ज़मीन से भगाना आवश्यक नहीं है जैसा कि इंगलैंड में या अन्यत्र हुआ था; न किसी आज्ञप्ति से सामुदायिक स्वामित्व मिटाना ही ज़रूरी है। ज़रा किसानों को एक ख़ास सीमा से आगे अपने श्रम के उत्पाद से वंचित कर दें, आप अपनी पुलिस या सेना की मदद से भी उन्हें अपनी ज़मीन से बांधे नहीं रख सकेंगे। रोमन साम्राज्य के अन्तिम दिनों में प्रान्तीय डिक्युरिअन[120], जो किसान नहीं, ज़मींदार थे—अपने घरों से भाग गये, अपनी ज़मीन छोड़ गये, यही नहीं उन्होंने अपने को दासों के रूप में भी बेच डाला और यह सब सम्पत्ति से छुटकारा पाने के लिए किया, जो सरकार को कठोर तथा निर्मम वसूली करने का बहाना मुहैया करने से अधिक कुछ नहीं रह गयी थी।

भूदासों की तथाकथित मुक्ति के बाद राज्य रूसी समुदाय को अनुचित आर्थिक अवस्थाओं में रखता आया है, जिसने अपने हाथों में संकेन्द्रित सामाजिक शक्तियों से उसे उत्पीड़ित करना बन्द नहीं किया है। राज्य द्वारा वित्तीय वसूली से निर्बल बननेवाला समुदाय व्यापारियों, ज़मीदारों तथा सूदख़ोरों के शोषण का शिकार बन गया है। बाहर से इस उत्पीड़न ने स्वयं समुदाय की हृदयस्थली में पहले से विद्यमान हितों के टकराव को उग्र बना दिया है तथा उसके विघटन को तेज़ कर डाला है। राज्य ने किसानों का अहित करते हुए पश्चिमी पूंजीवादी प्रणाली की उन शाखाओं का पोषण किया है जो कृषि की किसी भी तरह उत्पादक क्षमता का विकास किये बिना कृषि-उत्पादों का अनुत्पादक बिचौलियों द्वारा लूट-खसोट को सुगम बनाने तथा उसे तेज़ करने का सबसे बड़ा माध्यम हैं। इस तरह एक नये पूंजीवादी परजीवी को मोटा-ताज़ा बनाने में मदद मिली है, जो पहले ही क्षीणरक्त से पीड़ित "ग्राम्य समुदाय" का ख़ून चूस रहा है।

...कहने का मतलब है कि राज्य ने उन तकनीकी तथा आर्थिक साधनों के विकास की रफ़्तार तेज़ करने में मदद दी है, जो ज़मीन जोतनेवाले, अर्थात् रूस की सबसे बड़ी उत्पादक शक्ति के शोषण को सुगम बनाने, उसकी गति तेज़ करने तथा "समाज के नये स्तम्भों" को समृद्ध बनाने में सबसे अधिक सहायक होते हैं।

५) विनाशकारी शक्तियों का यह योग, यदि उसे किसी सशक्त जवाबी कार्रवाई ने चकनाचूर न कर दिया तो वह ग्राम्य समुदाय को अनिवार्यतः उसके विनाश की ओर ले जायेगा।

परन्तु सवाल उठता है—ये तमाम हित (सरकारी प्रश्रय प्राप्त बड़े औद्योगिक

ले आया जायेगा, अर्थात् ज्योंही उसे दबाये रखनेवाला भार उस पर से हटा दिया जायेगा और ज्योंही उसे उपयुक्त खेती के लिए काफ़ी ज़मीन दे दी जायेगी। वह ज़माना गुज़र चुका है जब रूसी कृषि को बस ज़मीन की ज़रूरत होती थी और उसके छोटे किसान को न्यूनाधिक आदिम औज़ारों से लैस करना काफ़ी होता था। वह ज़माना इसलिए और भी जल्दी गुज़र चुका है कि किसान का उत्पीड़न उसके खेत को अनुर्वर और निष्फल बना देता है। अब उसे बड़े पैमाने पर संगठित सामूहिक श्रम की ज़रूरत पड़ती है। तो सवाल उठता है कि जिस किसान के पास अपने दो या तीन देसियातीन पर काश्त के लिए आवश्यक औज़ार नहीं होते, क्या वह दस गुना अधिक देसियातीन पर काश्त करने के लिए बेहतर स्थिति में होगा?

परन्तु औज़ार, खाद, कृषिविधियां, आदि, अर्थात् सामूहिक श्रम के लिए अपरिहार्य सारे साधन कहां से मिलेंगे? इसी में रूसी "ग्रामीण समुदाय" की इसी क़िस्म के पुरातन समुदायों पर अत्यधिक श्रेष्ठता निहित है। अकेला यही यूरोप में विशाल राष्ट्रीय पैमाने पर अक्षुण्ण है। इस प्रकार यह अपने को ऐसे ऐतिहासिक परिवेश में पाता है जहां पूंजीवादी उत्पादन का समवर्ती अस्तित्व उसे सामूहिक श्रम की सारी अवस्थाएं मुहैया करता है। उसके लिए पूंजीवादी प्रणाली की कावडिन घाटी के बीच से गुज़रे बिना उसकी सारी सकारात्मक उपलब्धियों का उपयोग करना सम्भव हो जाता है। रूसी भूमि की भौतिक समाकृति बड़े पैमाने पर संगठित तथा सहकारी श्रम द्वारा संचालित, मशीनों की सहायता से खेती के लिए अनुकूल है। जहां तक आरम्भिक संगठनात्मक लागतों – बौद्धिक तथा सामग्री दोनों – का सम्बन्ध है, इन्हें मुहैया करने के लिए रूसी समाज "ग्रामीण समुदाय" के प्रति कर्त्तव्यबद्ध है, जिसके ख़ून-पसीने पर वह अब तक ज़िंदा रहता आया है और जिसके अन्दर उसे "अपने पुनर्जनन का स्रोत" ढूंढ़ना होगा।

"ग्रामीण समुदाय" का यह विकास हमारे युग में इतिहास की प्रक्रिया के अनुकूल है, इसका सर्वोत्तम प्रमाण यूरोप तथा अमरीका के देशों में पूंजीवादी उत्पादन द्वारा, जहां वह सबसे अधिक विकसित है, अनुभव किया जा रहा घातक संकट है, ऐसा संकट है जिसका अन्त पूंजीवाद के उन्मूलन के साथ, सबसे पुरातन क़िस्म के श्रेष्ठ रूप की ओर, सामूहिक उत्पादन तथा हस्तगतकरण की ओर आधुनिक समाज की वापसी के साथ होगा।

४) विकसित होने के लिए सर्वोपरि जीवित रहना आवश्यक है, और हर कोई जानता है कि वर्तमान काल में "ग्रामीण समुदाय" संकट में है।

ग्राम्य समुदाय एक ओर लगभग पतन के कगार पर है, और दूसरी ओर उसके लिए यह ख़तरा है कि उस पर अन्तिम आघात करने का ज़ोरदार षड्यंत्र रचा जा रहा है। रूसी समुदाय को बचाने के लिए रूसी क्रांति होनी चाहिये। प्रसंगतः जिनके हाथों में राजनीतिक तथा सामाजिक शक्ति है, वे जनसाधारण को इस प्रकार की महाविपत्ति के लिए तैयार करने का भरसक प्रयत्न कर रहे हैं।

साथ ही जहां इधर समुदाय का रक्त बहाया जा रहा है तथा उसे यंत्रणा दी जा रही है, वहां "समाज के नये स्तम्भों के" साहित्यिक दुमछल्ले समुदाय के शरीर में किये गये ज़ख्मों की ओर विद्रूपपूर्ण ढंग से इशारा करते हुए उन्हें उसकी स्वतःस्फूर्त जर्जरता का प्रतीक बता रहे हैं। उनका दावा है कि उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो रही है तथा सबसे दया का काम उसकी पीड़ा का अन्त कर देना होगा। यहां हमारा वास्ता समस्या के समाधान से नहीं रह गया है अपितु महज़ ऐसे दुश्मन से है जिसे परास्त किया जाना चाहिये। रूसी समुदाय को बचाने के लिए रूसी क्रान्ति होनी चाहिए। तथा रूसी सरकार और "समाज के नये स्तम्भ" जनसाधारण को इस प्रकार की महाविपत्ति के लिए तैयार करने की भरसक कोशिश कर रहे हैं। यदि क्रान्ति ठीक समय पर हो जाये, यदि वह ग्रामीण समुदाय का मुक्त विकास सुनिश्चित करने पर अपनी तमाम शक्तियां संकेन्द्रित करे तो ग्रामीण समुदाय शीघ्र रूसी समाज में पुनरुद्धारक शक्ति के रूप में और उन देशों की तुलना में, जो अब भी पूंजीवादी प्रणाली के जूए के नीचे हैं, एक श्रेष्ठ तत्व के रूप में प्रकट होगा।

मार्क्स द्वारा १८८१ में फ़रवरी के अन्त तथा मार्च के आरम्भ में लिखित। — अंग्रेज़ी से अनूदित।

सर्वप्रथम 'मार्क्स और एंगेल्स पुरालेखागार', पुस्तक १, १६२४ में प्रकाशित।

प्रतिष्ठानों समेत), जो ग्रामीण समुदाय की वर्तमान अवस्था को इतना लाभप्रद पाते हैं, सोने के अंडे दे रही इस मुर्गी के गले पर छुरी चलाने का षड्यंत्र क्यों रच रहे हैं? ठीक इसलिए कि वे अनुभव करते हैं कि "वर्तमान अवस्था" ज़्यादा देर तक टिकनेवाली नहीं है और फलस्वरूप शोषण के वर्तमान साधन उपयुक्त नहीं रह गये हैं। किसान की तंगहाली ज़मीन को पहले ही अनुर्वरक कर चुकी है जो निष्फल बन गयी है। उसने कुछ सालों के दौरान अनुकूल परिस्थितियों के अन्तर्गत जो बढ़िया फ़सलें दी हैं, उनका प्रभाव हमारे वर्षों के अकालों ने ख़त्म कर दिया है। गत दस वर्षों के औसत आंकड़ों से पता चलता है कि कृषि उत्पादन अवरुद्ध ही नहीं है, वरन् उसमें गिरावट भी आयी है। अन्ततः रूस अनाज का निर्यात करने के बजाय पहली बार उसका आयात करने के लिए विवश हुआ है। वक़्त गंवाने की गुंजाइश नहीं है। स्थिति का अन्त करना होगा। कमोबेश दौलतमन्द किसानों की अल्पसंख्या के बीच एक ग्राम्य मध्यम वर्ग गठित किया ही जाना चाहिए तथा किसानों की बहुसंख्या को बस सर्वहारा में परिणत किया जाना चाहिए। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर "समाज के नये स्तम्भों" के प्रवक्ता समुदाय के शरीर को पहुंचाये गये ज़ख़्मों को उसकी जर्जरता का स्वाभाविक प्रतीक बताते हैं।

जब इतने अधिक विविध हितों ने, विशेष रूप से अलेक्सान्द्र द्वितीय के सौम्य शासन के अन्तर्गत "समाज के नये स्तम्भों" के हितों ने "ग्रामीण समुदाय" की "**वर्तमान अवस्था**" को अपने लिए लाभप्रद पाया है तो वे उसे नष्ट करने के लिए क्यों षड्यंत्र रच रहे हैं? उनके प्रवक्ता समुदाय के शरीर को पहुंचाये गये ज़ख़्मों को उसकी स्वाभाविक जर्जरता का अकाट्य प्रमाण क्यों बताते हैं? वे सोने की अंडे दे रही मुर्गी के गले पर छुरी क्यों चला रहे हैं?

महज़ इसलिए कि आर्थिक उपादानों ने, जिनका यहां विश्लेषण करने से मैं विषय से बहुत दूर चला जाऊंगा, यह रहस्य उजागर कर दिया है कि **समुदाय की वर्तमान अवस्था देर तक जारी रहनेवाली नहीं है,** कि जनसाधारण का शोषण करनेवाले वर्तमान साधन उपयुक्त नहीं रह गये हैं। फलस्वरूप किसी नवीन वस्तु की आवश्यकता है और इस नये तत्व का, जिसे भिन्न-भिन्न रूपों में लाने की कोशिश की जा रही है, सार सदैव इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है—सामुदायिक स्वामित्व का उन्मूलन, अल्पसंख्यक कमोबेश दौलतमन्द किसानों में से एक ग्राम्य मध्यम वर्ग का गठन तथा विशाल बहुसंख्या को सर्वहारा में परिणत कर देना।

फ्रेडरिक एंगेल्स

कार्ल मार्क्स की समाधि पर भाषण

१४ मार्च को तीसरे पहर, पौने तीन बजे, संसार के सबसे महान विचारक की चिन्तन-क्रिया बन्द हो गयी। उन्हें मुश्किल से दो मिनट के लिए अकेला छोड़ा गया होगा, लेकिन जब हम लोग लौटकर आये, हमने देखा कि वह आरामकुर्सी पर शान्ति से सो गये हैं—परन्तु सदा के लिए।

इस मनुष्य की मृत्यु से यूरोप और अमरीका के जुझारू सर्वहारा वर्ग की और ऐतिहासिक विज्ञान की अपार क्षति हुई है। इस ओजस्वी आत्मा के महाप्रयाण से जो अभाव पैदा हो गया है, लोग शीघ्र ही उसे अनुभव करेंगे।

जैसे कि जैव प्रकृति में डार्विन ने विकास के नियम का पता लगाया था, वैसे ही मानव-इतिहास में मार्क्स ने विकास के नियम का पता लगाया था। उन्होंने इस सीधी-सादी सचाई का पता लगाया—जो अब तक विचारधारा की अतिवृद्धि से ढंकी हुई थी—कि राजनीति, विज्ञान, कला धर्म, आदि में लगने के पूर्व मनुष्य-जाति को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना और सिर के ऊपर साया चाहिए। इसलिए जीविका के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन और फलतः किसी युग में अथवा किसी जाति द्वारा उपलब्ध आर्थिक विकास की मात्रा ही वह आधार है जिस पर राजकीय संस्थाएं, क़ानूनी धारणाएं, कला और यहां तक कि धर्म-सम्बन्धी धारणायें भी विकसित होती हैं। इसलिए इस आधार के ही प्रकाश में इन सब की व्याख्या की जा सकती है, न कि इससे उल्टा, जैसा कि अब तक होता रहा है।

परन्तु इतना ही नहीं, मार्क्स ने गति के उस विशेष नियम का पता लगाया जिससे उत्पादन की वर्तमान पूंजीवादी प्रणाली और इस प्रणाली से उत्पन्न पूंजीवादी समाज, दोनों ही नियंत्रित हैं। अतिरिक्त मूल्य के आविष्कार से एकबारगी उस समस्या पर प्रकाश पड़ा, जिसे हल करने की कोशिश में किया गया अब तक

सारा अन्वेषण – चाहे वह पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ने किया हो या समाजवादी आलोचकों ने, अन्ध-अन्वेषण ही था।

ऐसे दो आविष्कार एक जीवन के लिए काफ़ी हैं। वह मनुष्य भाग्यशाली है, जिसे इस तरह का एक भी आविष्कार करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। परन्तु जिस भी क्षेत्र में मार्क्स ने खोज की – और उन्होंने बहुत-से क्षेत्रों में खोज की और एक में भी सतही छानबीन करके ही नहीं रह गये – उसमें यहां तक कि गणित में भी, उन्होंने स्वतंत्र खोजें कीं।

ऐसे वैज्ञानिक थे वह। परन्तु वैज्ञानिक का उनका रूप उनके समग्र व्यक्तित्व का अर्द्धांश भी न था। मार्क्स के लिए विज्ञान ऐतिहासिक रूप से एक गतिशील, क्रान्तिकारी शक्ति था। वैज्ञानिक सिद्धान्तों में किसी नयी खोज से, जिसके व्यावहारिक प्रयोग का अनुमान लगाना अभी सर्वथा असंभव हो, उन्हें कितनी भी प्रसन्नता क्यों न हो, जब उनकी खोज से उद्योग-धन्धों और सामान्यतः ऐतिहासिक विकास में कोई तात्कालिक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते दिखाई देते थे, तब उन्हें बिल्कुल ही दूसरे ढंग की प्रसन्नता का अनुभव होता था। उदाहरण के लिए बिजली के क्षेत्र में हुए आविष्कारों के विकास-क्रम का और मरसैल देप्रे के हाल के आविष्कारों का मार्क्स बड़े ग़ौर से अध्ययन कर रहे थे।

मार्क्स सर्वोपरि क्रान्तिकारी थे। जीवन में उनका असली उद्देश्य किसी न किसी तरह पूंजीवादी समाज और उससे पैदा होनेवाली राजकीय संस्थाओं के ध्वंस में योगदान करना था, आधुनिक सर्वहारा वर्ग को आज़ाद करने में योग देना था, जिसे सबसे पहले **उन्होंने ही** अपनी स्थिति और आवश्यकताओं के प्रति सचेत किया और बताया कि किन परिस्थितियों में उसका उद्धार हो सकता है। संघर्ष करना उनका सहज गुण था। और उन्होंने ऐसे जोश, ऐसी लगन और ऐसी सफलता के साथ संघर्ष किया जिसका मुक़ाबला नहीं है। प्रथम *«Rheinische Zeitung»* (१८४२) में, पेरिस के *«Vorwärts!»*[121] (१८४४) में, *«Deutsche-Brüsseler-Zeitung»* (१८४७) में, *«Neue Rheinische Zeitung»* (१८४८–१८४९) में, *«New-York Daily Tribune»* (१८५२–१८६१) में उनका काम, इनके अलावा अनेक जोशीली पुस्तिकाओं की रचना, पेरिस, ब्रसेल्स और लन्दन के संगठनों में काम और अन्ततः उनकी चरम उपलब्धि महान अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की स्थापना – यह इतनी बड़ी उपलब्धि थी कि इस संगठन का संस्थापक, यदि उसने कुछ भी और न किया होता, उस पर उचित ही गर्व कर सकता था।

इस सब के फलस्वरूप मार्क्स अपने युग के सबसे अधिक विद्वेष तथा लांछना के शिकार बने। निरंकुशतावादी और जनतंत्रवादी, दोनों ही तरह की सरकारों ने उन्हें अपने राज्यों से निकाला। पूंजीपति, चाहे वे रूढ़िवादी हों चाहे घोर जनवादी, मार्क्स को बदनाम करने में एक दूसरे से होड़ करते थे। मार्क्स इस सब को यूं झटकारकर अलग कर देते थे जैसे वह मकड़ी का जाला हो, उसकी ओर ध्यान न देते थे, आवश्यकता से बाध्य होकर ही उत्तर देते थे। और अब वह इस संसार में नहीं हैं। साइबेरिया की खानों से लेकर कैलिफ़ोर्निया तक, यूरोप और अमरीका के सभी भागों में उनके लाखों क्रान्तिकारी मज़दूर साथी जो उन्हें प्यार करते थे, उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, आज उनके निधन पर आंसू बहा रहे हैं। मैं यहां तक कह सकता हूं कि चाहे उनके विरोधी बहुत-से रहे हों, परन्तु उनका कोई व्यक्तिगत शत्रु शायद ही रहा हो।

उनका नाम युगों-युगों तक अमर रहेगा, वैसे ही उनका काम भी अमर रहेगा!

एंगेल्स द्वारा हाइगेट क़ब्रिस्तान, लन्दन में, १७ मार्च १८८३ को अंग्रेज़ी में दिया गया भाषण।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

जर्मन में २२ माच १८८३ को «*Der Sozialdemokrat*» समाचारपत्र, अंक १३ में प्रकाशित।

फ्रेडरिक एंगेल्स

मार्क्स तथा «*Neue Rheinische Zeitung*» (१८४८–१८४९)[122]

जिस समय फ़रवरी क्रान्ति[123] की अग्नि प्रज्ज्वलित हुई, जर्मन "कम्युनिस्ट पार्टी" – हम उसे इसी नाम से पुकारते थे – एक छोटा-सा अन्तर्भाग था, यह अन्तर्भाग था कम्युनिस्ट लीग, जो एक गुप्त प्रचार समाज के रूप में संगठित की गयी थी। लीग महज़ इसलिए गुप्त थी कि उस समय जर्मनी में संघबद्ध होने की या सभाएं करने की कोई स्वतंत्रता नहीं थी। विदेशों में मज़दूर समाजों के अलावा, जिनसे वह अपने लिए सदस्य प्राप्त करती थी, उसके पास स्वयं देश में तीस समाज अथवा शाखाएं थीं तथा इनके अलावा कई स्थानों में इक्के-दुक्के सदस्य थे। परन्तु इस मामूली संघर्षशील दस्ते के पास **मार्क्स** के रूप में एक ऐसा प्रथम कोटि का नेता था, जिनके मातहत होना सबने स्वेच्छया स्वीकार कर लिया था, जिनकी बदौलत इस दस्ते को सिद्धान्तों तथा कार्यनीति का एक ऐसा कार्यक्रम – **कम्युनिस्ट घोषणापत्र** – प्राप्त हुआ, जिसकी सार्थकता आज भी अक्षुण्ण है।

यहां हमारा सम्बन्ध सर्वोपरि कार्यनीतिक भाग से है। इस भाग में सामान्य रूप से कहा गया है –

"कम्युनिस्ट मज़दूर वर्ग की दूसरी पार्टियों के मुक़ाबले में अपनी कोई अलग पार्टी नहीं बनाते।

"समग्र रूप से सर्वहारा वर्ग के हितों के अलावा और उनसे पृथक् उनके कोई हित नहीं हैं।

"वे सर्वहारा आन्दोलन को किसी ख़ास नमूने पर ढालने या उसे विशेष रूप प्रदान करने के लिए अपना कोई संकीर्णतावादी सिद्धान्त स्थापित नहीं करते।

"कम्युनिस्टों और दूसरी मज़दूर पार्टियों में अन्तर सिर्फ़ यह है कि: १. विभिन्न देशों के सर्वहाराओं के राष्ट्रीय संघर्षों में **राष्ट्रीयता के तमाम भेदभावों**

पैंतालीस वर्ष बाद वह मैड्रिड से लेकर सेंट पीटर्सबर्ग तक तमाम संकल्पशील तथा वर्ग सचेत मज़दूर पार्टियों के लिए पथ-प्रदर्शक लाइन बना हुआ है।

पेरिस में फ़रवरी की घटनाओं ने आसन्न जर्मन क्रान्ति को त्वरित किया और इस प्रकार उसका स्वरूप परिवर्तित कर दिया। जर्मन पूंजीपति वर्ग ने अपनी शक्ति के बल पर विजय प्राप्त करने के बजाय फ़ांसीसी मज़दूरों की क्रान्ति से संलग्न होकर विजय प्राप्त की। अपने पुराने विरोधियों – निरंकुश राजतंत्र, सामन्ती भूस्वामित्व, नौकरशाही तथा कायर प्रतिक्रियावादी निम्नपूंजीपति वर्ग – का तख़्ता निर्णायक रूप से उलटने से पहले ही उसे एक नये शत्रु का, सर्वहारा वर्ग का सामना करना पड़ा। परन्तु फ़्रांस तथा इंगलैंड की तुलना में कहीं अधिक पिछड़ी हुई आर्थिक परिस्थितियों और उनके फलस्वरूप उसी तरह की पिछड़ी हुई वर्ग स्थिति के प्रभाव यहां तत्क्षण प्रदर्शित हो गये।

जर्मन पूंजीपति वर्ग के पास, जिसने अपने बड़े पैमाने के उद्योग की स्थापना करना अभी आरम्भ ही किया था, राज्य पर बिना शर्त प्रभुत्व हासिल करने के लिए न तो शक्ति थी और न साहस। और न ऐसा करने की कोई जीवन्त आवश्यकता ही थी। सर्वहारा को, जो उतना ही अविकसित था, पूरी बौद्धिक दासता के अन्तर्गत बड़ा हुआ, असंगठित था और यही नहीं स्वतंत्र संगठन करने में अक्षम था, अपने तथा पूंजीपति वर्ग के हितों के बीच गहन विरोध की केवल धुंधली समझ थी। यही कारण है कि वह पूंजीपति वर्ग का घोर विरोधी होने के बावजूद उसका राजनीतिक पुच्छल्ला ही बना रहा। सर्वहारा वर्ग क्या था, पूंजीपति वर्ग इससे नहीं, वरन् इस बात से भयभीत था कि उसके क्या होने की आशंका थी और फ़्रांसीसी सर्वहारा क्या बन चुका था, इसलिए उसने राजतंत्र तथा अभिजात वर्ग के साथ घोर कायरतापूर्ण सौदेबाज़ी तक में अपने निस्तार का एकमात्र रास्ता देखा। चूंकि सर्वहारा अभी अपनी ऐतिहासिक भूमिका से अवगत नहीं था, इसलिए उसके अधिकांश भाग को शुरू में पूंजीपति वर्ग के सर्वाधिक अग्रणी, घोर वामपंथ की भूमिका ग्रहण करनी पड़ी। जर्मन मज़दूरों को सर्वोपरि एक वर्ग पार्टी के रूप में अपने स्वतंत्र संगठन के लिए अपरिहार्य अधिकारों – अख़बारों, संघबद्धता तथा सभाओं की आज़ादी – को, उन अधिकारों को हासिल करना था, जिनके लिए पूंजीपति वर्ग को स्वयं अपने शासन के हितार्थ लड़ना चाहिए था, परन्तु जिन्हें अब वह – जहां तक उनका मज़दूरों के साथ सम्बन्ध था – डर के मारे चुनौती देने लगा था। लीग के चन्द सौ अलग-थलग सदस्य सहसा आन्दोलन की लपेट में आनेवाले विशाल जनसमुदाय के बीच खो

को छोड़कर वे पुरे सर्वहारा वर्ग के **सामान्य हितों** की ओर इशारा करते हैं और उन्हें सामने लाते हैं; २. पूंजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ सर्वहारा वर्ग का संघर्ष जिन विभिन्न मंज़िलों से गुज़रता हुआ आगे बढ़ता है, उनमें हमेशा और हर जगह वे **समग्र आन्दोलन के हितों** का प्रतिनिधित्व करते हैं।

"अतः एक ओर, **व्यावहारिक दृष्टि से** कम्युनिस्ट हर देश की मज़दूर पार्टियों के सबसे उन्नत तथा कृतसंकल्प भाग होते हैं, ऐसे भाग जो औरों को आगे बढ़ने के लिए प्रेरित करते हैं; दूसरी ओर, **सैद्धान्तिक दृष्टि से**, वे सर्वहारा वर्ग के विशाल जनसमुदाय की अपेक्षा इस अर्थ में श्रेष्ठ हैं कि वे सर्वहारा आन्दोलन के आगे बढ़ने के रास्ते की, उसके हालात और सामान्य अन्तिम नतीजों की सुस्पष्ट समझ रखते हैं।"*

जहां तक जर्मन पार्टी का सम्बन्ध है, उसने विशेष रूप से कहा—

"जर्मनी में जब-जब वहां का पूंजीपति वर्ग निरंकुश राजतंत्र, सामन्ती भूस्वामियों तथा प्रतिक्रियावादी निम्नपूंजीपतियों के ख़िलाफ़ क्रान्तिकारी कार्रवाई करता है, तब वे** उसके साथ मिलकर लड़ते हैं।

"लेकिन वे मज़दूर वर्ग को सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के शत्रुतापूर्ण विरोध का यथासम्भव स्पष्ट से स्पष्ट बोध कराना क्षणभर के लिए भी नहीं रोकते ताकि जर्मन मज़दूर उन सामाजिक और राजनीतिक अवस्थाओं को, जिन्हें पूंजीपति वर्ग अपने प्रभुत्व के साथ अनिवार्यतः लागू करेगा, फ़ौरन पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध साधन के रूप में इस्तेमाल करना शुरू कर सकें, ताकि जर्मनी में प्रतिक्रियावादी वर्गों का तख़्ता उलटने के बाद स्वयं पूंजीपति वर्ग के ख़िलाफ़ तुरन्त ही लड़ाई की शुरूआत की जा सके।

"जर्मनी की ओर कम्युनिस्ट ख़ास तौर से इसलिए ध्यान देते हैं कि वह देश पूंजीवादी क्रान्ति के द्वार पर खड़ा है," आदि ('घोषणापत्र', अनुभाग ४)।***

आज तक किसी भी अन्य कार्यनीतिक कार्यक्रम ने अपना औचित्य इतनी अच्छी तरह सिद्ध नहीं किया है जितना इसने। क्रान्ति की पूर्ववेला में प्रस्तुत यह कार्यक्रम क्रान्ति की परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है। इस अवधि के उपरान्त जब भी कोई पार्टी इससे भटकी है, उसे उसकी सजा भुगतनी पड़ी है; और आज लगभग

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। — **सं०**

** अर्थात् कम्युनिस्ट। — **सं०**

*** वही। — **सं०**

उसके नौकरशाहों के झुंड, दरबारी शोहदों समेत, उसके मात्र "Residenz"* होने के पूरे स्वरूप समेत–अच्छी तरह जानते थे। परन्तु निर्णायक महत्त्व इस तथ्य का था–बर्लिन में मनहूस प्रशियाई Landrecht** का प्रभुत्व था तथा राजनीतिक मुक़दमे पेशेवर मैजिस्ट्रेट चलाते थे; राइन में नेपोलियन संहिता लागू थी, जिसके अन्तर्गत अख़बारों पर मुक़दमे नहीं चलते क्योंकि वह सेंसरशिप की पूर्वकल्पना करती है; और यदि कोई राजनीतिक दुराचरण न करे और केवल **अपराध** करे तो उसे जूरी के सामने पेश किया जाता है; बर्लिन में क्रान्ति के बाद नौजवान श्लोफ़ेल को मामूली आरोप में एक साल की सज़ा दी गयी थी जबकि राइन में हमें प्रेस की बन्धनमुक्त स्वतंत्रता प्राप्त थी–और हमने उसका अन्तिम छोर तक उपयोग किया।

इस प्रकार हमने १ जून १८४८ को पत्र का प्रकाशन बहुत सीमित शेयर पूंजी के साथ आरम्भ किया, जिसमें से अत्यल्प राशि की अदायगी की गयी थी; शेयरहोल्डर बहुत विश्वसनीय नहीं थे। उनमें से आधे तो पहले अंक के तुरन्त बाद अलग हो गये तथा एक माह का अन्त होते-होते एक भी हमारे साथ नहीं रहा।

सम्पादकीय संविधान सीधे-सीधे मार्क्स का अधिनायकत्व था। एक निश्चित समय पर निकलनेवाला कोई बड़ा दैनिक पत्र किसी दूसरी तरह के संविधान के ज़रिए अपने सुसंगत नीति का पालन नहीं कर सकता। इसके अलावा यहां मार्क्स का अधिनायकत्व निस्सन्देह अविवादास्पद था तथा उसे हम सबने स्वेच्छया स्वीकार किया था। यह उनकी स्पष्ट दृष्टि तथा दृढ़ रुख़ ही था जिन्होंने इस पत्र को क्रान्ति के वर्षों का सबसे प्रख्यात पत्र बना दिया था।

«*Neue Rheinische Zeitung*» के राजनीतिक कार्यक्रम में दो मुख्य मुद्दे थे:

एक अविभाज्य, जनवादी जर्मन जनतंत्र तथा रूस के साथ युद्ध, जिसमें पोलैंड का पुनःस्थापन शामिल था।

निम्नपूंजीवादी जनवाद उस ज़माने में दो धड़ों में विभक्त था–उत्तरी जर्मन, जो जनवादी प्रशियाई सम्राट को सहन करने पर आपत्ति न करता, तथा दक्षिणी

---

* सत्तारूढ़ राजा का स्थान। –**सं०**

** देश का क़ानून। –**सं०**

गये। इस प्रकार जर्मन सर्वहारा वर्ग राजनीतिक रंगमंच पर आरम्भ में उग्र जनवादी पार्टी के रूप में प्रकट हुआ।

इस चीज़ ने हमारा झंडा उस समय निर्धारित कर दिया था जब हमने जर्मनी में एक बड़े अख़बार की स्थापना की। यह झंडा केवल जनवाद का ही हो सकता था, परन्तु केवल ऐसे जनवाद का, जो सर्वत्र हर विषय में विशिष्ट सर्वहारा स्वरूप पर ज़ोर देता था, परन्तु जिसे वह अभी सदा-सर्वदा के लिए अपने झंडे पर अंकित नहीं कर सका था। यदि हम इस ओर न बढ़ते, यदि हम आन्दोलन में शामिल न होना चाहते और उसके पहले से विद्यमान, सबसे उन्नत, वस्तुत: सर्वहारा पक्ष का साथ न देना चाहते और उसे आगे न बढ़ाना चाहते तो हमारे लिए इसके अलावा करने के लिए और कुछ न रह जाता कि हम एक छोटे-से प्रान्तीय पर्चे में कम्युनिज़्म का प्रचार करें तथा एक महान कार्यशील पार्टी के बजाय एक छोटे-से पंथ की स्थापना करें। परन्तु हम वीरान में उपदेशकों की भूमिका के लिए उपयुक्त नहीं रह गये थे; इसके लिए तो हम कल्पनावादियों का भलीभांति अध्ययन कर चुके थे; और हमने अपना कार्यक्रम इसके लिए तैयार नहीं किया था।

जब हम लोग कोलोन पहुंचे तो वहां कुछ हद तक जनवादी तथा कुछ हद तक कम्युनिस्ट एक बड़ा अख़बार निकालने की तैयारी कर चुके थे। ये इसे विशुद्ध रूप से कोलोन का अख़बार बनाना चाहते थे तथा हमें बर्लिन निर्वासित करना चाहते थे। परन्तु चौबीस घंटों के अन्दर अन्दर, ख़ास तौर पर मार्क्स की बदौलत, हमने बाज़ी मार ली तथा अख़बार हमारा हो गया। इसके लिए रियायत के रूप में **हेनरिक बर्गर्स** को सम्पादकमंडल में ले लिया गया। उसने उसके लिए केवल **एक** लेख (अंक २) लिखा, उसके बाद कभी नहीं।

हम ठीक कोलोन पहुंचे, बर्लिन नहीं। सबसे पहले इसलिए कि कोलोन राइन प्रान्त की राजधानी था, जो फ़्रांसीसी क्रान्ति को अनुभव कर चुका था, जिसने नेपोलियन संहिता से अपने लिए **आधुनिक** क़ानूनी अवधारणाएं प्राप्त कर ली थीं, जो बड़े पैमाने के सबसे महत्त्वपूर्ण उद्योग का कहीं अधिक विकास कर चुका था और जो उस समय हर दृष्टि में जर्मनी का सबसे उन्नत भाग था। हम अपने पर्यवलोकन के बल पर तत्कालीन बर्लिन को – उसके अभी मुश्किल से प्रस्फुटित पूंजीपति वर्ग समेत, उसके कथनी में गुस्ताख़ परन्तु करनी में कायर चापलूस निम्नपूंजीपति वर्ग समेत, उसके अब भी पूरी तरह अविकसित मज़दूरों,

जाते तथा प्रस्ताव पास किये जाते थे, जिनका उद्देश्य जर्मन कूपमंडूकों को प्रेरित करना होता था परन्तु जिनकी ओर और कोई ध्यान नहीं देता था।

बर्लिन सभा अधिक महत्त्व की थी। वह एक वास्तविक शक्ति के विरुद्ध खड़ी थी, वह हवाई बहस नहीं करती थी, न हवाई प्रस्ताव पास करती थी, वह फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा की तरह बादलों के ऊपर उड़ान नहीं भरती थी। फलस्वरूप उसकी विस्तारपूर्वक चर्चा की जाती थी। परन्तु उसके भी वामपंथियों की आराध्य मूर्त्तियों पर—शुल्त्ज़े-डेलिच, बेरेंड्स, एल्सनेर, स्टेइन, आदि पर—हम उतनी ही तीक्ष्णतापूर्वक प्रहार करते थे, जितनी तीक्ष्णतापूर्वक फ़्रैंकफ़ुर्ट सभा के लोगों पर करते थे; हमने उनकी हिचकिचाहट, ढुलमुलपन तथा टुच्ची किफ़ायतसारी का निर्ममतापूर्वक पर्दाफ़ाश किया और सिद्ध किया कि वे कैसे क़दम-ब-क़दम अपने ईमान को ताक पर रखते हुए क्रान्ति के साथ ग़द्दारी कर रहे हैं। इससे निम्नपूंजीपति स्वभावतः भयभीत हो गये थे, जिन्होंने अपने इस्तेमाल के लिए इन आराध्य मूर्त्तियों को अभी-अभी गढ़ा था। हमारे लिए उनका इस तरह भयभीत होना इस बात का संकेत था कि हमारा निशाना बिल्कुल सही बैठा है।

इसी तरह हमने निम्नपूंजीपति वर्ग द्वारा बड़े उत्साहपूर्वक प्रसारित इस भ्रम का भी विरोध किया कि मार्च के दिनों के साथ क्रान्ति का अन्त हो चुका है तथा उसके फल बटोरने का समय आ चुका है। हमारे लिए फ़रवरी तथा मार्च को वास्तविक क्रान्ति का महत्त्व उसी सूरत में प्राप्त होता जब वे उस लम्बे क्रान्तिकारी आन्दोलन का समापन नहीं, वरन् इसके विपरीत प्रस्थान-बिन्दु होते, जिसमें महान फ़्रांसीसी क्रान्ति की तरह जनता अपने संघर्ष के माध्यम से और विकसित होती, पार्टियां उस समय तक अधिकाधिक तीक्ष्णतापूर्वक विभेदीकृत होती जातीं, जब तक वे बृहत् वर्गों—पूंजीपति वर्ग, निम्नपूंजीपति वर्ग तथा सर्वहारा वर्ग—के पूरी तरह अनुरूप न हो जातीं और जिसमें सर्वहारा संघर्षों की एक पूरी शृंखला में एक के बाद दूसरी स्थिति पर विजय प्राप्त करता। इसलिए हमने जनवादी निम्नपूंजीपति वर्ग का भी उस समय सर्वत्र विरोध किया जब उसने सर्वहारा के साथ अपने वर्ग-विरोध पर अपने इस प्रिय वाक्य का पर्दा डालने की चेष्टा की—आख़िर हम सब एक ही चीज़ तो चाहते हैं, सारे मतभेद मात्र ग़लतफ़हमी पर आधारित हैं। परन्तु निम्नपूंजीपति वर्ग में हमने अपने सर्वहारा जनवाद के बारे में ग़लतफ़हमी पैदा होने की जितनी कम गुंजाइश रखी, वह हमारे साथ सम्बन्ध में उतना ही अधिक नरम और विनयशील हो गया। उसका जितना ही अधिक दृढ़तापूर्वक विरोध किया जाये, वह उतनी ही तत्परता के साथ

जर्मन, उस समय प्रायः पूरी तरह विशिष्टतया बाडेन, जो स्विस माडेल के अनुसार जर्मनी को संघात्मक जनतंत्र में परिणत करना चाहता था। हमें दोनों से टक्कर लेनी थी। सर्वहारा के हित जर्मनी के प्रशियाईकरण तथा छोटे-छोटे राज्यों में उसके विभाजन की निरन्तरता के समान रूप से विरुद्ध थे। इन हितों ने जर्मनी का एक राष्ट्र में अन्तिम रूप से एकीकरण अनिवार्य बना दिया था। केवल यही तमाम छोटी-मोटी रुकावटों से साफ़ किया हुआ वह रणक्षेत्र प्रस्तुत कर सकता था जहां सर्वहारा तथा पूंजीपति वर्ग को अपनी ताक़त की आज़माइश करनी थी। परन्तु साथ ही सर्वहारा के हित प्रशा को शीर्ष स्थान पर पुनःप्रतिष्ठापित किये जाने के भी निर्णायक रूप से विरुद्ध थे। प्रशियाई राज्य अपनी पूरी प्रणाली, अपनी परम्परा तथा अपने राजवंश समेत ठीक वह एकमात्र संजीदा आन्तरिक विरोधी था, जिसका जर्मनी में क्रान्ति को तख़्ता उलटना था। यही नहीं, प्रशा जर्मनी को छिन्न-भिन्न करके ही, जर्मन आस्ट्रिया को अलग रखकर ही उसे एकीकृत कर सकता था। प्रशियाई राज्य को भंग करना तथा आस्ट्रियाई राज्य को विघटित करना, जनतंत्र के रूप में जर्मनी का वास्तविक एकीकण – हमारे पास और कोई तात्कालिक क्रान्तिकारी कार्यक्रम नहीं हो सकता था। इसकी पूर्त्ति रूस के साथ युद्ध से ही, मात्र ऐसे युद्ध से ही हो सकती थी। इस मुद्दे की ओर मैं बाद में लौटूंगा।

आम तौर पर अख़बार के स्वर में कदापि गाम्भीर्य, संजीदगी या जोश का पुट नहीं था। हमारे विरोधी केवल घृणा के पात्र थे तथा हमने उनमें से अधिकांश के प्रति अधिकतम तिरस्कार के साथ व्यवहार किया। षड्यंत्रकारी राजतंत्र, कुचक्र रचनेवाले, अभिजात वर्ग, *«Kreuz-Zeitung»*, पूरे का पूरा "प्रतिक्रियावाद", जिससे कूपमंडूकतावादी नैतिक रूप से क्रुद्ध थे – हम इनसे केवल एक ही तरह का व्यवहार करते थे – उनका मखौल उड़ाना, उन्हें अपमानित करना। क्रान्ति के माध्यम से रंगमंच पर प्रकट होनेवाली नयी आराध्य मूर्त्तियों – मार्च माह के मंत्रियों[124], फ़्रैंकफ़ुर्ट तथा बर्लिन संसदों[125] – उनमें दक्षिणपंथियों तथा वामपंथियों दोनों – के प्रति भी हमने कोई नरमी नहीं बरती। पहला ही अंक ऐसे लेख से शुरू हुआ, जिसमें फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद की नगण्यता, उसमें लम्बे-चौड़े भाषणों की व्यर्थता, उसके कायरताभरे प्रस्तावों की अनावश्यकता की खिल्ली उड़ायी गयी थी। इसकी क़ीमत हमने आधे शेयरहोल्डर खोकर चुकायी। फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद तो वाद-विवाद क्लब भी नहीं थी; वहां शायद ही कोई वाद-विवाद हुआ हो। वहां बहुधा पहले से तैयार किये-कराये पंडिताऊ शोध-प्रबन्ध प्रस्तुत किये

के विद्रोह ने हमें अपनी चौकी पर खड़ा पाया। पहली गोली के दाग़े जाने के समय से ही हम बिना शर्त विद्रोहियों के साथ रहे। उनकी पराजय के बाद मार्क्स ने अपने एक सबसे सशक्त लेख* में पराजितों को श्रद्धांजलि अर्पित की।

फिर बचे-खुचे शेयरहोल्डरों ने भी हमारा साथ छोड़ दिया। परन्तु हमें इस बात का सन्तोष प्राप्त था कि जर्मनी में तथा प्रायः पूरे यूरोप में हमारा ही एकमात्र ऐसा पत्र था जिसने उस समय पराजित सर्वहारा का फ़रहरा बुलन्द रखा जब तमाम देशों के पूंजीपति तथा निम्नपूंजीपति पराजितों पर बुरी तरह कीचड़ उछाल रहे थे।

हमारी विदेश नीति सीधी-सादी थी – प्रत्येक क्रान्तिकारी जनता के पक्ष में मैदान में उतरना, यूरोपीय प्रतिक्रियावाद के शक्तिशाली दुर्ग रूस के विरुद्ध क्रान्तिकारी यूरोप का आम युद्ध के लिए आह्वान करना। २४ फ़रवरी[127] से हमें यह स्पष्ट हो गया कि क्रान्ति का **एक ही** वास्तविक शक्तिशाली शत्रु – रूस – है और आन्दोलन जितना अधिक सर्वयूरोपीय पैमाने का बनेगा, यह दुश्मन संघर्ष में भाग लेने के लिए उतना ही अधिक मजबूर होगा। वियेना, मिलान तथा बर्लिन की घटनाओं को[128] रूसी हमले को यक़ीनन विलम्बित करना था, परन्तु क्रान्ति जितनी रूस के समीप पहुंचती, रूस के द्वारा अन्तिम रूप से मैदान में उतरना उतना ही निश्चित हो जाता। परन्तु यदि कोई जर्मनी को रूस से युद्ध शुरू कराने में सफल हो जाता है तो हैप्सबर्ग तथा होहेनज़ोलर्न ख़त्म हो जायेंगे और क्रान्ति पूरी लाइन में विजयी हो जायेगी।

यही नीति हमारे अख़बार के प्रत्येक अंक में हंगरी पर रूसियों के उस वास्तविक आक्रमण के क्षण तक छायी रही, जिसने हमारी भविष्यवाणी की पूरी तरह पुष्टि की तथा क्रान्ति की पराजय निश्चित की।

१८४९ के वसन्त में जब निर्णायक युद्ध समीप आता जा रहा था, अख़बार की भाषा प्रत्येक अंक के साथ अधिकाधिक उग्र तथा आवेगपूर्ण होती गयी। **विल्हेल्म वोल्फ़** ने सिलेशिया के किसानों को 'सिलेशिया अरब' शीर्षक लेखमाला में (आठ लेख)[129] याद दिलाया कि सामंती सेवाओं से मुक्ति पाने के समय कैसे ज़मींदारों ने सरकार की सहायता से उन्हें ठगकर उनका धन तथा उनकी ज़मीन हड़प ली थी, और इसके लिए उन्होंने हरजाने के रूप में एक अरब टालेर की मांग की।

---

* कार्ल मार्क्स, 'जून क्रान्ति'। – **सं०**

झुकता है और मज़दूरों की पार्टी के लिए उतनी ही ज़्यादा रियायतें करता है। इस बारे में हम आश्वस्त हो चुके हैं।

अन्ततः हमने तथाकथित विविध राष्ट्रीय सभाओं की संसदीय जड़वामनता (मार्क्स के शब्दों में) का पर्दाफ़ाश किया।* इन सज्जनों ने सत्ता के तमाम साधनों को अपने हाथों से खिसकने दिया, अंशतः स्वेच्छया उन्हें फिर से सरकारों को सौंप दिया। फ़्रैंकफ़ुर्ट की तरह बर्लिन में भी फिर से मज़बूत बनी प्रतिक्रियावादी सरकारों के साथ ये शक्तिहीन राष्ट्रीय सभाएं भी खड़ी थीं, जिनका विचार था कि उनके नपुंसकतापूर्ण प्रस्ताव दुनिया को उसकी नींव तक हिला देंगे। यह जड़वामनतापूर्ण आत्म-वंचना घोर वामपंथियों तक के बीच प्रचलित थी। हमने उनसे साफ़-साफ़ कहा कि संसदीय विजय के साथ उनकी पराजय होगी।

और बर्लिन तथा फ़्रैंकफ़ुर्ट दोनों जगह यही हुआ। जब "वामपंथियों" को बहुमत मिला, सरकार ने पूरी राष्ट्रीय सभा विसर्जित कर दी। वह ऐसा इसलिए कर सकी कि राष्ट्रीय सभा जनता के बीच अपनी साख खो बैठी थी।

आगे चलकर मैंने जब मारात के विषय में बुजार की पुस्तक पढ़ी तो मैंने देखा कि कई मामलों में हमने वास्तविक "Ami du Peuple"[126] के महान माडेल की (राजतंत्रवादियों द्वारा गढ़ा गया माडेल नहीं) केवल अचेत रूप से नक़ल की है, कि पूरी क्रोधाग्नि तथा इतिहास के सारे मिथ्याकरण का, जिसके बल पर लगभग पूरी एक शताब्दी तक मारात का पूर्णतः विकृत चित्र ही प्रस्तुत किया जाता रहा, एकमात्र कारण यह था कि मारात ने उस ज़माने की आराध्य मूर्त्तियों, लाफ़ायेत, बैली, आदि पर से पर्दा निर्ममतापूर्वक हटा दिया था तथा क्रान्ति के प्रति सरासर गद्दारों के रूप में उनका पर्दाफ़ाश किया था और वह हमारी ही तरह यह नहीं चाहते थे कि क्रान्ति समाप्त घोषित की जाये, वह चाहते थे कि क्रान्ति स्थायी रूप में चलती रहे।

हमने खुलेआम घोषित किया कि जिस तरह की प्रकृति के लोगों का हम प्रतिनिधित्व करते हैं, वे हमारे वास्तविक पार्टी-लक्ष्यों की पूर्त्ति के लिए संघर्ष के मैदान में तभी उतर सकते हैं, जब सत्ता जर्मनी में विद्यमान अधिकृत पार्टियों में से सबसे उग्र पार्टी के पास पहुंच जायेगी – तब हम उसके विपक्ष में हो जायेंगे।

परन्तु घटनाप्रवाह में हमारे जर्मन विरोधियों का मखौल ही नहीं उड़ाया गया अपितु प्रचंड आवेगों ने भी जन्म लिया। जून १८४८ में पेरिस के मज़दूरों

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग २। – सं०

'रहस्योद्घाटन' को समझने के लिए परमावश्यक है। मैं आशा करता हूं कि मार्क्स ने और मैंने अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलन के उस गौरवपूर्ण तारुण्य-काल के इतिहास के विषय में जो प्रचुर सामग्री संग्रहीत की है, उसका किसी दिन विशदीकरण करने का अवसर मुझे प्राप्त होगा।

* * *

पेरिस के जर्मन शरणार्थियों द्वारा १८३४ में स्थापित गुप्त जनवादी-जनतंत्रवादी "जलावतन लीग" के सबसे उग्र, मुख्यतः सर्वहारा, तत्त्व १८३६ में उससे अलग हो गये और उन्होंने नयी गुप्त लीग – **न्यायप्रियों की लीग** की स्थापना की। मूल लीग, जिसमें केवल जैकोब वेनेदे जैसे सुषुप्त मस्तिष्क वाले लोग ही बच रहे थे, जल्द ही नींद में बिल्कुल बेख़बर हो गयी। १८४० में जिस समय पुलिस ने उसके कुछ भागों का जर्मनी में सुराग़ लगाया, उस समय लीग अपने पुराने रूप की छाया भी नहीं रह गयी थी। इसके विपरीत, नयी लीग अपेक्षाकृत तेज़ी से बढ़ी। मूलतः यह फ़्रांसीसी मज़दूर कम्युनिज़्म की एक विच्छिन्न जर्मन शाखा थी। यह मज़दूर कम्युनिज़्म बाब्योफ़वाद[131] का स्मरण दिलाता था और प्रायः उसी समय पेरिस में पनपा था। उसमें वस्तुओं के सम्मिलित स्वामित्व की, उसे "समानता" का आवश्यक परिणाम मानते हुए, मांग की जाती थी। उसके लक्ष्य वे ही थे जो पेरिस की तत्कालीन गुप्त संस्थाओं के थे। वह आधा प्रचारक संघ था और आधा षड्यंत्रकारी संगठन। किन्तु पेरिस को ही सदा क्रान्तिकारी कार्य का केन्द्र माना जाता था, यद्यपि जर्मनी में यदा-कदा पर्युत्क्षेपण-षड्यंत्र की तैयारी को अपवर्जित कदापि नहीं किया गया था। पर चूंकि पेरिस ही निर्णायक रणक्षेत्र था, इसलिए लीग उस समय दरअसल फ़्रांसीसी गुप्त संस्थाओं की, ख़ासकर Société des saisons* की, जिसके नेता ब्लांकी और बार्बेस थे और जिसके साथ घनिष्ठ सम्पर्क क़ायम रखा जाता था, जर्मन शाखा से अधिक कुछ न थी। फ़्रांसीसी १२ मई १८३९ को मुहिम में उतर पड़े। लीग की शाखाओं ने भी उनका साथ दिया। जब पराजय हुई[132] तो उन्हें भी उसका फल भुगतना पड़ा।

गिरफ़्तार होनेवाले जर्मनों में **कार्ल शापर** और **हेनरिक बावेर** भी थे। लूई फ़िलिप की सरकार ने उन्हें लम्बे अर्से तक जेल में रखने के बाद देश से निकाल

---

* ऋतु-समाज। – **सं०**

उसी समय, अप्रैल माह में, 'उजरती श्रम तथा पूंजी'* शीर्षक से **मार्क्स** की कृति सम्पादकीय लेखमाला के रूप में प्रकाशित हुई, जिसमें हमारी नीति के सामाजिक उद्देश्यों की ओर स्पष्ट रूप से संकेत किया गया था। प्रत्येक लेख, प्रत्येक विशेषांक बड़े युद्ध की ओर, जिसकी तैयारी हो रही थी, फ़्रांस, इटली, जर्मनी तथा हंगरी में तीक्ष्ण होते जा रहे विरोधों की ओर संकेत कर रहा था। ख़ास तौर पर अप्रैल तथा मई के विशेषांकों में जनता का आह्वान किया गया कि वह प्रत्यक्ष कार्रवाई के लिए तैयार रहे।

पूरे जर्मनी में इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया जा रहा था कि हम प्रथम कोटि के एक प्रशियाई दुर्ग के अन्दर, ८,००० सैनिकों के गैरीज़न तथा सैनिकों की चौकी के सामने अपना काम निश्चिंततापूर्वक करते जा रहे थे। परन्तु सम्पादकों के कमरे में संगीनों वाली आठ राइफलों, २५० कारतूसों तथा कम्पोज़िटरों की लाल जैकोबिनी टोपियों के कारण हमारा कार्यालय अफ़सरों को एक ऐसे दुर्ग के रूप में दिखायी देता था, जिसे सहसा सैन्याघात से नष्ट नहीं किया जा सकता था।

आख़िर १८ मई १८४९ को प्रहार हुआ।

ड्रेस्डन तथा एल्बर्फ़ेल्ड में विद्रोह दबा दिया गया, आइज़ेरलोन में विद्रोही घेर लिये गये; राइन प्रान्त तथा वेस्टफ़ालिया में चारों ओर संगीनें ही संगीनें थीं, जिन्हें प्रशियाई राइनलैंड पर बलात्कार के बाद फ़ाल्ज़ तथा बाडेन के विरुद्ध बढ़ाना था। तब आख़िरकार सरकार ने हमसे निबटने की हिम्मत की। सम्पादकमंडल के आधे कर्मचारियों पर मुक़दमा चलाया गया तथा बाक़ी आधों को ग़ैरप्रशियाइयों के रूप में निर्वासित किया जा सकता था। चूंकि पूरा सैनिक कोर सरकार के पीछे था, इसके विरुद्ध कुछ भी नहीं किया जा सकता था। हमें अपने दुर्ग का समर्पण करना पड़ा। परन्तु हम पीछे हटे अपने हथियारों और साज़-सामान के साथ, संगीत-ध्वनि के साथ, हवा में लहराते हुए उस अन्तिम अंक के लाल झंडे के साथ, जिसमें हमने कोलोन के मजदूरों को निरर्थक विद्रोह से सावधान किया था। हमने उनसे कहा –

"आपसे विदा होते हुए «*Neue Rheinische Zeitung*» का संपादकमंडल आपको उस सद्भावना के लिए धन्यवाद देता है, जो आपने प्रदर्शित की। उनके अन्तिम शब्द सदैव तथा सर्वत्र होंगे – **मजदूर वर्ग की मुक्ति!**"

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। – **सं०**

इस तरह «*Neue Rheinische Zeitung*» का अस्तित्व वर्ष पूरा करने से पहले ही समाप्त हो गया। लगभग बिना वित्तीय साधनों से – जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, जो थोड़ा-बहुत उसे देने का वचन दिया गया था, वह पूरा नहीं किया गया था – आरम्भ होनेवाले इस पत्र ने सितम्बर तक अपनी बिक्री लगभग ५,००० तक पहुंचा दी थी। कोलोन की घेराबन्दी में उसका प्रकाशन स्थगित कर दिया गया था; अक्तूबर के मध्य में उसे फिर नये सिरे से शुरूआत करनी पड़ी। परन्तु मई १८४९ में, जब उसे दबा दिया गया, उसके ग्राहकों की संख्या ६,००० तक पहुंच गयी थी, जबकि «*Kölnische Zeitung*» की ग्राहक-संख्या स्वयं उसकी स्वीकारोक्ति के अनुसार ९,००० से ज़्यादा नहीं थी। कोई भी जर्मन अख़बार पहले या बाद में कभी «*Neue Rheinische Zeitung*» की शक्ति या प्रभाव प्राप्त नहीं कर सका था और न उतने कारगर ढंग से सर्वहारा जनसाधारण में नया जीवन फूंक सका था।

इसका श्रेय सबसे पहले **मार्क्स** का है।

जब अन्तिम आघात हुआ तो सम्पादकमंडल तितर-बितर हो गया। **मार्क्स** पेरिस पहुंचे, जहां उपसंहार, जिसकी उस समय तैयारी हो रही थी, १३ जून १८४९ को हुआ; **विल्हेल्म वोल्फ़** ने फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद में अब अपना स्थान ग्रहण किया जब इस सभा को ऊपर से विसर्जित होने या क्रान्ति में शामिल होने में एक विकल्प चुनना था। और मैं फाल्ज़ पहुंच गया तथा विलिख़ की स्वयंसेवक सेना में एडजुटेंट बन गया।

१८८४ के मध्य फ़रवरी तथा मार्च के आरम्भ के बीच लिखित। अंग्रेज़ी से अनूदित।

१३ मार्च १८८४ को
«*Der Sozialdemokrat*» के अंक ११ में प्रकाशित।
एंगेल्स द्वारा हस्ताक्षरित।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

कम्युनिस्ट लीग के इतिहास के विषय में[130]

१८५२ में कोलोन के कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ फ़ैसला होने के साथ स्वतंत्र जर्मन मज़दूर आन्दोलन का पहला दौर समाप्त होता है। आज यह दौर प्रायः एकदम भुलाया जा चुका है। पर यह दौर १८३६ से लेकर १८५२ तक रहा, और जर्मन मज़दूरों के विदेशों में फैलते जाने के साथ आन्दोलन लगभग सभी सभ्य देशों में विकसित होता गया। यही नहीं। आज का अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन मूलभूत रूप में उस समय के जर्मन मज़दूर आन्दोलन का एक सीधा सिलसिला है, जो विश्व इतिहास का **पहला अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन** था और जिसने उन बहुत-से लोगों को जन्म दिया था, जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ में मूर्द्धन्य भूमिका अदा की। इसके अलावा कम्युनिस्ट लीग ने १८४७ में 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'* के रूप में जो सिद्धान्त अपने झण्डे पर अंकित किये, वे यूरोप और अमरीका दोनों ही के समूचे सर्वहारा आन्दोलन के आज सबसे दृढ़ अन्तर्राष्ट्रीय एकता-बन्धन हैं।

आन्दोलन के सुसम्बद्ध इतिहास का अभी तक केवल एक ही मुख्य स्रोत रहा है। यह है वेर्मुथ और श्तीबर द्वारा लिखित तथा दो खंडों में बर्लिन से १८५३ और १८५४ में प्रकाशित 'उन्नीसवीं शताब्दी के कम्युनिस्ट षड्यंत्र' नामक पुस्तक जिसे काली किताब कहते हैं। यह भोंडा संग्रह, जो इस शताब्दी के दो सबसे गर्हित पुलिस-गुर्गों द्वारा गढ़े सफ़ेद झूठों से भरा पड़ा है, अब भी उस काल के सम्बन्ध में समस्त ग़ैर-कम्युनिस्ट लेखन के लिए चरम स्रोत का काम देता है।

यहां मैं जो कुछ दे पाया हूं, वह केवल एक ख़ाका मात्र है और वह भी वहीं तक जहां तक आशय ख़ुद लीग से है। यह ख़ाका उतना ही बताता है जितना

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। — सं०

जिनसे मैं मिला था, और तफ़सील के मामले में हमारे मतों में चाहे जितनी दूरी रही हो (इस दूरी का कारण यह था कि उनके संकीर्णतापूर्ण समतावादी कम्युनिज़्म * के मुक़ाबले मेरे अन्दर काफ़ी मात्रा में उतना ही संकीर्णतापूर्ण दार्शनिक दम्भ था), मैं कभी नहीं भूल सकता कि इन तीन जवांमर्दों ने मेरे ऊपर, एक ऐसे व्यक्ति के ऊपर जो उस समय मर्द बनने की अभी इच्छा ही कर रहा था, कितनी गहरी छाप डाली थी।

स्विट्ज़रलैण्ड की ही तरह, लेकिन वहां से अधिक मात्रा में लन्दन में उन्हें संघ और सभा स्वातन्त्र्य की सुविधा उपलब्ध थी। ७ फ़रवरी १८४० में ही क़ानूनी तौर से कार्य करनेवाला जर्मन मज़दूर शिक्षा संघ[136], जो आज भी विद्यमान है, संस्थापित हो गया था। यह संघ लीग को नये सदस्य प्रदान करने का काम देता था और चूंकि, जैसा कि हमेशा होता रहा है, कम्युनिस्ट इस संघ के सबसे सक्रिय और चतुर सदस्य थे, इसलिए स्वभावतः इसका नेतृत्व सम्पूर्णतः लीग के हाथों में था। शीघ्र ही लन्दन में लीग के अनेक संगठन, अथवा जैसा कि उन्हें तब पुकारा जाता था, «lodges» हो गये। स्विट्ज़रलैण्ड और अन्यत्र भी यही प्रकट कार्यनीति अपनायी गयी। जहां मज़दूरों के संघ क़ायम किये जा सके, वहां उनका इसी तरह उपयोग किया गया। जहां उनकी स्थापना पर क़ानूनी रोक थी, वहां लोग संगीत मण्डलियों, व्यायामशालाओं और ऐसे ही अन्य संगठनों में शामिल हो जाते थे। उनमें निरन्तर दौरा करनेवाले सदस्यों के ज़रिये सम्पर्क क़ायम रखा जाता था। ये लोग आवश्यकता पड़ने पर प्रणिधि का भी काम करते थे। दोनों ही मामलों में लीग को सरकारों की अक़्लमन्दी की बदौलत सजीव समर्थन प्राप्त हुआ, क्योंकि वे देश-निकाला देकर किसी भी अवांछनीय मज़दूर को (जो दस में नौ मामलों में तो लीग का सदस्य होता ही था) प्रणिधि में परिणत कर देती थीं।

पुनरुज्जीवित लीग काफ़ी बड़े पैमाने पर फैली। ख़ासकर स्विट्ज़रलैंड में **वाइटलिंग, अगस्त बेकर** (बेकर अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति थे पर बहुत सारे अन्य जर्मनों की तरह चरित्र की आन्तरिक अस्थिरता के कारण बरबाद हो गये) और दूसरों ने एक मज़बूत संगठन क़ायम किया, जो कमोबेश वाइटलिंग की कम्युनिस्ट पद्धति के समर्थन के लिए वचनबद्ध था। वाइटलिंग के कम्युनिज़्म की

---

* जैसा कि मैं कह चुका हूं, समतावादी कम्युनिज़्म से मेरा तात्पर्य उस कम्युनिज़्म से है जो सम्पूर्णतः अथवा प्रधानतः समता की मांग पर अपने को आधारित करता है।

करके ही सन्तोष किया। दोनों लन्दन चले गये। शापर नस्साऊ स्थित विलबुर्ग के रहनेवाले थे। जब वह गीस्सेन में वन-विज्ञान पढ़ रहे थे तभी, १८३२ में, गेओर्ग बुख़नर द्वारा संगठित षड्यंत्रकारी दल में शामिल हो गये थे। उन्होंने ३ अप्रैल १८३३ को फ़्रैंकफ़ुर्ट की पुलिस चौकी पर हुए हमले[133] में भाग लिया, फिर विदेश पलायन किया और फ़रवरी १८३४ में सैवोय के विरुद्ध माज़्ज़िनी के अभियान[134] में सम्मिलित हुए। भीमकाय, दृढ़व्रती तथा स्फूर्तिवान और नागरिक अधिकारों से वंचित होने तथा मृत्यु वरण करने के लिए हमेशा तैयार रहनेवाला यह व्यक्ति उन पेशेवर क्रान्तिकारियों का एक आदर्श नमूना था जिन्होंने चौथे दशक में एक ख़ासी भूमिका अदा की थी। चिन्तन में थोड़ा सुस्त होने के बावजूद उनमें गहरी सैद्धान्तिक समझ की अक्षमता कदापि न थी (उनका "डिमागोग"[135] से कम्युनिस्ट में परिणत होना इसका प्रमाण है) और जिस चीज़ को वह एक बार मान लेते थे उस पर और भी सख़्ती से डट जाते थे। इसी वजह से कभी-कभी उनका क्रान्तिकारी जोश उनकी समझदारी को अभिभूत कर लेता था। पर बाद में वह हमेशा अपनी ग़लती को समझते थे और उसे खुलेआम क़बूल करते थे। वह एक सच्चे जवांमर्द थे और जर्मन मज़दूर आन्दोलन की संस्थापना में उन्होंने जो योगदान किया, वह कभी भुलाया न जायेगा।

फ़्रैंकोनिया के निवासी हेनरिक बावेर मोची थे। वह बड़े ज़िंदादिल, चौकस और विनोदी आदमी थे। उनकी छोटी-सी काया में कुशलता और दृढ़ता कूट-कूटकर भरी हुई थी।

लन्दन पहुंचकर उन्होंने, शापर के साथ, जो पेरिस में कम्पोज़िटर थे पर लन्दन में भाषाओं का अध्यापक बनकर जीविका उपार्जन करने की कोशिश कर रहे थे, विछिन्न सूत्रों को जोड़ना शुरू किया और लन्दन को लीग का केन्द्र बना दिया। कोलोन के घड़ीसाज़ **जोज़ेफ़ मोल** यदि पहले पेरिस में नहीं तो यहां ज़रूर उनके साथ आ मिले थे। मंझोले क़द के मोल पराक्रम में पूरे भीम थे। अक्सर ऐसा हुआ कि वह और शापर मिलकर सैकड़ों चढ़ आते विरोधियों के मुक़ाबले में किसी हॉल के प्रवेशद्वार पर डट जाते और विरोधियों के पांव उखाड़ देते। स्फूर्ति और संकल्प में वह अपने दोनों साथियों के कम से कम बराबर तो थे ही, पर बुद्धि में दोनों से ऊपर थे। वह जन्मजात कूटनीतिज्ञ थे। विभिन्न कार्यों के लिए दूत बनाकर भेजे जाने पर जो सफलता उन्होंने प्राप्त की, उससे यह बात प्रमाणित हो जाती है। साथ ही उनमें सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टि की अधिक क्षमता थी। इन तीनों से हमारी मुलाक़ात १८४३ में लन्दन में हुई। ये प्रथम क्रान्तिकारी सर्वहारा थे

उभरकर सामने आयी—लीग धीरे-धीरे जर्मन से **अन्तर्राष्ट्रीय** हो गयी। मज़दूर संघ में जर्मनों और स्विस लोगों के अतिरिक्त उन सभी जातियों के सदस्य मिलते थे जिनके लिए जर्मन भाषा विदेशियों से सम्पर्क का मुख्य माध्यम थी। यानी ख़ास तौर से स्कैण्डिनेवियाई, डच, हंगेरियाई, चेक, दक्षिणी स्लाव और इनके अतिरिक्त रूसी और अल्सासी मिलते थे। १८४७ में उसमें नियमित रूप से आने-जानेवालों में ब्रिटिश गार्ड्स का एक वर्दीपोश ग्रेनेडियर भी था। संघ ने शीघ्र ही अपना नाम **कम्युनिस्ट** मज़दूर शिक्षा संघ रख लिया और उसके सदस्यता-कार्ड में "सभी मनुष्य भाई भाई हैं" शब्द कम से कम बीस भाषाओं में अंकित थे, यद्यपि इन शब्दों को लिखने में जहां-तहां अशुद्धियां थीं। खुले संघ की तरह गुप्त लीग ने भी शीघ्र ही अधिक अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया। शुरू में सीमित अर्थ में ही ऐसा हुआ। अमल में इस रूप में कि उसके सदस्य विभिन्न जातियों के थे, और सिद्धान्त में इस अनुभूति के रूप में कि क्रान्ति विजयी तभी हो सकती है जब वह अखिल यूरोपीय क्रान्ति हो। इससे आगे वे नहीं गये थे, पर बुनियाद मौजूद थी।

लन्दन के शरणार्थियों के ज़रिये फ़्रांसीसी क्रान्तिकारियों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क रखा जाता था। ये शरणार्थी १२ मई १८३९ के संघर्ष में साथ-साथ लड़ चुके थे। इसी तरह उग्रवादी पोलों के साथ सम्पर्क रखा जाता था। कहने की ज़रूरत नहीं कि पोलैंड के अधिकारी उत्प्रवासी और माज़्ज़िनी भी लीग के मित्र न होकर विरोधी थे। इंगलैंड के चार्टिस्ट अपने आन्दोलन के विशिष्ट अंग्रेज़ चरित्र के कारण क्रान्तिकारी माने ही नहीं जाते थे और उपेक्षित थे। लीग के लन्दन स्थित नेताओं का उनके साथ सम्पर्क बाद में, मेरे ज़रिये, हुआ।

दूसरे प्रकार भी घटनाओं की प्रगति के साथ लीग का चरित्र परिवर्तित हो गया था। यद्यपि पेरिस अब भी क्रान्ति की जन्मभूमि माना जाता था—यह उस समय बिल्कुल सही था—तथापि पेरिस के षड्यंत्रकारियों पर निर्भरता की अवस्था से बाहर निकला जा चुका था। लीग के प्रसार ने उसकी आत्मचेतनता में अभिवृद्धि की। ऐसा महसूस किया जाता था कि जर्मन मज़दूर वर्ग में उसकी जड़ें अधिकाधिक फैलती जा रही हैं और इन जर्मन मज़दूरों से इतिहास अपेक्षा करता है कि वे उत्तरी और पूर्वी यूरोप के मज़दूरों के झण्डाबरदार बनें। वाइटलिंग के रूप में एक ऐसा कम्युनिस्ट सिद्धान्तकार उपस्थित था जिसे विश्वासपूर्वक उसके समकालीन फ़्रांसीसी प्रतिद्वंद्वियों की बग़ल में खड़ा किया जा सकता था। अन्तिम बात यह है कि १२ मई के अनुभव ने हमें सिखा दिया था कि पर्युत्क्षेपण-षड्यंत्र की चेष्टाओं

आलोचना करने की यह जगह नहीं है। पर जर्मन सर्वहारा के प्रथम स्वतंत्र सैद्धान्तिक स्फुरण के रूप में उसके महत्त्व के बारे में पेरिस की «*Vorwärts*» पत्रिका में १८४४ में लिखे मार्क्स के इन शब्दों से मैं आज भी सहमत हूं – "वाइटलिंग की 'सामंजस्य और स्वाधीनता की प्रत्याभूतियां' के मुक़ाबले में (जर्मन) पूंजीपति और उनके दार्शनिक तथा विद्वान लेखक क्या **पूंजीपति वर्ग की मुक्ति** – उसकी राजनीतिक मुक्ति – के सम्बन्ध में कोई कृति पेश कर सकते हैं? यदि हम जर्मन राजनीतिक साहित्य के लचर मिठबोले घासलेटीपन का मुक़ाबला जर्मन मज़दूरों के इस अपरिमित प्रतिभायुक्त श्रीगणेश से करें, यदि हम **सर्वहारा के इन विराट, बच्चों के जूतों** की तुलना पूंजीपतियों के घिसे पुराने, बौने आकार के राजनीतिक जूतों से करें तो हमें कहना पड़ेगा कि यह सिंड्रेला विशालकाय होगी।"* यह विशाल काया आज हमारे सामने खड़ी है, यद्यपि अब भी वह पूरी तरह विकसित नहीं हुई है।

जर्मनी में भी लीग की कई शाखायें विद्यमान थीं। जैसा कि स्वाभाविक था, ये क्षणभंगुर स्वरूप रखती थीं, पर नयी पैदा होनेवाली शाखायें कालकवलित होनेवाली शाखाओं के रिक्त स्थानों की अति पूर्त्ति कर देती थीं। सात वर्ष के बाद ही, यानी १८४६ के अंत में, पुलिस लीग की टोह बर्लिन में (मेंटेल) और मैग्डेबुर्ग में (बैंक) लगा सकी, पर वह इस आधार पर और आगे खोज करने की स्थिति में न थी।

पेरिस में वाइटलिंग ने, जो १८४० में अब भी वहीं मौजूद थे, स्विट्ज़रलैण्ड रवाना होने से पहले बिखरे तत्त्वों को एक बार फिर जमा किया।

दर्ज़ी लीग की केन्द्रीय शक्ति थे। चाहे स्विट्ज़रलैण्ड हो, लन्दन हो या पेरिस, जर्मन दर्ज़ी सभी जगह थे। पेरिस में तो इस पेशे के लोगों के बीच जर्मन भाषा का ही बोलबाला था। इसकी एक मिसाल यह है कि १८४६ में मेरा परिचय एक ऐसे नार्वेजियाई दर्ज़ी से हुआ जो ट्रोंडहैम से फ्रांस सीधे समुद्री मार्ग से आया था और अठारह महीनों के अन्दर फ्रेंच भाषा का एक शब्द भी नहीं सीख सका था, किन्तु जर्मन ख़ूब अच्छी तरह जान गया था। १८४७ में पेरिस की दो शाखाएं प्रधानतः दर्ज़ियों की थीं। एक बढ़इयों की थी।

गुरुत्व केन्द्र के पेरिस से लन्दन स्थानान्तरित होने के बाद एक नयी विशेषता

---

*कार्ल मार्क्स, '"प्रशियाई" द्वारा लिखित "प्रशियाई सम्राट और सामाजिक सुधार" नामक लेख के विषय में आलोचनात्मक टिप्पणियां'। – सं०

बोध हुआ कि आर्थिक तथ्य जिन्होंने अभी तक इतिहास लेखन में कोई भूमिका नहीं अदा की है या नगण्य भूमिका ही अदा की है, कम से कम आधुनिक जगत में निर्णायक ऐतिहासिक शक्ति हैं; कि वे आज के वर्ग-विरोधों के उद्भव का मूलाधार हैं; कि ये वर्ग-विरोध अपने आप में, उन देशों के अन्दर जहां बड़े पैमाने के उद्योग के कारण ये पूर्णतः विकसित हो चुके हैं–अतएव विशेषतः इंगलैंड में–राजनीतिक पार्टियों के बनने और पार्टी संघर्षों के छिड़ने और इस प्रकार समूचे राजनीतिक इतिहास का आधार हैं। मार्क्स भी इसी राय पर पहुंच चुके थे, और पहुंच ही नहीं चुके थे, बल्कि *«Deutsch-Französische Jahrbücher»* (१८४४) में इसका इस रूप में सामान्यीकरण भी कर चुके थे कि सामान्यतः राज्य नागरिक समाज का अवस्था-निर्धारण और नियमन नहीं करता, बल्कि नागरिक समाज राज्य का अवस्था-निर्धारण और नियमन करता है; परिणामस्वरूप राजनीति एवं उसके इतिहास की आर्थिक संबंधों और उनके विकास से व्याख्या होनी चाहिए, न कि उल्टे। जब १८४४ की गर्मियों में मैं मार्क्स से पेरिस में मिला तो स्पष्ट हो गया कि सभी सैद्धान्तिक क्षेत्रों में हम दोनों में पूर्ण मतैक्य है, और उसी समय से हमारे संयुक्त कार्य का आरम्भ हुआ। १८४५ के वसन्त में जब हम लोगों की ब्रसेल्स में फिर मुलाक़ात हुई, तो मार्क्स उपर्युक्त मूलाधार से इतिहास के भौतिकवादी सिद्धान्त को, उसकी मुख्य रूपरेखाएं देते हुए, विकसित कर चुके थे। हम दोनों अब सद्यः प्राप्त अवधारणाओं का अति विविध दिशाओं में विशदीकरण करने में जुट गये।

पर यह खोज, जिसने इतिहास के विज्ञान में क्रान्ति कर दी और जो, जैसा कि हम देख चुके हैं, मूलभूत रूप में मार्क्स की सिद्धि है (इस खोज में मैं एक अति नगण्य भागीदार होने का ही दावा कर सकता हूं), समकालीन मज़दूर आन्दोलन के लिए तात्कालिक महत्त्व की चीज़ थी। फ़्रांसीसियों और जर्मनों में कम्युनिज़्म, अंग्रेज़ों में चार्टिज़्म अब कोई ऐसी आकस्मिक चीज़ प्रतीत नहीं होती जो नहीं भी हो सकती थी। अब यह देखा गया कि ये आन्दोलन आधुनिक उत्पीड़ित वर्ग, सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन ही थे, शासक वर्ग, पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध उसके ऐतिहासिक रूप से आवश्यक संघर्ष के न्यूनाधिक विकसित रूप थे, ऐसे वर्ग-संघर्ष के रूप थे जो पहले के सभी वर्ग-संघर्षों से एक चीज़ में भिन्न था, वह यह कि आज का उत्पीड़ित वर्ग, सर्वहारा वर्ग, अपनी मुक्ति बिना साथ ही साथ समूचे समाज को वर्गों में विभाजन से और इसलिए वर्ग-संघर्षों से मुक्त कराये नहीं प्राप्त कर सकता। कम्युनिज़्म का अर्थ अब कल्पना के द्वारा एक पूर्ण से पूर्ण

से कुछ लाभ नहीं होनेवाला है। फिर भी यदि कोई हर घटना को आनेवाले तूफ़ान का चिह्न बताता था, यदि कोई अब भी पुराने, अर्ध-षड्यंत्रपरक नियमों को ज्यों का त्यों क़ायम रखता था, तो इसमें दोष मुख्यतः पुराने क्रान्तिकारियों की ज़िद का था, जिसका अधिक सुस्वस्थ मत के साथ, जो ज़ोर पकड़ रहा था, अभी से टकराव होने लगा था।

परन्तु लीग का सामाजिक सिद्धान्त अस्पष्ट तो था ही, उसमें एक बहुत बड़ी त्रुटि भी थी। पर यह ऐसी त्रुटि थी जिसकी जड़ स्वयं परिस्थिति के अन्दर थी। लीग के जो सदस्य मज़दूर थे, वे प्रायः सभी के सभी दस्तकार थे। बड़े-बड़े शहरों में भी उनका शोषण करनेवाले लोग आम तौर से छोटे-छोटे मालिक ही थे। दस्तकारी के रूप में दर्ज़ीगीरी को बड़े पूंजीपति के लिए काम करनेवाले घरेलू उद्योग में परिणत करके बड़े पैमाने की उस दर्ज़ीगीरी का शोषण, जिसे अब रेडी-मेड कपड़ों का उत्पादन कहा जाता है, उस समय लन्दन जैसे शहर में भी शुरू ही हो रहा था। एक ओर तो इन दस्तकारों के शोषक छोटे मालिक थे। दूसरी ओर ये दस्तकार स्वयं यह उम्मीद रखते थे कि अन्ततः वे ख़ुद छोटे मालिक बन जायेंगे। इसके अलावा विरासत में मिली बहुत सारी शिल्पसंबंधीय धारणाओं से जर्मन दस्तकारों का उस समय तक पिण्ड नहीं छूटा था। ये दस्तकार अत्यधिक सम्मान के पात्र हैं क्योंकि अभी पूरी तरह सर्वहारा न होते हुए भी, बल्कि केवल निम्नपूंजीपतियों का वह भाग मात्र होते हुए, जो आधुनिक सर्वहारा में परिणत हो रहा था और अभी तक पूंजीपति वर्ग के, यानी बड़ी पूंजी के प्रत्यक्ष विरोध में नहीं आया था, वे अपने भावी विकास का सहज पूर्वाभास पाने में और अपने को सर्वहारा की पार्टी के रूप में संगठित करने में समर्थ हो सके, भले ही बिना पूर्ण चेतनता के ही उन्होंने ऐसा किया था। पर यह भी अनिवार्य था कि हर क्षण में, जब भी मौजूदा समाज की तफ़सीलवार आलोचना करने यानी आर्थिक तथ्यों की पड़ताल करने का सवाल सामने आये, उनके दस्तकारों के पुराने पूर्वाग्रह उनकी राह का रोड़ा बन जायें। और मैं नहीं समझता कि समूची लीग में उस समय एक भी आदमी ऐसा था जिसने राजनीतिक अर्थशास्त्र पर कभी कोई किताब पढ़ी हो। लेकिन इससे कुछ आता-जाता न था। फ़िलहाल तो "समता", "भ्रातृत्व" और "न्याय" उनके लिए हर सैद्धान्तिक बाधा को पार करने में सहायक थे।

इस बीच लीग और वाइटलिंग के कम्युनिज़्म के साथ-साथ एक अन्य, सारतः भिन्न कम्युनिज़्म का उदय हो रहा था। जब मैं मैंचेस्टर में था तो मुझे यह प्रत्यक्ष

के आन्तरिक मामलों से सम्बन्धित प्रश्न उपस्थित होते थे, हम दुनिया भर में अपने मित्रों और संवाददताओं को भेजा करते थे। इन चिट्ठियों में कभी-कभी ख़ुद लीग की भी चर्चा होती थी। मिसाल के लिए, हर्मन क्रीगे नामक एक वेस्टफ़ेलियाई छात्र, जो अमरीका गया हुआ था, वहां लीग का प्रणिधि बन बैठा और बावले हैरो हैरिंग के साथ अपना नाता जोड़ा ताकि दक्षिण अमरीका में उथल-पुथल पैदा करने के लिए लीग का इस्तेमाल किया जा सके। उसने एक अख़बार निकाला*, जिसमें लीग के नाम पर उसने "प्रेम" पर आधारित एवं प्रेम से ओतप्रोत प्रेम-स्वप्न के घोर अतिरंजित कम्युनिज़्म का प्रचार आरम्भ कर दिया। उसके ख़िलाफ़ हमने फ़ौरन एक गश्ती चिट्ठी रवाना कर दी, जिसका तुरन्त असर हुआ। क्रीगे लीग के मैदान से नौ दो ग्यारह हो गया।

बाद में वाइटलिंग ब्रसेल्स आये। पर अब वाइटलिंग वह भोले कारीगर-दर्ज़ी नहीं रह गये थे, जिसने अपनी प्रतिभा से आप चकित होकर अपने मस्तिष्क में कम्युनिस्ट समाज का चित्र स्पष्ट करने की चेष्टा की थी। अब वह एक महापुरुष बन गये थे जिन्हें उनकी श्रेष्ठता के कारण ईर्ष्यालु लोग सताने पर तुले हुए थे और जिन्हें हर जगह गुप्त प्रतिद्वंद्वी, गुप्त शत्रु और फन्दे दीख पड़ते थे। अब वह एक पैग़म्बर बन गये थे, जिन्हें लगातार एक मुल्क से दूसरे मुल्क में खदेड़ा जा रहा था, जिनकी जेब में एक ऐसा तैयार नुस्ख़ा मौजूद था जिसके ज़रिये धरती पर स्वर्ग उतारा जा सकता था, और जिनके दिमाग़ में यह सनक सवार थी कि सभी लोग यह नुस्ख़ा उनसे चुरा लेने की घात में हैं। लन्दन में लीग के सदस्यों के साथ उनका पहले ही झगड़ा हो चुका था, और ब्रसेल्स में भी, जहां मार्क्स और उनकी पत्नी ने अतिमानवीय सहनशीलता के साथ उनकी आवभगत की थी, उनकी किसी से नहीं बन सकी। अतः शीघ्र ही वह पैग़म्बर की अपनी भूमिका आज़माने के लिए अमरीका रवाना हो गये।

इन सभी परिस्थितियों ने लीग में और ख़ासकर लन्दन के उसके नेताओं में धीरे-धीरे हो रहे कायापलट में योगदान किया। कम्युनिज़्म की पहले की धारणाओं की अपर्याप्तता, सीधे-सादे फ़्रांसीसी समतावादी कम्युनिज़्म और वाइटलिंग के कम्युनिज़्म, दोनों की अपर्याप्तता उनके सामने अधिकाधिक साफ़ होती गयी। कम्युनिज़्म की जड़ें आदिम ईसाई धर्म में ढूंढ़ निकालने की वाइटलिंग की खोज का परिणाम (यद्यपि उनके 'ग़रीब पापियों को दिव्य संदेश' के कुछ अंश बड़े

* «*Der Volks-Tribun*» [140]।–सं०

आदर्श समाज को गढ़ना नहीं रह गया, बल्कि सर्वहारा द्वारा चलाये जानेवाले संघर्ष के स्वरूप, उसकी अवस्थाओं और फलतः उसके आम लक्ष्यों की सूझबूझ हो गया।

हमारी कदापि यह राय न थी कि नवीन वैज्ञानिक निष्कर्षों को मोटी-मोटी पोथियों के ज़रिये केवल "पंडित समाज" को ही बताया जाये। हमारी राय इसके बिल्कुल विपरीत थी। हम दोनों ही राजनीतिक आन्दोलन में काफ़ी गहरे डूब चुके थे और शिक्षित जगत में, ख़ासकर पश्चिमी जर्मनी में, हमारे कुछ अनुयायी मौजूद थे तथा संगठित सर्वहारा के साथ हमारा व्यापक सम्पर्क था। हमारा यह कर्त्तव्य था कि अपने मत के लिए वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करें, पर उतना ही महत्त्वपूर्ण हमारे लिए यह भी था कि अपने मत के लिए यूरोपीय सर्वहारा तथा प्रथमतः जर्मन सर्वहारा का समर्थन प्राप्त करें। जैसे ही हमारा अपना दिमाग़ साफ़ हुआ वैसे ही हम इस काम में जुट गये। हमने ब्रसेल्स में एक जर्मन मज़दूर समाज की स्थापना की और *«Deutsche-Brüsseler-Zeitung»* को अपने हाथ में ले लिया। उसने फ़रवरी क्रान्ति तक हमारे मुखपत्र का काम किया। हमने चार्टिस्ट आन्दोलन के केन्द्रीय मुखपत्र *«The Northern Star»* [137] के (इस पत्र में मैं लिखा करता था) सम्पादक जूलियन हार्नी के ज़रिये इंगलैंड के चार्टिस्टों के क्रान्तिकारी भाग के साथ सम्पर्क रखा। इसी प्रकार हमने ब्रसेल्स के जनवादियों (मार्क्स जनवादी समाज [138] के उपाध्यक्ष थे) और «Réforme»[139] पत्र (इसको मैं इंगलैंड और जर्मनी के आन्दोलनों के समाचार भेजा करता था) के फ़्रांसीसी समाजवादी-जनवादियों के साथ एक तरह का गठबन्धन कर लिया। संक्षेप में, उग्रपंथी और सर्वहारा संगठनों और मुखपत्रों के साथ हमारे सम्बन्ध इतने अच्छे थे जितने कि हम चाह सकते थे।

न्यायप्रियों की लीग के साथ हमारा सम्बन्ध निम्न प्रकार का था: लीग के अस्तित्व के बारे में बेशक हमें जानकारी थी; १८४३ में शापर ने मुझसे प्रस्ताव किया था कि मैं उसमें शामिल हो जाऊं पर स्वभावतया उस समय ऐसा करने से मैंने इनकार कर दिया था। पर लन्दन वालों के साथ न केवल हमारा पत्र-व्यवहार निरन्तर जारी रहा, बल्कि डॉ० एवरबेक के साथ, जो उस समय पेरिस की शाखाओं के नेता थे, हमारे सम्बन्ध और भी अधिक घनिष्ठ रहे। लीग के आन्तरिक मामलों में न पड़ते हुए भी हमें हर महत्त्वपूर्ण घटना की जानकारी हासिल हो जाती थी। दूसरी ओर, बातचीत, पत्रव्यवहार और समाचारपत्रों के ज़रिये हमने लीग के सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्यों के सैद्धान्तिक विचारों को प्रभावित किया। इस प्रयोजन के लिए हम लिथोग्राफ़ की हुई गश्ती चिट्ठियों का भी प्रयोग करते थे। इन्हें ख़ास-ख़ास अवसरों पर, जब संस्थापित हो रही कम्युनिस्ट पार्टी

पुराने-धुराने संगठन की जगह नये ज़माने और नये लक्ष्यों के अनुरूप संगठन की स्थापना करने में भी योगदान कर सकेंगे।

हमें इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं था कि जर्मन मज़दूर वर्ग के बीच एक संगठन का होना आवश्यक है, कम से कम प्रचार-कार्य के लिए। हमें इसमें भी तनिक सन्देह न था कि इस संगठन को, इसलिए कि वह केवल स्थानीय नहीं होगा, गुप्त संगठन होना होगा – जर्मनी के बाहर भी। लीग की शक्ल में ठीक ऐसा ही एक संगठन मौजूद था। लीग के सम्बन्ध में हमें जिस चीज़ पर आपत्ति थी, उसका लीग के प्रतिनिधियों ने अब स्वयं ही ग़लत कहकर परित्याग किया था और वे हमें उसका पुनर्गठन करने के कार्य में सहयोग देने का बुलावा भी दे रहे थे। फिर क्या हम न कह सकते थे? यक़ीनन नहीं। अतः हम लीग में दाख़िल हो गये। मार्क्स ने हमारे घनिष्ठ मित्रों को लेकर ब्रसेल्स में लीग की एक शाखा क़ायम की और मैं पेरिस की उसकी तीन शाखाओं में शरीक होने लगा।

१८४७ की गर्मियों में लीग की पहली कांग्रेस लन्दन में हुई। वि० वोल्फ़ ने उसमें ब्रसेल्स की और मैंने पेरिस की शाखाओं का प्रतिनिधित्व किया। इस कांग्रेस में सबसे पहले लीग का पुनर्गठन किया गया। साज़िशी दौर से चले आते पुराने रहस्यपूर्ण नाम जो बच रहे थे, उनका अन्त कर दिया गया; लीग का गठन अब शाखाओं, मण्डलों, उच्च मण्डलों, केन्द्रीय समिति तथा कांग्रेस के रूप में किया गया, और उसका नाम अब से "कम्युनिस्ट लीग" हो गया। उसकी पहली धारा इन शब्दों से आरम्भ होती थी – "लीग का लक्ष्य पूंजीपति वर्ग का तख़्ता उलटना, सर्वहारा का राज क़ायम करना, वर्ग-विरोधों पर आधारित पुराने पूंजीवादी समाज का अन्त करना और एक नये समाज की स्थापना करना है जिसमें वर्ग नहीं होंगे और न व्यक्तिगत सम्पत्ति होगी।" संगठन स्वयं आदि से अन्त तक जनवादी था। इसकी समितियां निर्वाचित होती थीं और जब चाहे तब भंग की जा सकती थीं। यही एक चीज़ षड्यंत्र की लिप्सा पर अंकुश रखती थी, क्योंकि षड्यंत्र के लिए अधिनायकत्व आवश्यक होता है, और लीग – कम से कम साधारण शान्ति-काल के लिए – विशुद्ध प्रचार समाज में परिणत हो गयी थी। यह नयी नियमावली बहस के लिए शाखाओं के समक्ष पेश की गयी (ऐसी जनवादी थी हमारी नयी कार्य-विधि)। इसके बाद दूसरी कांग्रेस ने उस पर फिर बहस की और तब जाकर ८ दिसम्बर १८४७ को उसके द्वारा पास की गयी। वेर्मुथ और श्टिबर की पुस्तक, खण्ड १, पृष्ठ २३९, परिशिष्ट १० में यह नियमावली छपी मिलती है।

दूसरी कांग्रेस उसी वर्ष के नवम्बर के अन्त और दिसम्बर के आरम्भ में हुई।

ही भव्य हैं) यह हुआ था कि स्विट्जरलैण्ड में आन्दोलन अधिकांशतः पहले तो अल्ब्रेख्ट जैसे मूर्खों के हाथ में और उसके बाद कुहलमान जैसे स्वार्थसाधक कपटी पैग़म्बरों के हाथ में चला गया था। कुछ साहित्यिकों द्वारा प्रचारित "सच्चे समाजवाद" ने, जो फ़्रांस की समाजवादी लफ़्फ़ाज़ी का भ्रष्ट हेगेलपंथी जर्मन में रूपांतरण तथा उथली भावुकता से भरा प्रेम-स्वप्न था ('कम्युनिस्ट घोषणापत्न' में जर्मन या "सच्चा" समाजवाद-सम्बन्धी अंश देखिये*) – जो क्रीगे की तथा तत्सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन की बदौलत लीग के अन्दर घुस आया था, अपने फूहड़ पिलपिलेपन से पुराने क्रान्तिकारियों को जल्द ही विरक्त कर दिया। पहले के सैद्धान्तिक विचारों की आधारहीनता और उन विचारों के परिणामस्वरूप होनेवाली अमली चूकों को देखते हुए लन्दन में यह अधिकाधिक महसूस किया जाने लगा कि मार्क्स और मेरे द्वारा प्रतिपादित नवीन सिद्धान्त सही है। निस्सन्देह इस समझ के आने में इस बात का भी हाथ था कि लन्दन स्थित नेताओं में इस समय दो ऐसे व्यक्ति मौजूद थे जो सैद्धान्तिक ज्ञान-क्षमता में उन लोगों से, जिनका पहले ज़िक्र किया जा चुका है, बहुत ऊपर थे। ये थे हीलब्रोन निवासी सूक्ष्म-चित्नकार कार्ल फ़ैन्डर और थुरिंगिया निवासी दर्ज़ी गेओर्ग इक्कैरियस**।

इतना ही कहना काफ़ी होगा कि १८४७ के वसन्त में मोल ब्रसेल्स में मार्क्स के पास गये और उसके फ़ौरन ही बाद पेरिस में मेरे पास आये और अपने साथियों की ओर से हमें लीग में शामिल हो जाने के लिए बारम्बार आमंत्रित किया। उन्होंने बताया कि उन्हें हमारे दृष्टिकोण के सामान्यतः सही होने के बारे में उतना ही यक़ीन था जितना कि इस बारे में कि लीग को पुरानी षड्यंत्रपरक परम्पराओं और रूपों से मुक्त करना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि यदि हम लीग में शामिल हो जायें तो हमें एक घोषणापत्र द्वारा लीग की एक कांग्रेस के समक्ष अपने समीक्षात्मक कम्युनिज़्म की व्याख्या करने का अवसर प्रदान किया जायेगा और तब यह घोषणापत्र लीग के घोषणापत्र के रूप में प्रकाशित होगा। इसके साथ

---

*देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। – सं०

**फ़ैन्डर की लगभग आठ वर्ष हुए लन्दन में मृत्यु हो गयी। वह अनोखी सूक्ष्म बुद्धि रखनेवाले विनोदी, व्यंग्यपटु तथा तार्किक व्यक्ति थे। इक्कैरियस, जैसा कि विदित है, बाद में कई वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की जनरल कौंसिल के सचिव रहे। इस जनरल कौंसिल में अन्यों के अलावा पुरानी लीग के ये सदस्य थे: इक्कैरियस, फ़ैन्डर, लेसनर, लोहनर, मार्क्स और मैं। बाद में इक्कैरियस अपना सारा समय इंगलैंड के ट्रेड-यूनियन आन्दोलन को देने लगे।

जर्मनी में कम्युनिस्ट पार्टी की मांगें[141]

१. समूचे जर्मनी को एक अखण्ड जनतंत्र घोषित किया जाये।

३. जनता के प्रतिनिधियों को वेतन दिया जाये ताकि मज़दूर भी जर्मन जनता की संसद में बैठ सकें।

४. पूरी जनता को हथियारबन्द किया जाये।

७. राजाओं की जागीरें तथा अन्य सामन्ती जागीरें, सभी खान-खदानें, आदि राज्य की सम्पत्ति घोषित की जायें। इन जागीरों में बड़े पैमाने पर तथा आधुनिकतम वैज्ञानिक साधनों से पूरे समाज के लाभार्थ खेती की जाये।

८. किसानों के खेतों के रेहननामे राज्य की सम्पत्ति घोषित किये जायें। किसान इन रेहननामों के सूद राज्य को अदा करें।

६. उन ज़िलों में जहां काश्तकारी प्रथा प्रचलित है, लगान या मालगुज़ारी राज्य को कर के रूप में अदा की जाये।

११. परिवहन के सभी साधन – रेलवे, नहरें, जहाज़, सड़कें, डाक, आदि राज्य द्वारा ले लिये जायें। उन्हें राज्य की सम्पत्ति क़रार दिया जाये और सम्पत्तिहीन वर्ग द्वारा उनका उपयोग सुलभ बनाया जाये।

१४. उत्तराधिकार सीमित किया जाये।

१५. क्रमबद्ध वर्द्धमान कर-व्यवस्था लागू की जाये तथा उपभोक्ता मालों पर कर ख़त्म कर दिये जायें।

१६. राष्ट्रीय वर्कशॉप क़ायम किये जायें। राज्य सभी मज़दूरों को रोज़ी की गारंटी देगा और जो काम करने में अक्षम हैं, उनके भरण-पोषण की व्यवस्था करेगा।

१७. सार्विक निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा।

जर्मन सर्वहारा, निम्नपूंजीपति वर्ग और किसानों का हित इस बात में है कि उपरोक्त उपायों को कार्यान्वित करने में पूरे जोश के साथ लग जायें। क्योंकि इन मांगों की पूर्त्ति से ही जर्मनी के अवाम जो मुट्ठी भर लोगों द्वारा अब तक शोषित होते रहे हैं और जिन्हें आगे भी दासता के बन्धन में जकड़े रखने के लिए कोशिशें की जायेंगी, अपने वे अधिकार तथा वह सत्ता प्राप्त कर सकेंगे जो समस्त सम्पदा के उत्पादक होने के नाते उनकी होनी चाहिए।

समिति :

कार्ल मार्क्स, कार्ल शापर, हे० बावेर,
फ़्रे० एंगेल्स, जो० मोल, वि० वोल्फ़।

इस बार मार्क्स भी उपस्थित थे, और काफ़ी लम्बे वादविवाद में (कांग्रेस दस दिनों तक चली थी) उन्होंने अपने नये सिद्धान्त की व्याख्या की। सभी विरोधों और शंकाओं का आख़िरकार समाधान हो गया, नये मूलभूत सिद्धान्त सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिये गये, और मार्क्स को तथा मुझे घोषणापत्र का मसविदा तैयार करने का काम सौंपा गया। यह काम कांग्रेस के फ़ौरन ही बाद पूरा किया गया। फ़रवरी क्रान्ति के कुछ सप्ताह पूर्व 'घोषणापत्र'* छपने के लिए लन्दन भेजा गया। तब से वह समूची दुनिया का भ्रमण कर चुका है, प्रायः सभी भाषाओं में उसका अनुवाद हो चुका है और आज भी वह अनेक देशों में सर्वहारा आन्दोलन के पथप्रदर्शक का काम दे रहा है। लीग के पुराने मूलमंत्र – "सभी मनुष्य भाई भाई हैं" के स्थान पर नया जुझारू नारा – "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!" मैदान में आया। उसने संघर्ष के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप का खुलकर ऐलान कर दिया। सत्रह वर्ष बाद यह नारा अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर संघ के नारे के रूप में समूची दुनिया में गूंज उठा, और आज सभी देशों के जुझारू सर्वहारा ने इसको अपने झण्डे पर अंकित कर रखा है।

फ़रवरी क्रान्ति छिड़ गयी। लन्दन की केन्द्रीय समिति ने, जो अब तक कार्य संभाले हुए थी, फ़ौरन अपने अधिकार ब्रसेल्स के उच्च मण्डल को हस्तान्तरित कर दिये। पर यह फ़ैसला वहां उस समय पहुंचा था जब ब्रसेल्स में घेरेबन्दी की हालत लागू हो चुकी थी, और जर्मन लोग ख़ास तौर से अपनी कोई बैठक नहीं कर सकते थे। हम सभी उस समय पेरिस रवाना होने के लिए तैयार बैठे थे, अतएव नयी केन्द्रीय समिति ने भी अपने को भंग कर देने और अपने तमाम अधिकार मार्क्स को सौंप देने तथा उन्हें फ़ौरन पेरिस में एक नयी केन्द्रीय समिति गठित करने का अधिकार प्रदान करने का निर्णय किया। यह निर्णय करनेवाले पांच आदमियों ने (३ मार्च १८४८ को) अपने-अपने अलग रास्ते पकड़े ही थे कि पुलिस मार्क्स के घर में घुस आयी, उन्हें गिरफ़्तार कर लिया और अगले दिन फ़्रांस चले जाने को – जहां मार्क्स स्वयं जाना चाह रहे थे – मजबूर किया।

पेरिस में हम सभी शीघ्र ही फिर एकत्र हुए। वहां निम्नांकित दस्तावेज़ तैयार की गयी और नयी केन्द्रीय समिति के सभी सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित हुई। यह समूचे जर्मनी में वितरित की गयी और बहुत-से लोग आज भी इससे कुछ सीख सकते हैं:

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। – सं०

की शाखाएं बहुत हद तक छिन्न-भिन्न हो गयी थीं और लीग के साथ उनका अपना सारा सम्पर्क समाप्त हो गया था। उनके एक अंश ने, उन लोगों ने, जो अधिक महत्त्वाकांक्षी थे, इस सम्पर्क को फिर से जोड़ने की कोशिश नहीं की, बल्कि हर एक ने अपने-अपने क्षेत्र में एक अलग आन्दोलन आरम्भ कर दिया। इस सब के अलावा, हर अलग-अलग छोटे-मोटे राज्य, हर प्रान्त और हर शहर के अन्दर अवस्थाएं इतनी भिन्न थीं कि लीग अत्यन्त सामान्य हिदायतें देने के अलावा और कुछ कर सकने में असमर्थ थी। पर ऐसी हिदायतें अख़बारों के ज़रिये कहीं ज्यादा अच्छी तरह प्रचारित की जा सकती थीं। संक्षेप में, जिस क्षण से उन कारणों का अस्तित्व समाप्त हो गया जिन्होंने गुप्त लीग को आवश्यक बनाया था, उसी क्षण से गुप्त लीग भी अपने आप में निरर्थक हो गयी। लेकिन इससे सबसे कम आश्चर्य उन लोगों को हो सकता था जिन्होंने इस गुप्त लीग के षड्यंत्रपरक स्वरूप के अन्तिम अवशेषों को हाल ही में समाप्त किया था।

पर यह चीज़ अब सिद्ध हो गयी कि लीग क्रान्तिकारी कार्यकलाप का एक शानदार विद्यालय रही थी। राइन में, जहां «*Neue Rheinische Zeitung*» ने एक दृढ़ केन्द्र प्रदान किया था, नस्साऊ में, राइनी हेसन में – सभी जगहों में लीग के सदस्य चरम जनवादी आन्दोलन के हरावल थे। ऐसा ही हैम्बर्ग में हुआ। दक्षिण जर्मनी में निम्न-पूंजीवादी जनवाद का प्राधान्य एक रोड़ा बन गया। ब्रेस्लाऊ में विल्हेल्म वोल्फ़ ने १८४८ की गर्मियों तक अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य किया; इसके अलावा वह सिलेशिया से फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद के एवज़ी सदस्य भी चुने गये। अन्ततः कम्पोज़िटर स्टीफ़न बोर्न ने, जिन्होंने ब्रसेल्स और पेरिस में लीग के सक्रिय सदस्य के रूप में कार्य किया था, बर्लिन में "मज़दूर बिरादरी" की स्थापना की। यह बिरादरी काफ़ी फैल गयी और १८५० तक क़ायम रही। बोर्न जन्म से एक अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करने के उतावलेपन के कारण उन्होंने हर ऐरे-ग़ैरे नत्थू खैरे के साथ "भाईचारा" क़ायम कर लिया ताकि उनकी एक जमात खड़ी हो जाये। परन्तु इन आपस में टकराती प्रवृत्तियों में एकता क़ायम करना, अव्यवस्था के अन्धकार में प्रकाश लाना उनके बूते के बाहर की चीज़ थी। फलतः उनकी "बिरादरी" के अधिकृत प्रकाशनों में 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के विचारों के साथ शिल्पसंघीय स्मृतियों और शिल्पसंघीय आकांक्षाओं, लूई ब्लां और प्रूदों के कुछ अंशों, संरक्षणवाद और ऐसी ही अन्य चीज़ों की विचित्र खिचड़ी हुआ करती थी। संक्षेप में, वह सभी को ख़ुश करना चाहते थे। ख़ास तौर पर हड़तालों, ट्रेड-यूनियनों उत्पादकों की सहकारी

उन दिनों पेरिस में क्रान्तिकारी सैनिक दस्ते क़ायम करने की एक ख़ब्त-सी फैली हुई थी। स्पेनी, इतालवी, बेल्जियाई, डच, पोल और जर्मन, सभी अपने अपने देशों को आज़ाद करने के लिए दलों में एकत्र हो रहे थे। जर्मन सैनिक दस्ते के नेता हरवे, बोर्नस्टेड, बर्न्सटीन थे। चूंकि क्रान्ति के बाद ही सभी विदेशी मज़दूर अपनी नौकरियों से हाथ धो बैठे थे, और इतना ही नहीं, लोग उन्हें तंग भी कर रहे थे, इसलिए इन सैनिक दस्तों में भर्ती होनेवालों की संख्या बहुत बड़ी थी। नयी सरकार ने देखा कि विदेशी मज़दूरों से पिंड छुड़ाने का यह अच्छा तरीक़ा है और उसने उन्हें l'étape du soldat दिया, यानी उनके कूच के रास्ते में छावनियों में ठहरने की सुविधा प्रदान की और सरहद तक ५० सेंटाइम प्रति दिन का मार्च करने का भत्ता दिया। इसके बाद तो बात-बात में आंसू बहाने वाले वाक्पटु विदेश मंत्री लामार्तीन को इन सैनिकों को उनकी सरकारों के हवाले करते देर न लगी।

क्रान्ति के साथ इस खिलवाड़ का हमने बड़ी ही दृढ़ता के साथ विरोध किया था। जर्मनी की उस समय की उथल-पुथल के मध्य आक्रमण संगठित करने, यानी बाहर से क्रान्ति का बलपूर्वक आयात करने का अर्थ ख़ुद जर्मनी की क्रान्ति की जड़ काटना, सरकारों के हाथ मज़बूत करना और इन सैनिकों को हाथ-पैर बांधकर जर्मन फ़ौज के हवाले करना था। इसकी लामार्तीन ने गारंटी कर ही रखी थी। बाद में जब वियेना और बर्लिन में क्रान्ति की जीत हुई, तो सैनिक दस्ते और भी अधिक निष्प्रयोजन हो गये। किन्तु खेल एक बार शुरू हो गया तो हो गया और चलता रहा।

हमने एक जर्मन कम्युनिस्ट क्लब[142] की स्थापना की जिसमें हमने मज़दूरों को सलाह दी कि वे इन सैनिक दस्तों से दूर रहें और उनमें भर्ती होने के बदले अलग-अलग घर लौटें और वहां जाकर आन्दोलन के लिए काम करें। हमारे पुराने मित्र फ़्लोकोन ने, जिन्हें अस्थायी सरकार में स्थान प्राप्त था, हमारे द्वारा भेजे मज़दूरों के लिए यात्रा की वे ही सुविधाएं दिला दीं जो स्वयंसेवक सैनिक दस्तों को प्राप्त थीं। इस प्रकार हमने तीन-चार सौ मज़दूरों को जर्मनी वापस भेजा जिनमें अधिकांश लीग के सदस्य थे।

जैसा कि आसानी से पहले ही देखा जा सकता था, जितना बड़ा जन-आन्दोलन उस समय छिड़ा हुआ था, उसके लिए लीग एक बहुत ही कमज़ोर लीवर सिद्ध हुई। लीग के तीन-चौथाई सदस्यों ने, जो पहले विदेशों में रह रहे थे, देश वापस लौटकर अपना निवास-स्थान बदल दिया था, फलतः उनकी पहले

सैनिक कोर की बेज़ान्सोन मज़दूरों की कम्पनी में भर्ती हो गये और मुर्ग की लड़ाई में रोटेनफ़ेल्स पुल के सामने सिर में गोली से मारे गये। दूसरी ओर, अब विलिख़ मैदान में उतरे। विलिख़ उन भावुक कम्युनिस्टों में से थे, जो १८४५ के बाद से पश्चिमी जर्मनी में अक्सर पाये जाते थे। अपनी इस भावुकता के कारण ही वह सहज एवं प्रच्छन्न रूप से हमारी आलोचनात्मक प्रवृत्ति के विरोधी थे। इससे भी बड़ी बात यह थी कि वह पूरे एक पैग़म्बर थे, उन्हें इस बात का पक्का विश्वास था कि मैं जर्मन सर्वहारा का त्राता होकर दुनिया में आया हूं। इसलिए वह अपने को फ़ौजी अधिनायकत्व और राजनीतिक अधिनायकत्व दोनों ही का अधिकारी समझते थे। इस प्रकार वाइटलिंग के पुराने ईसाई कम्युनिज़्म के साथ एक तरह का कम्युनिस्ट इस्लाम आ जुड़ा था। परन्तु इस नये मजहब का प्रचार फ़िलहाल विलिख़ की कमान के शरणार्थी सिपाहियों की बारिकों तक ही सीमित था।

अतः लीग का नये सिरे से संगठन किया गया। मार्च १८५० की 'चिट्ठी'* जारी की गयी (परिशिष्ट ६, अंक १[143]) और हेनरिक बावेर प्रणिधि के रूप में जर्मनी भेजे गये। मार्क्स और मेरे द्वारा तैयार की गयी यह 'चिट्ठी' आज भी दिलचस्पी की चीज़ है क्योंकि निम्नपूंजीवादी जनवाद ही आज भी वह पार्टी है, जिसे आगामी, शीघ्र ही होनेवाली यूरोपीय उथल-पुथल में (यूरोपीय क्रान्तियां १८१५, १८३०, १८४८–१८५२, १८७० में हुई, यानी हमारी शताब्दी में वे १५ से १८ साल के अन्तर पर हो रही हैं) कम्युनिस्ट मजदूरों से समाज के रक्षक के रूप में जर्मनी में सबसे पहले सत्तारूढ़ होना है। अतः 'चिट्ठी' में जो बातें कही गयी हैं वे अधिकांशतः आज भी लागू होती हैं। हेनरिक बावेर को अपने कार्य में पूरी सफलता मिली। यह दुबला-पतला विश्वासयोग्य मोची जन्मजात कूटनीतिज्ञ था। बावेर लीग के भूतपूर्व सदस्यों को, जो एक हद तक ढीले और सुस्त पड़ गये थे और एक हद तक ख़ुदमुख़्तार होकर काम कर रहे थे, फिर सक्रिय संगठन में लौटा लाये। ख़ास तौर से वह "मजदूर बिरादरी" के उस समय के नेताओं को संगठन में ले आये। लीग १८४८ से पहले के काल से कहीं ज़्यादा बड़े पैमाने पर मज़दूरों और किसानों के संघों में तथा व्यायाम संघों में प्रभुत्वशील भूमिका अदा करने लगी, यहां तक कि शाखाओं को भेजी गयी अगली, जून १८५० की तिमाही 'चिट्ठी' में यह सूचना प्रकाशित की जा सकी कि बोन

---

* देखें प्रस्तुत संस्करण, खण्ड १, भाग १। – सं०

समितियों का आरम्भ किया गया और यह भुला दिया गया कि सर्वोपरि प्रश्न राजनीतिक जीतों के द्वारा वह भूमि सर करने का है जिस पर कि ऐसी चीज़ें टिकाऊ आधार पर प्राप्त की जा सकती हैं। बाद में जब प्रतिक्रियावाद की विजय ने "बिरादरी" के नेताओं को क्रान्तिकारी संघर्ष में प्रत्यक्ष भाग लेने की आवश्यकता का बोध कराया, तो स्वभावतः वह पंचमेली भीड़, जो उन्होंने अपने गिर्द जमा कर रखी थी, उन्हें छोड़कर नौ दो ग्यारह हो गयी। बोर्न ने मई १८४९ के ड्रेस्डेन के विप्लव में भाग लिया। ख़ुशक़िस्मती से वह वहां बच गये। परन्तु सर्वहारा के महान राजनीतिक आन्दोलन के मुक़ाबले में "मज़दूर बिरादरी" विशुद्ध Sonderbund [पृथक् संघ] सिद्ध हुई ; उसका अस्तित्व बड़ी हद तक केवल काग़ज़ पर था और उसकी भूमिका इतनी गौण रही कि प्रतिक्रियावाद को १८५० से पहले उसका – और उसकी अवशिष्ट शाखाओं का इसके भी कई साल बाद तक – दमन करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। बोर्न, जिनका असली नाम बटरमिल्क था, राजनीतिक क्षेत्र के जाने-माने नेता बनने के बदले स्विट्ज़रलैंड में एक मामूली प्रोफ़ेसर बनकर रह गये। यह प्रोफ़ेसर शिल्पसंघीय भाषा में मार्क्स का तरजुमा करना छोड़कर अपनी लच्छेदार जर्मन भाषा में विनम्र रेनां का तरजुमा किया करता है।

पेरिस में १३ जून १८४९, जर्मनी में मई की बग़ावतों की हार और रूसियों द्वारा हंगरी की क्रान्ति के कुचल दिये जाने के साथ १८४८ की क्रान्ति के महान युग का अन्त हो गया। पर प्रतिक्रियावाद की विजय पूर्ण कदापि नहीं हुई थी। बिखरी हुई क्रान्तिकारी शक्तियों को पुनर्गठित करने की, अतः लीग का भी पुनर्गठन करने की आवश्यकता थी। १८४८ की तरह, परिस्थिति फिर ऐसी थी कि सर्वहारा का खुला संगठन नहीं बन सकता था। अतः फिर गुप्त संगठन बनाना आवश्यक हो गया।

१८४९ की शरत् ऋतु में पहले की केन्द्रीय समितियों और कांग्रेसों के अधिकतर सदस्य फिर लन्दन में जमा हुए। न पहुंचनेवालों में केवल शापर और मोल थे। शापर वीज़बाडेन में जेल में बन्द थे और रिहाई के बाद, १८५० के वसन्त में आ पहुंचे थे। मोल कई अत्यन्त ख़तरनाक मिशन पूरा करने तथा प्रचार-सम्बन्धी यात्राएं सम्पन्न करने के बाद (उन्होंने राइन प्रान्त में ऐन प्रशियाई फ़ौज के बीच में से फ़ाल्ज़ तोपख़ाने* के लिए घुड़सवार तोपची तक भर्ती किये) विलिख़ के

* तात्पर्य क्रान्तिकारी फ़ौज के उस तोपख़ाने से है जो मई – जून १८४९ के बाडेन-फ़ाल्ज़ विद्रोह में प्रशियाई सरकार की सेना से लड़ा था। – सं०

समूचे यूरोप की होनेवाली थीं, लन्दन में जमा थे, और जब पलक झपकते ही यूरोपीय क्रान्ति सम्पन्न कर देने और इस क्रान्ति के सहज परिणाम के रूप में विभिन्न देशों में जनतंत्र की स्थापना कर देने के लिए आवश्यकता सिर्फ़ अमरीका से क़र्ज़ के रूप में अपेक्षित धन प्राप्त कर लेने मात्र की थी, ऐसे समय वस्तुस्थिति का हमारा उपरोक्त भावुकताहीन मूल्यांकन बहुतों को कुफ़्र ज्ञात हुआ। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि विलिख़ जैसा आदमी इस चक्कर में पड़ गया, कि शापर ने भी अपनी पुरानी क्रान्तिकारी भावना में बहकर अपने को इस सब्ज़बाग़ में फंस जाने दिया और लन्दन के मज़दूरों का अधिकतर भाग, जो स्वयं बड़ी हद तक शरणार्थियों का था, उनके पीछे चलकर क्रान्ति के तथाकथित पूंजीवादी-जनवादी निर्माताओं के ख़ेमे में चला गया। संक्षेप में हमारी संयतता इन लोगों के मन को न भायी। उनका ख़्याल था कि क्रान्ति की रचना करने के खेल में हम लोगों को भी शामिल होना चाहिए था। हमने ऐसा करने से अत्यन्त दृढ़तापूर्वक इनकार कर दिया। हमारे यहां फूट पड़ गयी। इसके बारे में विशेष जानकारी 'रहस्योद्घाटन'* से प्राप्त की जा सकती है। इसके बाद हैम्बर्ग में नौथयुंग और फिर हौप्ट भी गिरफ़्तार हो गये। हौप्ट ने ग़द्दारी की, उसने कोलोन की केन्द्रीय समिति के सदस्यों के नाम बता दिये और मुक़दमे में मुख्य गवाह बनाया गया। पर उसके रिश्तेदार बदनामी नहीं मोल लेना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उसे रियो डे जेनेरो रवाना कर दिया। बाद में वहां वह व्यापारी बन गया और अपनी सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप पहले प्रशा का और फिर जर्मनी का कौंसल-जनरल बना दिया गया। अब वह फिर यूरोप में है।**

'रहस्योद्घाटन' की बेहतर समझ के लिए मैं कोलोन के मुक़दमे के अभियुक्तों की सूची दे रहा हूं: १) पी० जी० रोज़र, सिगार बनानेवाले मज़दूर; २) हेनरिक बर्गर्स, जिनकी बाद में जब वह विधान-सभा के प्रगतिवादी सदस्य थे, मृत्यु

---

* **का० मार्क्स**, 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन'। – **सं०**

** शापर की सातवें दशक के अन्त में लन्दन में मृत्यु हो गयी। विलिख़ ने अमरीकी गृहयुद्ध में शामिल होकर काफ़ी नाम कमाया। वह ब्रिगेडियर जनरल हो गये। मुर्फ़ीज़बोरो (टेनेसी) की लड़ाई में उनके सीने में गोली लगी, पर जान बच गयी और कोई दस साल पहले अमरीका में उनकी मृत्यु हुई। उल्लिखित अन्य व्यक्तियों के बारे में मैं इतना ही कहूंगा कि हेनरिक बावेर आस्ट्रेलिया चले गये जिसके बाद पता नहीं कि उनका क्या हुआ और वाइटलिंग तथा एवरबेक की अमरीका में मृत्यु हुई।

के शुर्ज़ नामक छात्र (बाद में अमरीका का ex-minister) ने निम्नपूंजीवादी जनवाद के हित में जर्मनी का दौरा करते समय "सभी योग्य शक्तियों को लीग के हाथों में पाया है" (देखिये परिशिष्ट ६, अंक २)। निस्सन्देह लीग ही जर्मनी का एकमात्र क्रान्तिकारी संगठन थी जो कुछ महत्त्व रखती थी।

किन्तु यह संगठन किस उद्देश्य की सिद्धि करेगा, यह बहुत बड़ी मात्रा में इस बात पर निर्भर था कि क्रान्ति के एक नये उभार की सम्भावनाएं साकार होंगी या नहीं। और १८५० के दौरान इस बात के इमकान बराबर कम होते गये, दरअसल बिल्कुल रह ही नहीं गये। १८४७ का औद्योगिक संकट, जिसने १८४८ की क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया था, दूर हो चुका था; औद्योगिक समृद्धि का एक नया, अभूतपूर्व काल आरम्भ हो गया था। हर आदमी ने, जिसके आंखें थीं और जिसने उन्हें मूंद नहीं लिया था, ज़रूर यह साफ़-साफ़ महसूस किया होगा कि १८४८ का क्रान्तिकारी तूफ़ान धीरे-धीरे ठण्डा पड़ रहा था।

"इस आम समृद्धि के होते हुए, जिसमें पूंजीवादी समाज की उत्पादक शक्तियां पूंजीवादी सम्बन्धों के अन्दर सम्भव अधिकतम प्रचुरता के साथ विकास कर रही हैं, **सच्ची क्रान्ति की कोई बात ही नहीं की जा सकती।** ऐसी क्रान्ति उन कालावधियों में ही सम्भव है जबकि ये दोनों तत्त्व, अर्थात् आधुनिक उत्पादक शक्तियां और उत्पादन के पूंजीवादी रूप एक दूसरे से टकराते हों। तरह-तरह के झगड़े, जो यूरोपीय महाद्वीप की अमन की पार्टी के अलग-अलग गुटों के प्रतिनिधिगण किया करते हैं, और जिनमें वे एक दूसरे को बदनाम करते हैं, नयी क्रान्तियों के लिए अवसर नहीं प्रदान करते। ऐसा करना तो दूर रहा, उलटे वे आज सम्भव ही इसलिए हैं कि सामाजिक सम्बन्धों का आधार इस समय इतना सुरक्षित, और – ख़ुद प्रतिक्रियावादी जिस चीज़ को नहीं जानते – इतना **पूंजीवादी** है। पूंजीवादी विकास को रोकने की प्रतिक्रिया की सभी कोशिशें **इस आधारशिला से टकराकर उतने ही निश्चित रूप में विफल हो जायेंगी, जितने निश्चित रूप में जनवादियों का समस्त नैतिक आक्रोश और उनकी जोशीली घोषणाएं विफल हो जायेंगी।**" ये शब्द मार्क्स ने और मैंने 'मई – अक्तूबर १८५० के सिंहावलोकन' में लिखे थे (*«Neue Rheinische Zeitung. Politisch-ökonomische Revue»*, खंड ५ और ६, हैम्बर्ग, १८५०, पृष्ठ १५३)।

पर जबकि लेद्रू-रोलेन, लूई ब्लां, माज़्ज़िनी, कोशुथ जैसे लोग और इनसे कम मशहूर जर्मनों में रूगे, किनकेल, गोएग, आदि सारे लोग भविष्य की अस्थायी सरकारें क़ायम करने के लिए, जो केवल उनके अपने-अपने देशों की न होकर

विचार रखनेवाले वर्ग-साथियों का सीधा-सादा स्वतःप्रकट परस्पर सम्बन्ध ही – बिना किसी नियमावली, समिति, प्रस्ताव या अन्य मूर्त रूपों के – पूरे जर्मन साम्राज्य की नींव हिला देने के लिए काफ़ी है। बिस्मार्क जर्मनी की सीमाओं के बाहर यूरोप का भाग्यविधाता है, किन्तु इन सीमाओं के अन्दर जर्मन सर्वहारा की भीम काया, जिसके बारे में मार्क्स ने १८४४ में ही भविष्यवाणी की थी, दिनोंदिन विराट रूप धारण करती जा रही है। इस भीम के लिए कूपमण्डूकों के वास्ते बनी शाही इमारत अभी से ही नाकाफ़ी होती जा रही है। उसका विराट शरीर और उसके चौड़े कंधे इस तरह बढ़ रहे हैं कि एक दिन वह घड़ी आनेवाली है जब उसके अपनी सीट से उठ खड़े होने मात्र से ही शाही संविधान की सम्पूर्ण इमारत ढह पड़ेगी। इतना ही नहीं। यूरोपीय और अमरीकी सर्वहारा का अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन इतना बलशाली हो गया है कि उसका पहला संकीर्ण रूप, अर्थात् गुप्त लीग ही नहीं, अपितु उसका दूसरा, कहीं अधिक व्यापक रूप, यानी खुला अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ भी उसके लिए बन्धन बन गया है, और वर्ग-स्थिति की समानता के बोध पर आधारित एकजुटता की सीधी-सादी भावना ही सभी देशों और सभी भाषाभाषी मज़दूरों के बीच सर्वहारा की एक अभिन्न महान पार्टी का सृजन करने तथा उसकी एकता क़ायम रखने के लिए काफ़ी है। जिस सिद्धान्त का लीग ने १८४७ से १८५२ तक प्रतिनिधित्व किया था और जिसको उस समय हमारे बुद्धिशाली कूपमण्डूकगण ने कंधों को एक हल्की-सी जुंबिश देकर पागलों का प्रलाप, इक्के-दुक्के संकीर्णतावादियों का गुप्त सिद्धान्त बताया था, उसके आज दुनिया के सभी सभ्य देशों – साइबेरियाई खानों के निर्वासितों से लेकर कैलिफ़ोर्निया के स्वर्ण-खनकों तक – के अन्दर अनगिनत अनुयायी मौजूद हैं। और इस सिद्धान्त के प्रणेता, कार्ल मार्क्स, जिनके ऊपर घृणा और बदनामियों की अभूतपूर्व बौछार की गयी थी, अपनी मृत्यु के समय पुरानी और नयी दुनिया – दोनों में सर्वहारा वर्ग के सतत सलाहकार थे, जिनकी सलाह हमेशा मांगी जाती थी और जो उसे देने को सतत तत्पर रहते थे।

लन्दन, ८ अक्तूबर १८८५

फ़्रेडरिक एंगेल्स

Karl Marx. *«Enthüllungen über den Kommunisten-Prozeß zu Köln».* Hottingen-Zürich, 1885 में तथा *«Der Sozialdemokrat»* समाचारपत्र (अंक ४६–४८; १२, १९ और २६ नवम्बर १८८५) में प्रकाशित।

अंग्रेज़ी से अनूदित।

हो गयी; ३) पीटर नौथयुंग, दर्ज़ी, जो ब्रेस्लाऊ में फ़ोटोग्राफ़र का काम करने लगे थे और वहीं कुछ साल पहले उनकी मृत्यु हुई; ४) वि० जो० रैफ़; ५) डॉ० हर्मन बेकर, इस समय कोलोन के मेयर और उच्च सदन के सदस्य हैं; ६) डॉ० रोलान्ड डैनिएल्स, चिकित्सक, जिन्हें जेल में ही तपेदिक़ हो गयी और उसके कारण मुक़दमे के कुछ वर्षों के बाद उनकी मृत्यु हो गयी; ७) कार्ल ओटो, रसायन-विज्ञानी; ८) डॉ० अब्राहम जैकोबी, जो इस समय न्यूयार्क में चिकित्सक हैं; ९) डॉ० जो० जै० क्लैन, जो आजकल कोलोन में चिकित्सक और नगर सभासद हैं; १०) फ़र्दीनांद फ़ैलिगराथ, जो पहले ही लन्दन पहुंच गये थे; ११) जो० लु० एर्हार्ड, क्लर्क; १२) फ़ेडरिक लेसनर, दर्ज़ी, जो अब लन्दन में हैं। इनका खुला मुक़दमा जूरी के समक्ष ४ अक्तूबर से १२ नवम्बर १८५२ तक चला; राजद्रोह के अपराध में रोज़र, बर्गर्स और नौथयुंग को छः साल, रैफ़, ओटो और बेकर को पांच साल और लेसनर को तीन साल की फ़ौजी क़िले में क़ैद की सज़ा मिली। डैनिएल्स, क्लैन, जैकोबी और एर्हार्ड रिहा कर दिये गये।

कोलोन के मुक़दमे के साथ जर्मन कम्युनिस्ट मज़दूर आंदोलन के प्रथम चरण का अन्त हुआ। सज़ा सुनाये जाने के तुरंत बाद हमने अपनी लीग को भंग कर दिया; कुछ ही महीनों के बाद विलिख़–शापर की Sonderbund[144] भी कालकवलित हो गयी।

* * *

उस समय और आज के बीच एक पूरी पीढ़ी का व्यवधान है। उस समय जर्मनी दस्तकारी और दस्त श्रम पर आधारित घरेलू उद्योग का देश था। आज वह एक बड़ा औद्योगिक देश है जिसका औद्योगिक रूपान्तरण अब भी जारी है। उस समय ऐसे मज़दूरों को, जिनको मज़दूर की हैसियत से अपनी स्थिति का और पूंजी से अपने ऐतिहासिक-आर्थिक विरोध का ज्ञान हो, चिराग़ लेकर ढूंढ़ना होता था, क्योंकि यह विरोध स्वयमेव अभी विकसित होना शुरू ही हुआ था। पर आज समूचे जर्मन सर्वहारा को असाधारण क़ानूनों के अन्तर्गत केवल इसलिए रखना पड़ता है कि उसमें उत्पीड़ित वर्ग के रूप में अपनी स्थिति की पूर्ण चेतना के विकास की प्रक्रिया कुछ धीमी की जा सके। उस समय उन थोड़े-से व्यक्तियों को, जिनकी बुद्धि ने तल तक पैठकर सर्वहारा की ऐतिहासिक भूमिका का बोध प्राप्त किया था, चुपके-चुपके मिलना-जुलना पड़ता था, और ३ से २० व्यक्तियों की छोटी-मोटी शाखाओं में गुप्त रूप से अपनी बैठकें करनी पड़ती थीं। आज जर्मन सर्वहारा को किसी अधिकृत–खुले अथवा गुप्त–संगठन की आवश्यकता नहीं रह गयी है। समान

कार्ल काउत्स्की के विरोध का सामना करना पड़ा। इन लोगों ने पुस्तक में कतिपय परिवर्तन और काट-छांट करने का आग्रह किया, जिसके लिए एंगेल्स को सहमत होना पड़ा। 'गोथा-कार्यक्रम की आलोचना' के साथ एंगेल्स ने वि० ब्राके के नाम मार्क्स के ५ मई १८७५ के पत्र को भी प्रकाशित किया, जिसका इस कृति के साथ सीधा संबंध है।

प्रस्तुत संस्करण में भूमिका का पूरा पाठ एंगेल्स की पांडुलिपि के अनुसार प्रकाशित किया गया है। – पृ० ७

[3] **गोथा कांग्रेस** १८७५ में २२ मई से २७ मई तक हुई। उसमें जर्मन मज़दूर आंदोलन की दोनों धारायें – समाजवादी-जनवादी मज़दूर पार्टी (आइज़ेनाख़-वादी), जिसके नेता अगस्त बेबेल और विल्हेल्म लीब्कनेख़्त थे, और लासालपंथी आम जर्मन मज़दूर संघ – एक हो गयीं और उन्हें मिलाकर जर्मनी की समाजवादी मज़दूर पार्टी की स्थापना की गई। इस प्रकार जर्मन मज़दूर वर्ग की फूट का अंत हुआ। संयुक्त पार्टी के कार्यक्रम का मसविदा, जिसकी मार्क्स और एंगेल्स ने कठोर आलोचना की, कांग्रेस द्वारा कुछ मामूली महत्त्वहीन संशोधनों के साथ स्वीकृत कर लिया गया। – पृ० ७

[4] **हाल्ले की जर्मन सामाजिक-जनवादी कांग्रेस** १८९० में १२ अक्तूबर से १८ अक्तूबर तक हुई। उसने एक नये कार्यक्रम का मसविदा तैयार करने का और उसे एर्फ़ुर्ट में होनेवाली अगली पार्टी-कांग्रेस के तीन महीने पहले प्रकाशित करने का फ़ैसला किया ताकि उस पर पहले पार्टी के स्थानीय संगठनों और अख़बारों में बहस हो सके। – पृ० ७

[5] अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की **हेग कांग्रेस** २ सितम्बर से ७ सितम्बर १८७२ तक हुई। कांग्रेस में १५ राष्ट्रीय संगठनों के ६५ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मार्क्स और एंगेल्स ने कांग्रेस के समूचे कार्य का संचालन किया। उन्होंने और उनके अनुयायियों ने अनेक वर्षों से मज़दूर आन्दोलन में हर प्रकार के निम्न-पूंजीवादी संकीर्णतावाद के ख़िलाफ़ जो संघर्ष चलाया था, उसकी परिणति हेग कांग्रेस में हुई। अराजकतावादियों के फूटवादी क्रियाकलाप की निंदा की गयी और उनके नेताओं को इंटरनेशनल से निकाल दिया गया। हेग कांग्रेस के निर्णयों ने विभिन्न देशों में मज़दूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टियों की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त किया। – पृ० ८

टिप्पणियां

[1] **'गोथा-कार्यक्रम की आलोचना'** – मार्क्स द्वारा १८७५ में लिखित इस कृति में जर्मनी की भावी संयुक्त मजदूर पार्टी के कार्यक्रम के मसविदे की आलोचना की गयी है। इस मसविदे में भारी ग़लतियां थीं और लासालवाद को सैद्धांतिक प्रकार की छूटें दी गयी थीं। मार्क्स और एंगेल्स ने जर्मनी में एक संयुक्त समाजवादी पार्टी की स्थापना के विचार का अनुमोदन किया, परंतु उन्होंने लासालपंथियों के साथ सैद्धांतिक प्रकार के समझौते की निंदा की और उसकी कड़ी आलोचना की। इस पुस्तक में मार्क्स ने वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों – जैसे समाजवादी क्रांति, सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व, पूंजीवाद से कम्युनिज़्म में संक्रमण-काल, कम्युनिस्ट समाज की दो अवस्थाओं, समाजवाद के अंतर्गत सामाजिक उपज के उत्पादन तथा वितरण और कम्युनिज़्म की मुख्य विशेषताओं, सर्वहारा अंतर्राष्ट्रीयतावाद तथा मजदूर वर्ग की पार्टी के प्रश्नों – के बारे में अनेक विचारों को सूत्रबद्ध किया। – पृ० ७

[2] एंगेल्स ने यह भूमिका १८६१ में 'गोथा-कार्यक्रम की आलोचना' के प्रकाशन के सिलसिले में लिखी थी। एंगेल्स ने इस महत्त्वपूर्ण नीति-संबंधी दस्तावेज़ के प्रकाशन का बीड़ा इसलिए उठाया कि अवसरवादी तत्त्वों पर, जो जर्मन समाजवादी-जनवादी पार्टी में सक्रिय हो गये थे, क़रारी चोट की जा सके। एंगेल्स का यह क़दम उस समय विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण था, क्योंकि पार्टी अपनी एर्फ़ुर्ट कांग्रेस में गोथा-कार्यक्रम की जगह एक नये कार्यक्रम को बहस-मुबाहिसे के बाद स्वीकृत करने जा रही थी। 'गोथा-कार्यक्रम की आलोचना' को प्रकाशन के लिए प्रस्तुत करने में एंगेल्स को जर्मन समाजवादी-जनवादी पार्टी के कुछ नेताओं, *«Die Neue Zeit»* पत्रिका के प्रकाशक दीत्स तथा संपादक

करके युद्धों से बचा जा सकता है, लीग ने जनसाधारण में भ्रान्त और झूठी धारणाओं का प्रचार किया और सर्वहारा को वर्ग-संघर्ष से विरत किया। – पृ० २२

[11] **पेरिस कम्यून** – सर्वहारा अधिनायकत्व की इतिहास में पहली सरकार, जो १८ मार्च १८७१ में पेरिस के मज़दूरों के विद्रोह के फलस्वरूप स्थापित की गयी थी। वह २८ मई १८७१ तक सत्तारूढ़ रही। – पृ० २२

[12] «*Norddeutsche Allgemeine Zeitung*» ('उत्तर जर्मन सामान्य अख़बार') – एक प्रतिक्रियावादी दैनिक समाचारपत्र, जो बर्लिन में १८६१ से १६१८ तक प्रकाशित होता रहा। उन्नीसवीं शताब्दी के सातवें दशक से नौवें दशक तक वह बिस्मार्क की सरकार का मुखपत्र बना रहा। यहां मार्क्स का इशारा इस पत्र के २० मार्च १८७५ के अंक में प्रकाशित एक लेख की ओर है। – पृ० २२

[13] «*L'Atelier*» ('वर्कशाप') – एक मासिक पत्रिका, जो पेरिस में १८४० से १८५० तक प्रकाशित होती रही। यह उन दस्तकारों और मज़दूरों का मुखपत्र थी, जिनकी सहानुभूति ईसाई समाजवाद के साथ थी। – पृ० २५

[14] **कुल्टुरकांफ़** ('संस्कृति के लिए संघर्ष') – सुधार क़ानूनों की एक संहिता को पूंजीवादी उदारतावादियों द्वारा दिया गया नाम। बिस्मार्क की सरकार ने इन सुधारों को १६वीं शताब्दी के आठवें दशक में लौकिक संस्कृति के आन्दोलन के नाम पर क्रियान्वित किया। परन्तु नवें दशक में प्रतिक्रियावादी शक्तियों को मज़बूत करने की गरज़ से बिस्मार्क ने इन क़ानूनों में से अधिकांश को रद्द कर दिया। – पृ० ३०

[15] «*Frankfurter Zeitung und Handelsblatt*» ('फ़्रैंकफ़ुर्ट समाचारपत्र और तिजारती परचा') – एक निम्नपूंजीवादी जनवादी दैनिक समाचारपत्र, जो १८५६ से (उपरोक्त नाम से १८६६ से) लेकर १६४३ तक प्रकाशित होता रहा। – पृ० ३४

[16] यहां एंगेल्स का इशारा गोथा-कार्यक्रम (मसविदा) की निम्नलिखित धाराओं की ओर है –

"जर्मन मज़दूर पार्टी राज्य के स्वतंत्र आधार के रूप में मांग करती है –

"(१) राष्ट्रीय तथा स्थानीय, सभी चुनावों के लिए इक्कीस वर्ष की आयु के सभी पुरुषों के वास्ते गुप्त मतदान के साथ सार्विक, समान तथा प्रत्यक्ष मताधिकार। (२) विधेयकों को पेश करने तथा अस्वीकृत करने के अधिकार समेत जनता द्वारा प्रत्यक्ष विधिनिर्माण। (३) सार्विक सैनिक प्रशिक्षण। नियमित

[6] जर्मन समाजवादी-जनवादी मज़दूर पार्टी को आइज़ेनाख़वादी कहा जाता था, क्योंकि उसकी स्थापना ७ से ६ अगस्त १८६६ तक आइज़ेनाख़ नामक स्थान में जर्मनी, आस्ट्रिया और स्विट्ज़रलैंड के समाजवादी-जनवादियों की कांग्रेस में की गई थी। कांग्रेस द्वारा स्वीकृत कार्यक्रम मुख्यतः पहले इन्टरनेशनल द्वारा घोषित सिद्धान्तों के अनुरूप था।—पृ० ६

[7] यहां इशारा बकूनिन की पुस्तक 'राज्यत्व तथा अराजकता' की ओर है, जो स्विट्ज़रलैंड में १८७३ में प्रकाशित हुई थी।—पृ० ६

[8] **जर्मन जन-पार्टी** में, जिसकी स्थापना १८६५ में की गयी थी, निम्नपूंजीपति वर्ग के जनवादी तत्व और पूंजीपति वर्ग का (विशेषतः दक्षिण जर्मन राज्यों के पूंजीपति वर्ग का) एक भाग शामिल था। प्रशाविरोधी नीति चलाते हुए और आम जनवादी नारे पेश करते हुए भी इस पार्टी ने कुछ जर्मन राज्यों की पृथकतावादी प्रवृत्तियों का रुख़ अपनाया। संघात्मक जर्मन राज्य की स्थापना का समर्थन करते हुए जन-पार्टी एक पूर्ण, केन्द्रीकृत जनवादी जनतंत्र के रूप में जर्मनी के एकीकरण का वास्तव में विरोध करती थी।

१८६६ में सैक्सन जन-पार्टी, जिसका मुख्य भाग मज़दूर थे, जर्मन जन-पार्टी के साथ मिली। इस वामपंथ ने, जिसने देश को जनवादी तरीक़े से एकीकृत करने के जन-पार्टी के प्रयत्न का समर्थन किया, १८६६ में जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की स्थापना में भाग लिया।—पृ० ६

[9] यहां इशारा सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के प्रकाशनगृह की ओर है, जो *«Volksstaat»* अख़बार तथा सामाजिक-जनवादी साहित्य का प्रकाशन करता था। इस प्रकाशनगृह के प्रधान अगस्त बेबेल थे।

«Der Volksstaat» ('जनता का राज्य')—जर्मन सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी (आइज़ेनाख़वादी) का मुखपत्र, जो लाइपज़िग में २ अक्तूबर १८६६ से २६ सितम्बर १८७६ तक प्रकाशित होता रहा। उसके सम्पादक विल्हेल्म लीब्कनेख़्त थे। मार्क्स तथा एंगेल्स इस पत्र के लिए लिखते थे तथा उसके सम्पादन में हाथ बंटाते थे।—पृ० १०

[10] **शान्ति तथा स्वतंत्रता लीग**—एक पूंजीवादी शान्तिवादी संगठन, जिसे निम्न-पूंजीवादी जनतंत्रवादियों तथा उदारतावादियों ने १८६७ में स्विट्ज़रलैंड में स्थापित किया था। यह घोषित कर कि "यूरोप का संयुक्त राज्य" स्थापित

[21] «*Die Neue Zeit*» ('नया ज़माना') – जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी की सैद्धान्तिक पत्रिका, १८८३ से १९२३ तक स्टुटगार्ट में प्रकाशित होती रही। १८८५–१८९४ में उसने एंगेल्स के कई लेख प्रकाशित किये। – पृ० ४२

[22] लीब्कनेख़्त ने हाल्ले में सामाजिक-जनवादी कांग्रेस में (देखें टिप्पणी ४) पार्टी कार्यक्रम पर रिपोर्ट प्रस्तुत की। – पृ० ४२

[23] **समाजवाद विरोधी क़ानून** जर्मनी में २१ अक्तूबर १८७८ को लागू किया गया था। उसने सामाजिक-जनवादी पार्टी के तमाम संगठनों, मजदूरों के जन-संगठनों तथा मजदूरों के अख़बारों पर पाबन्दी लगा दी थी। इस क़ानून के बल पर समाजवादी साहित्य ज़ब्त कर लिया गया तथा सामाजिक-जनवादियों को सताया गया। मजदूरों के जन-आन्दोलन के फलस्वरूप यह क़ानून १ अक्तूबर १८९० को ख़त्म कर दिया गया। – पृ० ४३

[24] यहां इशारा काउंटेस सोफ़िया हाट्सफ़ेल्ड के तलाक़-सम्बन्धी मुक़दमे की ओर है, जिसमें लासाल ने १८४६–१८५६ में काउंटेस की ओर से पैरवी की थी। लासाल ने एक पुराने अभिजात परिवार की ओर से मुक़दमा लड़ते हुए उसके महत्त्व को अतिरंजित किया था और उसकी तुलना उत्पीड़ितों के संघर्ष से की थी। – पृ० ४३

[25] «*Vorwärts. Berliner Volksblatt*» ('आगे बढ़ो। बर्लिन जन-अख़बार') – जर्मन सामाजिक-जनवादी दैनिक पत्र; १८८४ में आरम्भ तथा १८९१ से इस नाम से प्रकाशित हुआ। १८९१ से वह जर्मनी की सामाजिक-जनवादी पार्टी का मुखपत्र बन गया।

यहां इशारा १३ फ़रवरी १८९१ को प्रकाशित सम्पादकीय लेख से है, जिसमें गोथा-कार्यक्रम के बारे में मार्क्स की आलोचनात्मक टिप्पणियों तथा लासाल के बारे में उनके मूल्यांकन से राइख़स्टाग में सामाजिक-जनवादी ग्रूप की असहमति व्यक्त की गयी थी। – पृ०

[26] २० फ़रवरी १८९१ को एंगेल्स के नाम चिट्ठी में फ़िशर ने लिखा कि पार्टी की कार्यकारिणी ने मार्क्स की 'फ़्रांस में गृहयुद्ध' तथा 'उजरती श्रम तथा पूंजी' शीर्षक कृतियों और एंगेल्स की 'समाजवाद: काल्पनिक तथा वैज्ञानिक' शीर्षक कृति को पुनः प्रकाशित करने का निर्णय किया है। चिट्ठी में फ़िशर ने एंगेल्स से इन कृतियों की भूमिकाएं लिखने के लिए कहा। – पृ० ४४

सेना की जगह जन-मिलिशिया की स्थापना। युद्ध और शान्ति के निर्णय जनता की प्रतिनिधि-सभा द्वारा किये जायें। (४) सभी असाधारण क़ानूनों का, विशेषतः प्रेस, संघ और सभा-सम्बन्धी क़ानूनों का उन्मूलन। (५) जनता द्वारा इन्साफ़। निःशुल्क न्याय-व्यवस्था।

"जर्मन मज़दूर पार्टी राज्य के बौद्धिक और नैतिक आधार के रूप में मांग करती है–

"(१) राज्य द्वारा सार्विक तथा समान प्राथमिक शिक्षा। सार्विक तथा अनिवार्य स्कूली हाज़िरी। निःशुल्क शिक्षण। (२) विज्ञान की स्वतंत्रता। अन्तःकरण का स्वातंत्र्य।"–पृ० ३४

[17] यहां इशारा १८७०–१८७१ के फ़्रांस-प्रशा युद्ध की ओर है।–पृ० ३४

[18] W. Bracke, «*Der Lassalle'sche Vorschlag*». Braunschweig, 1873. (वि० ब्राके, 'लासाल का प्रस्ताव', ब्रन्सविक, १८७३)।–पृ० ३६

[19] «*Demokratisches Wochenblatt*» ('जनवादी साप्ताहिक') – जर्मन मज़दूरों का अख़बार, जो लाइपज़िग से जनवरी १८६८ से सितम्बर १८६९ तक निकलता रहा। उसके सम्पादक विल्हेल्म लीब्कनेख़्त थे। जर्मनी की समाजवादी-जनवादी मज़दूर पार्टी की स्थापना में इस अख़बार का बहुत बड़ा हाथ था। १८६९ में आइज़ेनाख़ कांग्रेस में उसे पार्टी का मुखपत्र बना दिया गया और वह «*Volksstaat*» (देखें टिप्पणी ९) के नाम से मशहूर हुआ। मार्क्स और एंगेल्स इस अख़बार के लिए लेख लिखते थे।–पृ० ३८

[20] एंगेल्स का यहां इशारा सामाजिक-जनवादी अख़बारों की ओर है, जिन्होंने फ़रवरी १८९१ में मार्क्स की 'गोथा-कार्यक्रम की आलोचना' शीर्षक रचना का समर्थन करनेवाली चिट्ठियां प्रकाशित की थीं।

«*Arbeiter-Zeitung*» ('मज़दूरों का अख़बार')–आस्ट्रियाई सामाजिक-जनवादी पार्टी का मुखपत्र, वियेना में १८८९ से प्रकाशित होता रहा।

«*Sächsische Arbeiter-Zeitung*» ('सैक्सनी मज़दूरों का अख़बार')– जर्मन सामाजिक-जनवादी दैनिक समाचारपत्र, ड्रेसडेन में १८९० से १९०८ तक प्रकाशित होता रहा; आरम्भ में वह "तरुण" नामक विपक्षी अर्द्ध अराजकतावादी समूह का मुखपत्र था।

«*Züricher Post*»–ज़ूरिच में १८७९ और १९३६ के बीच प्रकाशित होनेवाला जनवादी अख़बार।–पृ० ४२

ओर है, जिसे १७५५ में गुमनाम तौर पर छापा गया था। अपनी इस पुस्तक में कांट ने विश्वोत्पत्ति के अपने प्रमेय को प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार सौरमण्डल नीहारिका पुंज से उत्पन्न हुआ। लाप्लास ने सौरमण्डल की रचना के बारे में अपने प्रमेय को सबसे पहले अपनी कृति «*Exposition du systême du monde*» ('विश्व की व्याख्या') के अंतिम अध्याय में प्रतिपादित किया। यह कृति पेरिस में १७९६ में दो खंडों में प्रकाशित हुई थी। – पृ० ५१

[34] **विश्वकोशवादी** – १८ वीं सदी के दार्शनिकों, प्रकृतिविदों, पत्रकारों की एक टोली, जो 'विज्ञान, कला तथा शिल्प का विश्वकोश' (१७५१–१७८०) प्रकाशित करने के लिए एकजुट हुए। 'विश्वकोश' के प्रकाशन में दिदेरो, दलांबेर, वोल्तेयर, गोल्बख़, रूसो, आदि ने भाग लिया। उन्होंने सामन्ती प्रथा, चर्च की स्वच्छंदता का विरोध और समाज की तीसरी श्रेणी का समर्थन किया। दर्शन में वे भौतिकवादी थे। विश्वकोशवादियों ने १८ वीं सदी की पूंजीवादी क्रांति की तैयारियों में निर्णायक भूमिका अदा की। – पृ० ५१

[35] यहां इशारा आइज़क न्यूटन द्वारा अपनी कृति 'प्राकृतिक दर्शन के गणितीय सिद्धान्त' (तीसरी पुस्तक, सामान्य उपपत्ति) में प्रतिपादित विचार की ओर है। अपने 'दार्शनिक विज्ञानों के विश्वकोश', अनुच्छेद ९८, परिशिष्ट १, में इस विचार को उद्धृत करते हुए हेगेल ने लिखा: "न्यूटन ने... भौतिकी को सीधे-सीधे चेतावनी दी थी कि वह अधिभूतवाद के गर्त्त में न ढुलके..." – पृ० ५२

[36] **एम्फ़िआक्सस** – एक छोटा-सा मीनाकार जीव, जो अकशेरुकी तथा कशेरुकी प्राणियों के बीच का एक मध्यवर्ती रूप है; समुद्र में पाया जाता है।

लेपिडोसिरेन – फुप्फुस मीन अथवा द्विश्वासी की एक उपजाति। इन जीवों में फुप्फुस और गलफड़ा दोनों ही होते हैं। ये दक्षिण अमरीका में पाये जाते हैं। – पृ० ५५

[37] **सेराटोड्स** – आस्ट्रेलिया में पाया जानेवाला एक द्विश्वासी मीन।

आर्कोओप्टेरिक्स – जीवाश्म कशेरुकी। पक्षीवर्ग का सबसे पुराना प्रतिनिधि, जिसमें सरीसृप के गुण भी थे। – पृ० ५५

[38] यहां इशारा के० एफ़० वोल्फ़ की थीसिस 'उद्गम का सिद्धान्त (K.F. Wolff, «*Theoria generationis*») की ओर है, जो १७५९ में प्रकाशित हुई थी। – पृ० ५५

[27] **'प्रकृति की द्वन्द्वात्मक गति'**—फ़्रेडरिक एंगेल्स की एक मुख्य कृति, जिसमें १९ वीं शताब्दी के मध्य तक हुई प्रकृति विज्ञान की सबसे महत्त्वपूर्ण खोजों का द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी विश्लेषण किया गया है। उसमें भौतिकवादी द्वन्द्ववाद का विशदीकरण किया गया है तथा प्रकृति विज्ञान में अधिभूतवादी तथा भाववादी अवधारणाओं का आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया है।

सामग्री के तृतीय भाग की विषय-सूची में एंगेल्स इस भूमिका को 'पुरानी भूमिका' कहते हैं। शायद इस 'भूमिका' का प्रथम भाग १८७५ में तथा दूसरा भाग १८७६ के उत्तरार्द्ध में लिखा गया था।—पृ० ४५

[28] यहां इशारा जर्मनी में १५२४ से १५२५ तक के महान किसान युद्ध की ओर है।—पृ० ४५

[29] **अवगी की घुड़सालें**—यूनानी पुराण कथा के अनुसार एलिस के राजा अवगी की जो बड़ी-बड़ी घुड़सालें सालों से गंदी पड़ी थीं, उन्हें हरकुलीज़ ने एक दिन में साफ़ कर डाला। अतः "अवगी की घुड़सालें" कूड़ा-करकट के ढेर या घोर आलस्य और अव्यवस्था का व्यंजक पद बन गया।—पृ० ४७

[30] एंगेल्स का इशारा लूथर के विजयगान «Ein feste Burg ist unser Gott» ('ईश्वर ही हमारा सच्चा आश्रयदाता है') की ओर है। हेनरिक हाइने ने अपनी रचना 'जर्मनी में धर्म तथा दर्शन के इतिहास के बारे में' के दूसरे खंड में इस गीत के बारे में लिखा कि वह "धर्म-सुधार आंदोलन का 'मार्सेइयेज़' (फ़्रांसीसी राष्ट्रगीत) है"।—पृ० ४७

[31] कोपेर्निक को अपनी पुस्तक 'खगोलीय पिंडों का घूर्णन', जिसमें उन्होंने विश्व के सूर्यकेन्द्रीय सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, अपनी मृत्यु के ही दिन (२४ मई १५४३ को) तैयार होकर मिली।—पृ० ४७

[32] १८ वीं शताब्दी में रसायन-विज्ञान में प्रचलित धारणाओं के अनुसार फ़्लोजिस्टन दाह्य पदार्थों का ज्वलन-तत्त्व था, जो दहन के समय निर्मुक्त हो जाता था। विख्यात फ़्रांसीसी रसायन-विज्ञानी लावोइज़िए ने दहन प्रक्रिया की सही व्याख्या करके और यह दिखाकर कि वह दाह्य पदार्थों का आक्सीजन के साथ रासायनिक संयोजन है, इस सिद्धांत का खंडन किया।—पृ० ४९

[33] यहां इशारा कांट की कृति «*Allgemeine Naturgeschichte und Theorie des Himmels*» ('प्रकृति-विज्ञान का सामान्य इतिहास तथा आकाशीय सिद्धान्त') की

तथा S. Carnot, «*Réflexions sur la puissance motrice du fue et sur les machines propres à développer cette puissance*» ('ताप की उत्प्रेरक शक्ति तथा इस शक्ति का विकास करनेवाली मशीनों के बारे में विचार'), Paris, 1824. एंगेल्स आगे कार्नो की पुस्तक के पृ० ७३–७९ पर दी गयी टिप्पणियों में फलन C की ओर भी इशारा करते हैं।–पृ० ७५

[46] इस लेख के बारे में मूल योजना यह थी कि वह एक वृहत्तर ग्रंथ (जिसका शीर्षक होता: 'दासता के तीन मुख्य रूप') की भूमिका हो। परंतु यह योजना पूरी न हो सकी और अंत में एंगेल्स ने प्रस्तावित ग्रंथ की भूमिका को शीर्षक दिया: 'वानर के नर बनने की प्रक्रिया में श्रम की भूमिका'। इस लेख में एंगेल्स ने मानव के शारीरिक रूप की रचना तथा मानव समाज के सृजन में श्रम की तथा औज़ारों के उत्पादन की महत्त्वपूर्ण भूमिका का विश्लेषण किया है। उन्होंने दिखाया है कि किस प्रकार एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया के फलस्वरूप वानर का एक नये, गुणात्मक रूप से भिन्न जीव–मानव–में रूपांतरण हुआ। बहुत सम्भव है, यह लेख जून १८७६ में लिखा गया था।–पृ० ७७

[47] देखिये चार्ल्स डार्विन, «*The Descent of Man and Selection in Relation to Sex*» ('मनुष्य का उद्भव तथा सेक्स के सम्बन्ध में प्रवरण'), लंदन, १८७१।–पृ० ७७

[48] यहां इशारा १८७३ के विश्व आर्थिक संकट की ओर है। जर्मनी में यह संकट मई १८७३ में "भयंकर गिरावट" के साथ शुरू हुआ, जो वस्तुतः एक लंबे अरसे तक–आठवें दशक के अंत तक–चलनेवाले संकट की भूमिका था।–पृ० ९१

[49] «*Rheinische Zeitung für Politik, Handel und Gewerbe*» ('राजनीति, व्यापार तथा उद्योग के प्रश्नों के बारे में राइनी समाचारपत्र')–एक दैनिक समाचारपत्र, जो कोलोन से १ जनवरी १८४२ से ३१ मार्च १८४३ तक निकलता रहा। अप्रैल १८४२ के बाद से मार्क्स ने इस पत्र के लिए लेख लिखे और उसी वर्ष अक्तूबर में उसके सम्पादकों में शामिल हो गये। एंगेल्स भी इसके लिए लिखते थे।–पृ० ९२

[50] «*Kölnische Zeitung*» ('कोलोन का समाचारपत्र')–जर्मन दैनिक समाचारपत्र, जो १८०२ में कोलोन नगर से निकलना शुरू हुआ। १८४८–

[39] १८५६ में चार्ल्स डार्विन की पुस्तक «*The Origin of Species*» ('जातियों की उत्पत्ति') प्रकाशित हुई थी।–पृ० ५६

[40] **प्रोटिस्टा** – हेकेल के वर्गीकरण के अनुसार यह प्रोटोज़ोआ (एक कोशिक अथवा अकोशिक जीव) का बड़ा समूह है, जो जैव प्रकृति का तीसरा जगत है, जबकि पहले दो जगत – पशु जगत तथा वनस्पति जगत – बहुकोशिक जीवों के हैं।–पृ० ५६

[41] Eozoon canadense – कनाडा में पाये गये जीवाश्म, जिनके बारे में समझा जाता था कि वे अत्यंत पुरातन जीवों के अवशेष हैं। परन्तु १८७८ में जर्मन प्राणि-विज्ञानी कार्ल मोबियस ने जैव उद्गम के विषय में उनके इस प्रमेय को खंडित कर दिया।–पृ० ५८

[42] «*Vorwärts*» ('आगे बढ़ो') – जर्मनी की समाजवादी मज़दूर पार्टी का मुखपत्र, लाइपज़िग में १ अक्तूबर १८७६ से २७ अक्तूबर १८७८ तक प्रकाशित होता रहा। एंगेल्स की 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन' शीर्षक कृति ३ जनवरी १८७७ और ७ जुलाई १८७८ के बीच प्रकाशित होती रही।–पृ० ६६

[43] यहां इशारा छठी विश्व औद्योगिक प्रदर्शनी की ओर है, जिसका अमरीकी नगर फ़िलाडेलफ़िया में १० मई १८७६ को उद्घाटन हुआ। उसमें जर्मनी समेत ४० देशों ने भाग लिया था। प्रदर्शनी में यह चीज़ साबित हो गयी कि जर्मन उद्योग पिछड़ा हुआ था तथा उसका सूत्र था "सस्ता मगर ख़राब" माल।–पृ० ६७

[44] यहां इशारा सितम्बर १८७७ में जर्मन प्रकृति-विज्ञानियों तथा चिकित्सकों की कांग्रेस में नेगेली तथा विर्ख़ोव के भाषणों की ओर और विर्ख़ोव की «*Die Freiheit der Wissenschaft im modernen Staat*», Berlin, S. 13, 1877 ('आधुनिक राज्य में विज्ञान की स्वतंत्रता') शीर्षक पुस्तक में प्रस्तुत प्रस्थापनाओं की ओर है। कांग्रेस-सम्बन्धी सामग्री «*Tageblatt der 50. Versammlung deutscher Naturforscher und Aerzte im München 1877*» (१८७७ में म्यूनिख में जर्मन प्रकृति-विज्ञानियों तथा चिकित्सकों की ५० वीं कांग्रेस का बुलेटिन) में प्रकाशित हुई थी।–पृ० ६८

[45] यहां इशारा इन पुस्तकों की ओर है – J.B.J. Fourier, «*Théorie analytique de la chaleur*» ('ताप का विश्लेषणात्मक सिद्धान्त'), Paris, 1822,

[54] «*Deutsche-Brüsseler-Zeitung*» ('ब्रसेल्स का जर्मन अख़बार') – इस अख़बार को ब्रसेल्स में जर्मन राजनीतिक उत्प्रवासियों ने निकाला था। यह जनवरी १८४७ से फ़रवरी १८४८ तक प्रकाशित होता रहा। सितंबर १८४७ से मार्क्स और एंगेल्स उसमें बराबर लिखते रहे और उन्होंने इसकी संपादकीय नीति को प्रबल रूप से प्रभावित किया। उनके निर्देशन में यह कम्युनिस्ट लीग का मुखपत्र बन गया। – पृ० ९४

[55] यहां इशारा पेरिस के मज़दूरों के २३–२६ जून १८४८ के वीरत्वपूर्ण विद्रोह की ओर है, जिसका फ़्रांसीसी पूंजीपति वर्ग ने घोर पाशविकता के साथ दमन किया। यह विद्रोह सर्वहारा तथा पूंजीपति वर्ग के बीच पहला महान गृहयुद्ध था। – पृ० ९५

[56] «*Kreuz-Zeitung*» ('सलीब का अख़बार') – जर्मन दैनिक, «*Neue Preußische Zeitung*» ('नया प्रशियाई अख़बार') का तिरस्कारसूचक नाम, जो इसे इसलिए दिया गया कि उसके शीर्ष पर सलीब का निशान छपा करता था। यह अख़बार, जो बर्लिन में जून १८४८ से १९३९ तक प्रकाशित होता रहा, प्रतिक्रांतिकारी दरबारी गुट और प्रशियाई जमींदारों का मुखपत्र था। – पृ० ९५

[57] यहां इशारा २८ मार्च १८४९ को फ़्रैंकफ़ुर्ट संविधान सभा द्वारा अनुमोदित परन्तु कई जर्मन राज्यों द्वारा अस्वीकृत शाही संविधान के पक्ष में **३ से ८ मई तक ड्रेसडेन** तथा **दक्षिणी तथा पश्चिमी जर्मनी में** मई – जुलाई १८४९ को हुए सशस्त्र विद्रोहों की ओर है। ये विद्रोह स्वतःस्फूर्त थे तथा एक दूसरे से जुड़े हुए नहीं थे। फलस्वरूप मध्य जुलाई १८४९ तक उन्हें कुचल दिया गया। – पृ० ९६

[58] **१३ जून १८४९** को निम्नपूंजीपतियों के पर्वत दल ने क्रान्ति को कुचलने के लिए फ़्रांसीसी सैनिकों को इटली भेजे जाने के विरुद्ध शान्तिपूर्ण प्रदर्शन किया। प्रदर्शन सेना की सहायता से कुचल दिया गया। पर्वत दल के बहुत-से नेता गिरफ़्तार कर लिये गये तथा उन्हें या तो फ़्रांस से निर्वासित कर दिया गया अथवा देश छोड़ने के लिए विवश किया गया। – पृ० ९६

[59] «*Neue Rheinische Zeitung. Politisch-ökonomische Revue*» ('नया राइनी समाचारपत्र। राजनीतिक-आर्थिक समीक्षा') – मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा स्थापित

१८४६ की क्रान्ति में, तत्पश्चात् प्रतिक्रिया के काल में इस पत्र ने प्रशा के उदारतावादी पूंजीपति वर्ग की कायरतापूर्ण तथा विश्वासघातपूर्ण नीति को प्रतिबिंबित किया। १६ वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में वह राष्ट्रीय-उदारतावादी पार्टी के साथ था। – पृ० ६२

[51] *«Deutsch-Französische Jahrbücher»* ('जर्मन-फ़्रांसीसी वार्षिकी') – जर्मन भाषा में पेरिस से प्रकाशित पत्रिका ; इसके सम्पादक कार्ल मार्क्स तथा आर्नोल्ड रूगे थे। इस पत्रिका का केवल एक अंक – दोहरा अंक – फ़रवरी १८४४ में निकला था। इसमें मार्क्स की 'यहूदी प्रश्न के सम्बन्ध में', 'क़ानून के बारे में हेगेल के दर्शन की समीक्षा। भूमिका' रचनाएं तथा एंगेल्स की 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा की एक रूपरेखा' और 'इंगलैंड की स्थिति। टामस कार्लायल, "अतीत तथा वर्तमान"' छपी थीं। ये रचनाएं मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा भौतिकवाद तथा कम्युनिज़्म का दृष्टिकोण अंतिम रूप से ग्रहण किये जाने की परिचायक हैं। पत्रिका का प्रकाशन बंद होने का मुख्य कारण मार्क्स तथा पूंजीवादी उग्रवादी रूगे के बीच मतभेद था। – पृ० ६३

[52] प्रशा की सरकार के दबाव में आकर फ़्रांसीसी सरकार ने मार्क्स को फ़्रांस से निर्वासित करने का आदेश १६ जनवरी १८४५ को जारी किया था। – पृ० ६३

[53] **जर्मन मज़दूर समाज** – मार्क्स और एंगेल्स ने अगस्त १८४७ के अंत में ब्रसेल्स में इस समाज की स्थापना की ताकि बेलजियम में रहनेवाले जर्मन मज़दूरों की राजनीतिक चेतना का विकास किया जा सके और उनके बीच वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के विचारों को फैलाया जा सके। मार्क्स तथा एंगेल्स और उनके सहयोगियों द्वारा निर्देशित यह समाज बेलजियम में क्रांतिकारी जर्मन मज़दूरों को एकजुट करनेवाला एक क़ानूनी केंद्र बन गया। समाज के प्रमुख सदस्य कम्युनिस्ट लीग की ब्रसेल्स शाखा के भी सदस्य थे। फ़्रांस में फ़रवरी १८४८ की पूंजीवादी क्रांति के थोड़े दिनों के बाद ही बेलजियम की पुलिस द्वारा जर्मन मज़दूर समाज के सदस्यों की गिरफ़्तारियों तथा देशनिकाले के कारण ब्रसेल्स में जर्मन मज़दूर समाज की गतिविधियां ख़त्म हो गयीं। – पृ० ६३

[66] ४ सितंबर १८७० को फ़्रांस और प्रशा के बीच युद्ध के समय जन-क्रांतिकारी विद्रोह के फलस्वरूप द्वितीय साम्राज्य का तख़्ता उलट दिया गया, जनतंत्र की घोषणा की गयी और एक अस्थायी सरकार स्थापित की गयी, जिसमें नरम जनतंत्रवादी और राजतंत्रवादी, दोनों ही शामिल थे। यह सरकार, जिसका अध्यक्ष पेरिस का गवर्नर-जनरल त्रोशू था और जिसका प्रेरक वास्तव में थियेर था, राष्ट्रीय हितों के प्रति विश्वासघात करने और शत्रु के साथ विश्वासघातपूर्ण समझौते करने पर तुली हुई थी। – पृ० ९७

[67] यह गश्ती चिट्ठी १७–१८ सितंबर १८७९ को अगस्त बेबेल के नाम भेजी गयी थी। परन्तु वह एक पार्टी दस्तावेज़ थी तथा जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी के सारे नेताओं के लिए लिखी गयी थी। वर्तमान खंड में उसका तीसरा भाग है, जो पार्टी के दक्षिण पार्श्व के नेताओं – होहबेर्ग, बर्न्सटीन और श्राम्म के घुटनाटेक रवैये पर प्रकाश डालता है। इन नेताओं ने «*Jahrbuch für Sozialwissenschaft und Sozialpolitik*» में खुलेआम अवसरवाद की हिमायत की थी।

चिट्ठी में मार्क्स तथा एंगेल्स ने इस अवसरवाद की वर्गीय, राजनीतिक तथा विचारधारात्मक जड़ों का पर्दाफ़ाश किया था और उसके प्रति सामाजिक-जनवादी नेताओं के नरम रुख़ का विरोध किया था। उन्होंने जर्मनी में समाजवाद विरोधी क़ानून के लागू होने के बाद पार्टी में अवसरवादी ढुलमुलपन की तीक्ष्ण आलोचना की थी। मार्क्स तथा एंगेल्स ने सर्वहारा पार्टी के वर्ग-स्वरूप की वक़ालत की और मांग की कि पार्टी और पार्टी के मुखपत्र को अवसरवादी तत्त्वों के प्रभाव में नहीं आना चाहिए। इस आलोचना ने जर्मन सामाजिक-जनवादी नेताओं को पार्टी में स्थिति सुधारने में मदद दी, जो समाजवाद विरोधी क़ानून के ज़माने में, जब पार्टी पर सब तरह के ज़ुल्म किये गये, अपने संगठन का पुनर्निर्माण करने तथा कार्यकलाप के वैध तथा अवैध रूपों को मिलाकर जनसाधारण के पास पहुंचने का सही रास्ता ढूंढ़ने में सक्षम रही। – पृ० १०५

[68] यहां इशारा «*Jahrbuch für Sozialwissenschaft und Sozialpolitik*» ('समाजशास्त्र तथा सामाजिक राजनीति की वार्षिकी') की ओर है। यह सामाजिक-सुधारवादी पत्रिका थी। कार्ल होहबेर्ग ने लुडविग रिख़्टेर के छद्मनाम से ज़ूरिच में १८७९–१८८१ में उसका प्रकाशन किया। उसके तीन अंक निकले थे। – पृ० १०५

कम्युनिस्ट लीग का सैद्धान्तिक मुखपत्र, जो दिसम्बर १८४६ से नवम्बर १८५० तक निकलता रहा। कुल मिलाकर इसके छः अंक निकले। – पृ० ६६

[60] कोलोन में कम्युनिस्टों पर मुक़दमा (४ अक्तूबर – १२ नवम्बर १८५२) – प्रशा की सरकार द्वारा कम्युनिस्ट लीग के ११ सदस्यों पर चलाया गया झूठा मुक़दमा। उन पर जाली दस्तावेज़ों और झूठे सबूतों के आधार पर राज्यद्रोह का अभियोग लगाया गया। ग्यारह में से सात अभियुक्तों को तीन वर्ष से लेकर ६ वर्ष तक के लिए कठोर दुर्ग-कारावास का दंड दिया गया। – पृ० ६६

[61] «*New-York Daily Tribune*» – प्रगतिशील पूंजीवादी समाचारपत्र, जो १८४१ से १९२४ तक निकलता रहा। उसके लिए मार्क्स तथा एंगेल्स ने अगस्त १८५१ से मार्च १८६२ तक लेख लिखे। – पृ० ६६

[62] **संयुक्त राज्य अमरीका में गृहयुद्ध** (१८६१–१८६५) उत्तर के औद्योगिक राज्यों तथा दक्षिण के विद्रोही दास-स्वामियों के राज्यों के बीच चला था। दास-स्वामी राज्य दास-प्रथा क़ायम रखना चाहते थे। १८६१ में उन्होंने उत्तर से सम्बन्ध-विच्छेद करने का निर्णय किया। यह युद्ध दो सामाजिक व्यवस्थाओं – दासता तथा उजरती श्रम – के बीच संघर्ष का फल था। – पृ० ६६

[63] **इतालवी युद्ध** – १८५६ में आस्ट्रिया के ख़िलाफ़ फ़्रांस और प्येमां का युद्ध, जिसे नेपोलियन तृतीय ने प्रगटतः इटली की स्वतंत्रता को निकट लाने के लिए छेड़ा। दरअसल उसने देशविजय तथा फ़्रांस में बोनापार्ती शासन को सुदृढ़ करने की आकांक्षा से प्रेरित होकर ऐसा किया। परंतु इटली में राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आंदोलन की बराबर बढ़ती हुई लहर से घबराकर उसने इटली के राजनीतिक विभाजन को बरक़रार रखने के लिए आस्ट्रिया के साथ पृथक् शांति-संधि कर ली। इस संधि के अंतर्गत सैवोय और नाइस के इलाक़े फ़्रांस में मिला दिये गये, लोम्बार्डी को सार्डीनिया के हवाले किया गया और वेनिस आस्ट्रिया के ही शासन में रहा। – पृ० ६७

[64] «*Das Volk*» ('जनता') – जर्मन भाषा का एक साप्ताहिक समाचारपत्र, जो लंदन में ७ मई से २० अगस्त १८५६ तक प्रकाशित होता रहा। इसके प्रकाशन में मार्क्स ने सीधे हिस्सा लिया था। जुलाई में वह इसके वास्तविक संपादक बन गये। – पृ० ६७

[65] **तूलरी** – पेरिस स्थित प्रासाद जो नेपोलियन तृतीय का निवासस्थान था। – पृ० ६७

अन्तिम अध्याय में वह सिद्ध करते हैं कि पूंजीवाद के मुख्य अन्तर्विरोध – उत्पादन के सामाजिक स्वरूप तथा हस्तगतकरण के पूंजीवादी स्वरूप के बीच अन्तर्विरोध – को केवल सर्वहारा क्रान्ति से ही मिटाया जा सकता है। – पृ० ११४

75 **द्विधातुवाद** – वह पद्धति जिसमें मुद्रा के काम के लिए एक साथ दो धातुओं – सोना और चांदी – का उपयोग होता है। – पृ० ११५

76 इस संस्करण में फ्रे० एंगेल्स की कृति 'मार्क' परिशिष्ट में नहीं दी गयी है। – पृ० ११६

77 यहां एंगेल्स का इशारा म० म० कोवालेव्स्की की दो कृतियों की ओर है, जिनमें एक *«Tableau des origines et de l'évolution de la famille et de la proprieté»* ('परिवार और सम्पत्ति की उत्पत्ति तथा विकास पर निबंध') स्टॉकहोम में १८६० में प्रकाशित हुई और दूसरी 'आदिम क़ानून, भाग १, गोत्र' मास्को में १८८६ में प्रकाशित हुई। – पृ० ११६

78 **नामवादी** – मध्ययुगीन दर्शन की एक धारा के प्रतिनिधि, जिसके अनुसार सामान्य अवधारणाएं विशेष वस्तुओं के नाम भर हैं। मध्ययुगीन यथार्थवादियों के विपरीत नामवादी अवधारणाओं की स्वतंत्र सत्ता को अस्वीकार करते थे; वे यह नहीं मानते थे कि बिंबों की पृथक् स्थिति है और वस्तुओं का मूल विचारों में है। मतलब यह कि उनकी नज़र में वस्तुएं प्राथमिक और अवधारणाएं द्वितीयक थीं। दूसरे शब्दों में मध्ययुग में नामवाद ही भौतिकवाद की प्रारंभिक अभिव्यक्ति था। – पृ० ११७

79 Homoiomeriae – सूक्ष्मतम तथा निश्चित गुण सम्पन्न भौतिक कण, जिनका अंतहीन विभाजन हो सकता है। अनाक्सागोरस के अनुसार ये कण ही समस्त अस्तित्व के मूलाधार हैं और उनके विविध संयोजनों से ही वस्तुओं का वैविध्य उत्पन्न होता है। – पृ० ११७

80 **निर्गुणवाद** – एक धार्मिक-दार्शनिक मत, जो ईश्वर को नैर्वैयक्तिक सत्ता और संसार का चित्स्वरूप आदिकारण मानता है, परंतु प्रकृति और मानव जीवन में ईश्वरीय हस्तक्षेप को नहीं मानता। – पृ० ११६

81 यहां आशय मई से अक्तूबर १८५१ तक लंदन में हुई पहली विश्व व्यापारिक-औद्योगिक प्रदर्शनी से है। – पृ० १२०

[69] यहां इशारा पार्टी के एक पत्र की ओर है, जिसे ज़ूरिच में चालू करने की योजना बनायी गयी थी। – पृ० १०५

[70] यहां इशारा १८ मार्च को बर्लिन में बैरीकेडों पर लड़ाई की ओर है, जो जर्मनी में १८४८–१८४९ की क्रान्ति के आरम्भ का द्योतक थी। – पृ० १०८

[71] १९वीं सदी के आठवें दशक में जर्मनी में कम्पनी प्रोमोटरों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई, इसके साथ ज़मीन और स्टॉक एक्सचेंज में शेयरों की सट्टेबाज़ी और पूंजीवादी दलालों की जालसाज़ी ज़ोरों से चल रही थी। – पृ० १०९

[72] यहां इशारा जर्मन संसद द्वारा अक्तूबर १८७८ को अनुमोदित समाजवाद विरोधी क़ानून की ओर है (देखें टिप्पणी २३)। – पृ० ११०

[73] *«Die Zukunft»* ('भविष्य') – कार्ल होहबेर्ग द्वारा बर्लिन में अक्तूबर १८७७ से नवम्बर १८७८ तक प्रकाशित सामाजिक-सुधारवादी पत्रिका। मार्क्स तथा एंगेल्स ने सामाजिक-जनवादी पार्टी को सुधारवादी रास्ते पर ले जाने की पत्रिका की कोशिशों की तीव्र भर्त्सना की।

«Die Neue Gesellschaft» ('नया समाज') – ज़ूरिच में १८७७ तथा १८८० के बीच प्रकाशित सामाजिक-सुधारवादी पत्रिका। – पृ० १११

[74] एंगेल्स की कृति **'समाजवाद: काल्पनिक तथा वैज्ञानिक'** उनके 'ड्यूहरिंग मत-खण्डन' के तीन अध्यायों का समाहार है, जिन्हें एंगेल्स ने स्पष्टतः इस उद्देश्य से दुबारा लिखा कि एक पूर्ण, अखंड विश्वदृष्टिकोण के रूप में मार्क्सवादी शिक्षा की सुबोध व्याख्या प्रस्तुत की जा सके। इसमें एंगेल्स ने मार्क्सवाद के तीन संघटक अंगों का वर्णन किया और यह दिखाया कि द्वन्द्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद का आविर्भाव किस प्रकार हुआ। उन्होंने प्रमाणित किया कि मार्क्स की दो महान खोजों – इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा का विकास तथा अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त की स्थापना – की बदौलत ही समाजवाद को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हुआ।

वैज्ञानिक समाजवाद तथा काल्पनिक समाजवाद के बीच आधारभूत अन्तर लक्षित करने और इतिहास में काल्पनिक समाजवाद की भूमिका तथा उसकी त्रुटियों पर टीका करने के बाद एंगेल्स वैज्ञानिक समाजवाद के स्रोतों पर प्रकाश डालते हैं।

था, तब उसने इस संविधान को नमूने के तौर पर इस्तेमाल किया। राष्ट्रीय कन्वेन्शन ने १७६३ के जनतंत्रीय संविधान में भूमिका के रूप में इस घोषणापत्र का समावेश किया।–पृ० १३०

[87] यहां तथा आगे '**नेपोलियन संहिता**' का उल्लेख करने में एंगेल्स का अभिप्राय पूंजीवादी क़ानून की समूची व्यवस्था से है, जैसा कि वह नेपोलियन बोनापार्त के तहत १८०४–१८१० के काल में जारी की गई पांच संहिताओं (दीवानी क़ानून, दीवानी कार्य-विधि, तिजारती, फ़ौजदारी क़ानून और फ़ौजदारी कार्य-विधि की संहितायें) के रूप में देखी जाती है। ये संहितायें नेपोलियनी फ़्रांस द्वारा अधिकृत जर्मनी के पश्चिमी तथा दक्षिण-पश्चिमी भागों में लागू की गई और जब १८१५ में राइनलैंड प्रशा के हवाले कर दिया गया उसके बाद भी ये संहितायें वहां जारी रहीं।–पृ० १३०

[88] इशारा इंगलैंड में चुनाव-कानून में सुधार की ओर है। १८३१ में हाउस ऑफ़ कामन्स ने इस सुधार को स्वीकार कर लिया और अंततः जून १८३२ में हाउस ऑफ़ लार्ड्स ने उसका अनुमोदन किया। उसने संसद का द्वार औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों के लिए खोल दिया। सर्वहारा तथा निम्नपूंजीपति वर्ग, जो सुधार आंदोलन की मुख्य शक्ति थे, उदार पूंजीपति वर्ग द्वारा ठगे गये और निर्वाचन अधिकारों से वंचित ही रहे।–पृ० १३२

[89] यहां इशारा इंगलैंड की पार्लमिंट द्वारा १८४६ में अनाज क़ानून रद्द किये जाने की ओर है। कथित **अनाज क़ानून**, जिनका उद्देश्य विदेशों से अनाज के आयात को सीमित करना या रोक देना था, बड़े ज़मींदारों के हितों की हिफ़ाज़त के लिए लागू किये गये थे। क़ानून रद्द किये जाने का अर्थ यह था कि औद्योगिक पूंजीपति वर्ग ने सामन्ती अभिजात वर्ग पर विजय पाई।–पृ० १३२

[90] १८२४ में जनसाधारण के दबाव के कारण इंगलैंड की पार्लमिंट ने ट्रेड-यूनियनों पर लगे प्रतिबंध को रद्द कर दिया।–पृ० १३३

[91] **पीपुल्स चार्टर**–यह चार्टर, जिसमें चार्टिस्टों की मांगें सूत्रबद्ध थीं, ८ मई १८३८ को पार्लमिंट में पेश किये जानेवाले एक विधेयक के रूप में प्रकाशित किया गया था। उसमें ये छः धारायें थीं: सार्विक मताधिकार (२१ वर्ष से ऊपर की अवस्था के पुरुषों के लिए), पार्लमिंट के लिए वार्षिक चुनाव, गुप्त

[82] **"मुक्ति-फ़ौज"** – एक प्रतिक्रियावादी धार्मिक तथा लोकोपकारक संगठन, जिसे इंगलैंड में १८६५ में स्थापित और १८८० में सैनिक तर्ज़ पर पुनःसंगठित किया गया था (जिसके कारण उसका नाम मुक्ति-फ़ौज पड़ा)। पूंजीपति वर्ग की प्रचुर सहायता के बल पर इस संगठन ने अनेक देशों में लोकोपकारक संस्थाओं का एक जाल सा बिछा दिया, ताकि मेहनतकश जनता को शोषक विरोधी संघर्ष से विरत किया जा सके। – पृ० १२१

[83] इंगलैंड की १६८८ की क्रांति ब्रिटिश पूंजीवादी इतिहास लेखन में **"गौरवमय क्रांति"** कही गई है। १६८८ के राज्य-पर्युत्क्षेपण के फलस्वरूप स्टूअर्ट राजवंश को राजगद्दी से उतार दिया गया और ओरांवंशी विल्हेल्म को सिंहासन पर बैठाकर (१६८९) वैधानिक राजतंत्र स्थापित किया गया। यह राजतंत्र सामन्ती अभिजात वर्ग तथा बड़े पूंजीपति वर्ग के बीच समझौते का द्योतक था। – पृ० १२७

[84] **गुलाबों की लड़ाई** – इंगलैंड में राजवंशीय संघर्ष (१४५५–१४८५)। यह संघर्ष लंकास्टर तथा यार्क के सामन्ती घरानों के बीच हुआ और चूंकि इन घरानों के चिह्न लाल तथा सफ़ेद गुलाब थे, इसलिए उसे गुलाबों की लड़ाई कहा गया। यार्क घराने को देश के दक्षिणी, आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नत भाग के बड़े-बड़े ज़मींदारों का और साथ ही नाइटों और शहरी लोगों का भी समर्थन प्राप्त था; उधर लंकास्टर घराने को उत्तरी ज़िलों के सामन्ती अभिजात वर्ग का समर्थन प्राप्त था। इन लड़ाइयों का नतीजा यह हुआ कि प्राचीन सामन्ती घराने लगभग पूरी तरह मर-मिट गये और एक नये राजवंश – ट्यूडर राजवंश – का उदय हुआ, जिसने देश में निरंकुश राजतंत्र की स्थापना की। – पृ० १२८

[85] **देकार्तवाद** – १७ वीं शताब्दी के फ़्रांसीसी दार्शनिक रेने देकार्त के अनुयायियों द्वारा प्रतिपादित एक मत। इन लोगों ने देकार्त के दर्शन से भौतिकवादी निष्कर्ष निकाले। – पृ० १३०

[86] **'मनुष्य और नागरिक के अधिकारों का घोषणापत्र'** – १७८९ में फ़्रांस की संविधान सभा द्वारा स्वीकृत घोषणापत्र, जिसमें नई पूंजीवादी व्यवस्था के राजनीतिक सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया गया था और जिसे १७९१ के फ़्रांसीसी संविधान में समाविष्ट किया गया। १७९३ में जब जैकोबिन दल 'मनुष्य और नागरिक के अधिकारों का घोषणापत्र' का अपना पाठान्तर लिपिबद्ध कर रहा

[97] **द्वितीय संसदीय सुधार** – इंगलैंड में इस सुधार के लिए आंदोलन १८६७ तक चलता रहा, जब आम मज़दूर आंदोलन के दबाव के कारण उसे लागू किया गया। पहले इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल ने इस सुधार आंदोलन में सक्रिय भाग लिया था। इस सुधार के फलस्वरूप मतदाताओं की संख्या दुगुनी हो गयी और कुशल मज़दूरों के एक भाग को मताधिकार प्राप्त हुआ। – पृ० १३६

[98] Katheder-Socialism (काथेडर या प्रोफ़ेसरी समाजवाद) – उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में पूंजीवादी विचारधारा की एक प्रवृत्ति, जिसके प्रतिनिधि, अधिकांशतः जर्मन युनिवर्सिटियों के प्रोफ़ेसर, अपने मंचों (Katheder) से समाजवाद के वेश में पूंजीवादी सुधारवाद का प्रचार किया करते थे। "काथेडर समाजवाद" के प्रतिनिधियों ए० वागनेर, जी० श्मोलर, एल० ब्रेन्तानो, डब्ल्यू० ज़ोम्बार्त, आदि का दावा था कि राज्य एक वर्गोपरि संस्था है, जो विरोधी वर्गों को संयोजित कर सकती है और पूंजीपतियों के स्वार्थों पर आघात किये बिना धीरे-धीरे समाजवाद की स्थापना कर सकती है। इन लोगों की मांगें बीमारी और दुर्घटना के बीमे की व्यवस्था लागू करने और फ़ैक्टरी क़ानून पास करने तक सीमित थीं। काथेडर-समाजवादियों की राय थी कि सुसंगठित ट्रेड-यूनियन होने पर मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष और उसकी राजनीतिक पार्टी की कोई ज़रूरत नहीं रहती। यह प्रवृत्ति विचारधारा के क्षेत्र में संशोधनवाद की पूर्वगामी थी। – पृ० १३७

[99] **रिचुअलिज़्म** – आंग्ल चर्च में एक प्रवृत्ति, जो सबसे पहले १९ वीं शताब्दी के चौथे दशक में उभरी। उसके अनुयाइयों ने आंग्ल चर्च में कैथोलिक कर्मकांड तथा कतिपय कैथोलिक जड़सूत्रों को पुनःस्थापित करने के लिए आंदोलन किया। – पृ० १३७

[100] उन्नत पूंजीवादी देशों में सर्वहारा क्रान्तियों की एक साथ विजय की सम्भावना और फलस्वरूप अकेले एक देश में सर्वहारा क्रान्ति की विजय की असम्भवता के बारे में यह निष्कर्ष इजारेदार पूंजीवाद से पहले की अवधि के लिए वैध था। इजारेदार पूंजीवाद की नयी ऐतिहासिक अवस्थाओं में लेनिन ने अपने पहले ही निरूपित इस आशय के नियम के आधार पर कि साम्राज्यवाद के युग में पूंजीवाद का आर्थिक तथा राजनीतिक विकास असमतल होता है, एक नया

मतदान, समान निर्वाचन-क्षेत्र, पार्लमेंट के चुनाव में खड़े होनेवाले उम्मीदवारों के लिए संपत्ति की शर्त का अंत और पार्लमेंट के मेम्बरों के लिए तनख़ाहें। चार्टिस्टों ने पार्लमेंट को इस आशय की तीन अर्ज़ियां दीं, परंतु उन्हें १८३९, १८४२ तथा १८४९ में ठुकरा दिया गया।—पृ० १३३

[92] **अनाज क़ानून विरोधी लीग**—१८३८ में मैंचेस्टर के कारख़ानेदारों काबडेन और ब्राइट द्वारा स्थापित अंग्रेज औद्योगिक पूंजीपतियों का एक संगठन। लीग ने मुक्त व्यापार की मांग को पेश करते हुए मज़दूरों की तनख़्वाहें घटाने और सामंती अभिजात वर्ग की आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को कमज़ोर करने की गरज़ से अनाज क़ानून के उन्मूलन के लिए संघर्ष किया। अनाज क़ानूनों के रद्द किये जाने के बाद (१८४६) लीग भी ख़त्म हो गयी।—पृ० १३३

[93] १० अप्रैल १८४८ को लन्दन में चार्टिस्टों ने एक जन-प्रदर्शन आयोजित किया। इसका उद्देश्य पार्लमेंट को यह अनुरोध-पत्र सौंपना था कि वह जन-चार्टर स्वीकार करे। परन्तु प्रदर्शन का आयोजन करनेवालों के ढुलमुलपन और अनिर्णीतावस्था के कारण वह टांय-टांय फ़िस हो गया। प्रतिक्रियावादियों ने मज़दूरों पर प्रहार करने और चार्टिस्टों का दमन करने के लिए प्रदर्शन की विफलता का लाभ उठाया।—पृ० १३३

[94] फ़्रांस में २ दिसंबर १८५१ को लूई बोनापार्त तथा उसके अनुयायियों ने प्रतिक्रांतिकारी राज्य-पर्युत्क्षेपण कर सत्ता पर क़ब्ज़ा कर लिया। यह दूसरे साम्राज्य के आरम्भ का द्योतक था।—पृ० १३३

[95] **भाई जोनाथन**—इंगलैंड के अमरीकी उपनिवेशों के स्वातन्त्र्य-युद्ध (१७७५—१७८३) के दौरान अंग्रेज़ों ने उत्तर अमरीकियों को मज़ाक़ में "भाई जोनाथन" कहना शुरू किया।

रिवाइवलिज़्म—प्रोटेस्टेंट मतावलंबियों का एक आंदोलन, जो १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इंगलैंड में शुरू हुआ और फिर उत्तरी अमरीका में फैल गया। रिवाइवलिज़्म के अनुयाई धार्मिक व्याख्यानों द्वारा और धर्मानुयायियों के नये समुदाय संगठित कर ईसाई धर्म के प्रभाव को दृढ़ तथा व्यापक बनाना चाहते थे।—पृ० १३३

[96] फ़्रांस में नेपोलियन तृतीय का **द्वितीय साम्राज्य** १८५२ से १८७० तक और **तीसरा जनतंत्र** १८७० से १९४० तक रहे।—पृ० १३४

[107] **न्यू-लेनार्क** (New Lanark) – स्काटलैंड के लेनार्क नामक नगर के निकट एक सूती कताई मिल, जिसे एक छोटी-सी बस्ती के साथ १७८४ में खड़ा किया गया था। – पृ० १४६

[108] **शतवासर** – ऐल्बा द्वीप में निर्वासन से २० मार्च १८१५ को पेरिस लौटने के दिन से लेकर उसी वर्ष २२ जून को दूसरी बार राज्यत्याग तक की संक्षिप्त अवधि, जब नेपोलियन का साम्राज्य अस्थायी रूप से पुनःस्थापित हुआ था। – पृ० १४६

[109] **वाटरलू** – ब्रसेल्स के निकट एक स्थान, जहां १८ जून १८१५ को नेपोलियन वेलिंगटन की कमान में आंग्ल-डच सेनाओं तथा ब्लूहर की कमान में प्रशियाई सेना द्वारा पराजित हुआ। – पृ० १४६

[110] लंदन में अक्तूबर १८३३ में रॉबर्ट ओवेन की अध्यक्षता में सहकारी समितियों तथा ट्रेड-यूनियनों की एक कांग्रेस हुई, जिसमें औपचारिक रूप से **ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड का विशाल राष्ट्रीय संयोजित ट्रेड-यूनियन संघ** स्थापित किया गया। पूंजीवादी राज्य तथा समाज के प्रबल विरोध के कारण अगस्त १८३४ में यह संघ भंग हो गया। – पृ० १५५

[111] १८४८–१८४६ की क्रांति के दौरान प्रूदों ने एक विनिमय बैंक स्थापित करने की कोशिश की। यह बैंक, Banque du peuple (जनता का बैंक), ३१ जनवरी १८४६ को पेरिस में स्थापित हुआ और क़रीब दो महीने चला। १८४६ के अप्रैल माह के आरम्भ में वह बन्द हो गया। चालू होने से पहले ही उसकी असफलता निश्चित हो चुकी थी। – पृ० १५५

[112] यहां इशारा तीसरी शताब्दी ई० पू० से लेकर ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी तक के काल की ओर है, जो इतिहास में मिस्र के शहर सिकंदरिया, जो उस समय अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का एक बड़ा केन्द्र था, के नाम पर सिकंदरियाई काल कहलाया। इस काल में गणित और यांत्रिकी (यूक्लिड और आर्कीमीडीस), भूगोल-विज्ञान, खगोलशास्त्र, शरीररचना-विज्ञान और शरीरक्रिया-विज्ञान जैसे कितने ही विज्ञानों के क्षेत्र में द्रुत प्रगति हुई। – पृ० १५८

[113] **महान भौगोलिक खोजें** – १५–१६ सदियों में क्यूबा, हैटी, बहाम द्वीप समूह, उत्तर अमरीका, दक्षिण अफ़्रीका से होते हुए भारत तक के समुद्री मार्ग और दक्षिण अमरीका की खोज, जिनके फलस्वरूप समुद्री व्यापार द्रुत गति से विकसित होने लगा और उपनिवेशों से यूरोप में विशाल सम्पदा आने लगी। – पृ० १७३

निष्कर्ष निकाला, अर्थात् यह कि समाजवादी क्रान्ति पहले या तो कई देशों में, यही नहीं एक देश तक में विजयी हो सकती है तथा तमाम देशों में या अधिकांश देशों में समाजवादी क्रान्तियों की एक साथ विजय असम्भव है। यह निष्कर्ष लेनिन ने पहले-पहल 'यूरोप के संयुक्त राज्य का नारा' शीर्षक अपने लेख में निरूपित किया था।—पृ० १३६

[101] **अनैबैप्टिस्ट** — एक ईसाई सम्प्रदाय के सदस्य, जिनका मत था कि बपतिस्मा वयस्कों को ही दी जा सकती है, इसलिये जिन लोगों को बपतिस्मा शैशवकाल में दी गयी है उनको दोबारा बपतिस्मा दी जानी चाहिये।—पृ० १४३

[102] यहां एंगेल्स का इशारा "**सच्चे लेवेलर्सों**" (समताकारियों) अथवा "**डीगरों**" (खननकारियों) की ओर है, जो १७ वीं शताब्दी में अंग्रेज़ी पूंजीवादी क्रांति के काल में उग्र वामपंथी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे। ये लोग शहर तथा गांव की जनता के ग़रीब तबक़ों के हितों को व्यक्त करते थे। उन्होंने भूमि के निजी स्वामित्व के उन्मूलन की मांग की और आदिम समतामूलक कम्युनिज़्म के विचारों का प्रचार किया तथा सामुदायिक ज़मीनों पर सामूहिक खेती के द्वारा उन्हें कार्यान्वित करने की कोशिश की।—पृ० १४३

[103] यहां एंगेल्स का इशारा काल्पनिक कम्युनिज़्म के प्रमुख प्रतिनिधियों की रचनाओं की ओर है; ये हैं टामस मोर की रचना 'यूटोपिया' और टोमासो कैम्पानेला की 'सूर्यलोक'।—पृ० १४३

[104] **आतंक राज्य** — जून १७६३ से जुलाई १७६४ तक जैक्रोबिनों के क्रान्तिकारी-जनवादी अधिनायकत्व की अवधि।—पृ० १४५

[105] **डाइरेक्टरेट** — १७६५–१७६६ में फ़्रांस का कार्यकारी निकाय। इसमें पांच निर्देशक (डाइरेक्टर) होते थे, जिनमें से एक का प्रति वर्ष पुनर्निर्वाचन होता था। यह संस्था जनवादी आंदोलन का विरोध करती थी, उसके ख़िलाफ़ आतंक और डंडाराज का समर्थन करती थी तथा बड़े पूंजीपति वर्ग के हितों की हिमायत करती थी।—पृ० १४५

[106] यहां इशारा १८ वीं शताब्दी की फ़्रांसीसी पूंजीवादी क्रांति के नारे, "स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व" की ओर है।—पृ० १४५

[117] H.S. Maine, «*Village-Communities in the East and West*», London, 1871 (एच० एस० मेन, 'पूर्व तथा पश्चिम में ग्राम-समुदाय', लन्दन, १८७१)। —पृ० १६३

[118] सामनाइटों ने, मध्य अपेनाइन्स के पर्वतीय क्षेत्र में रहनेवाले क़बीलों ने, प्राचीन रोमन कावडिन नगर के पास **कावडिन घाटी** में रोमन लश्करों को परास्त किया था (३२१ ई० पू०) तथा उन्हें जूए के नीचे रखकर ले गये, जो किसी भी परास्त सेना के लिए सबसे बड़ा अपमान माना जाता था। यही "कावडिन घाटी से गुज़रना" उक्ति का स्रोत है। —पृ० १६५

[119] **वोलोस्त** — क्रान्तिपूर्व रूस में सबसे छोटी प्रशासनिक तथा क्षेत्रीय इकाई। —पृ० १६६

[120] **डिक्युरिअन** — रोमन साम्राज्य में रोम प्रांतों के दास-स्वामियों का विशेषाधिकारप्राप्त तबक़ा। —पृ० १६६

[121] «*Vorwärts!*» ('आगे बढ़ो!') — जनवरी से दिसम्बर १८४४ तक पेरिस में सप्ताह में दो बार प्रकाशित होनेवाला जर्मन अख़बार। उसके लिए मार्क्स तथा एंगेल्स भी लिखा करते थे। —पृ० २०३

[122] यह लेख मार्क्स की पहली पुण्य-तिथि के अवसर पर लिखा गया था। एंगेल्स इसमें १८४८–१८४६ की पूंजीवादी-जनवादी क्रान्ति की अवधि की सर्वहारा क्रान्तिकारी कार्यनीति के विशिष्ट लक्षणों का वर्णन करते हैं। वह जनसाधारण के क्रान्तिकारी संघर्ष के ऐतिहासिक महत्त्व तथा उनके कार्यकलाप के सही कार्यनीतिक निदेशन के महत्त्व पर प्रकाश डालते हैं। वह इस बात पर ज़ोर डालते हैं कि आम जनवादी कार्यभारों तथा सर्वहारा कार्यभारों को कुशलतापूर्वक मिलाना चाहिए। एंगेल्स १८४८–१८४६ में मार्क्स की कार्यनीति को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं तथा उन्होंने जर्मन सामाजिक-जनवादियों को आम जनवादी आन्दोलन में मजदूर वर्ग की अग्रणी भूमिका के लिए संघर्ष करना, सर्वहारा के वर्ग हितों की रक्षा करना, निम्न-पूंजीवादी भ्रमों के जाल में न फंसना, झूठे वचन देकर सर्वहारा की आंखों में धूल झोंकने के सत्ताधारी वर्गों के प्रयत्नों का पर्दाफ़ाश करना सिखाया। —पृ० २०५

[123] यहां इशारा फ़्रांस में २४ फ़रवरी १८४८ की क्रांति की ओर है। —पृ० २०५

[124] यहां इशारा मार्च १८४८ की क्रान्ति के बाद सत्तारूढ़ होनेवाली प्रशियाई सरकार के मंत्रियों हान्सेमान, काम्पहाउज़ेन तथा नरमपंथी पूंजीपति वर्ग के अन्य नेताओं

[114] Seehandlung (समुद्री व्यापार) – १७७२ में प्रशा में स्थापित एक वाणिज्यिक तथा उधार सोसायटी। उसे सरकार से महत्त्वपूर्ण विशेषाधिकार प्राप्त थे तथा वह प्रशा सरकार को कर्ज़े की बड़ी-बड़ी रक़में दिया करती थी। – पृ० १८०

[115] यह चिट्ठी वेरा ज़सूलिच की १६ फ़रवरी १८८१ की चिट्ठी का मार्क्स द्वारा दिये गये उत्तर का पहला मसौदा है। ज़सूलिच ने मार्क्स को रूस में पूंजीवाद के भविष्य के बारे में रूसी समाजवादियों के बीच विवाद में 'पूंजी' द्वारा अदा की गयी भूमिका के विषय में लिखा था। उन्होंने अपने साथियों – रूसी "क्रान्तिकारी समाजवादियों" – की ओर से मार्क्स को लिखा कि वह इस प्रश्न पर, विशेष रूप से ग्रामीण समुदाय के प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करें। पीटर्सबर्ग से "नरोद्नाया वोल्या" की कार्यकारिणी समिति ने भी मार्क्स से इसी आशय का अनुरोध किया था। 'पूंजी' के तीसरे खंड पर काम करते हुए मार्क्स ने रूस में सामाजिक-आर्थिक सम्बन्धों, रूसी कृषक समुदाय के ढांचे तथा उसमें विद्यमान अवस्थाओं का अध्ययन किया। इन चिट्ठियों के मिलने के बाद मार्क्स ने और बहुत-सा अतिरिक्त कार्य किया। उन्होंने जिस सामग्री का अध्ययन किया, उससे यह निष्कर्ष निकाला कि पश्चिम यूरोप के सर्वहारा से समर्थन प्राप्त जन-क्रान्ति ही उन "घातक प्रभावों" का अन्त कर सकती है जो चारों ओर से रूसी समुदाय को घेर रहे हैं। रूसी क्रान्ति पश्चिम यूरोप के सर्वहारा की विजय के लिए अनुकूल अवस्थाएं पैदा करेगी तथा यह विजय उधर रूस को विकास की पूंजीवादी मंज़िल को लांघने में मदद देगी। मार्क्स के इस विचार का इस नरोदवादी भ्रान्ति से कोई सरोकार नहीं था कि बड़े पैमाने के उद्योग के विकास के बिना ही समुदाय के ज़रिए समाजवादी प्रणाली में छलांग लगायी जा सकती है। – पृ० १६०

[116] L.H. Morgan, «*Ancient Society or Researches in the Lines of Human Progress from Savagery, through Barbarism to Civilization*», London, 1877, p. 552 (एल० एच० मोर्गन, 'प्राचीन समाज, या वन्यावस्था से लेकर और बर्बरता से होते हुए सभ्यता तक मानव-प्रगति की धाराओं की खोज', लन्दन, १८७७, पृ० ५५२)। – पृ० १६२

[129] ये लेख «*Neue Rheinische Zeitung*» में २२ मार्च से २५ अप्रैल १८४९ तक प्रकाशित हुए। – पृ० २१३

[130] एंगेल्स ने अपना लेख 'कम्युनिस्ट लीग के इतिहास के विषय में' मार्क्स के पैंफ़्लेट 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन' के जर्मन संस्करण (१८८५) की भूमिका के रूप में लिखा था। जिस काल में असाधारण क़ानून लागू था, उसमें जर्मनी के मज़दूर वर्ग के लिए यह ज़रूरी था कि वह १८४९–१८५२ में प्रतिक्रियावाद के हमले के दौरान प्राप्त क्रांतिकारी अनुभव से परिचित हो। इसी कारण एंगेल्स ने मार्क्स के पैंफ़्लेट को फिर से छपवाना ज़रूरी समझा।

इस लेख में एंगेल्स ने अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन में पहले अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर संगठन की, जिसने इतिहास में पहली बार वैज्ञानिक कम्युनिज़्म को इस आंदोलन का सैद्धांतिक झंडा घोषित किया, ऐतिहासिक भूमिका और स्थान को स्पष्ट किया। – पृ० २१६

[131] **बाब्योफ़वाद** – कल्पनावादी, समतावादी कम्युनिज़्म का सिद्धांत, जिसे १८वीं शताब्दी के फ़्रांसीसी क्रांतिकारी ग्राक्ख बाब्योफ़ और उनके अनुयायियों ने प्रतिपादित किया था। – पृ० २१७

[132] Société des Saisons (ऋतु-समाज) – एक जनतंत्रवादी, समाजवादी षड्यंत्रकारी संगठन, जो पेरिस में ओ० ब्लांकी तथा ए० बार्बेस के नेतृत्व में १८३७ से १८३९ तक चलता रहा।

पेरिस में **१२ मई १८३९ का विद्रोह,** जिसमें क्रांतिकारी मज़दूरों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, इस समाज द्वारा ही संगठित किया गया था। विद्रोह को जनसाधारण का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ और उसे सरकारी सेना तथा राष्ट्रीय गार्ड ने परास्त कर दिया। – पृ० २१७

[133] यहां इशारा प्रतिक्रियावाद के ख़िलाफ़ जर्मन जनवादियों के संघर्ष की एक घटना की ओर है। ३ अप्रैल १८३३ को उग्रवादियों के एक दल ने सत्ता पर अधिकार करने तथा सारे जर्मनी में जनतंत्र की घोषणा करने के प्रयत्न में फ़्रैंकफ़ुर्ट-ऑन-मेन में संघीय सभा के ख़िलाफ़ प्रदर्शन किया, जो ठीक से संगठित न होने के कारण जर्मन सेना द्वारा कुचल दिया गया। – पृ० २१८

की ओर है, जिन्होंने प्रतिक्रियावादियों के साथ समझौते की प्रपंचकारी नीति पर अमल किया था।–पृ० २१०

[125] **फ्रैंकफ़ुर्ट संसद** – जर्मन राष्ट्रीय सभा, जो मार्च क्रान्ति के बाद बुलायी गयी थी। १८ मई १८४८ को फ्रैंकफ़ुर्ट-आन-मेन में उसका अधिवेशन हुआ। उसका मुख्य कार्यभार था – जर्मनी का राजनीतिक विखण्डन ख़त्म करना तथा पूरे जर्मनी के लिए संविधान का मसौदा तैयार करना। नरमपंथी बहुसंख्या की कायरता तथा ढुलमुलपन और वामपंथ की अदृढ़ता तथा असंगतता के कारण सभा सर्वोच्च सत्ता की बागडोर अपने हाथों में नहीं ले सकी और जर्मनी में १८४८–१८४९ की क्रान्ति के मुख्य प्रश्नों पर जमकर कोई रुख़ नहीं अपना सकी। ३० मई १८४९ को सभा को स्टुटगर्ट जाना पड़ा। १८ जून १८४९ को सैनिकों ने उसे भंग कर दिया।

बर्लिन संसद "सम्राट की सहमति के साथ" एक संविधान का मसौदा तैयार करने के लिए मई १८४८ में बुलायी गयी थी। इस फ़ार्मूला को अपने कार्यकलाप के आधार के रूप में स्वीकार करके सभा ने जनता की संप्रभुता के सिद्धान्त को तिलांजलि दे दी। नवम्बर में उसे एक शाही आज्ञप्ति के ज़रिए ब्रांडेनबुर्ग स्थानान्तरित कर दिया गया। दिसम्बर १८४८ में प्रशा में बलात् सत्ता-परिवर्तन के दौरान उसे भंग कर दिया गया।–पृ० २१०

[126] बुजार की पुस्तक *«Marat, l'Ami du peuple»* ('मारात, जनता का मित्र') १८६५ में पेरिस में प्रकाशित हुई थी।

«L'Ami du peuple» – ('जनता का मित्र') – मारात द्वारा १२ सितम्बर १७८९ से १४ जुलाई १७९३ तक प्रकाशित समाचारपत्र। वह १६ सितम्बर १७८९ से २१ सितम्बर १७९२ तक इसी नाम से प्रकाशित होता रहा। उस पर यह हस्ताक्षर रहता था – Marat, l'Ami du peuple. – पृ० २१२

[127] **२४ फ़रवरी १८४८** को फ़्रांस में लूई फ़िलिप के शासन का तख़्ता उलट दिया गया। फ़रवरी क्रान्ति की विजय का समाचार सुनकर निकोलाई प्रथम ने युद्धमंत्री को रूस में आंशिक लामबन्दी करने का आदेश दिया ताकि यूरोप में क्रान्ति के विरुद्ध संघर्ष की तैयारी की जा सके।–पृ० २१३

[128] यहां इशारा मार्च १८४८ में मिलान और बर्लिन में तथा अक्तूबर १८४८ में वियेना में विद्रोहों की ओर है।–पृ० २१३

और पूंजीवादी तथा निम्न-पूंजीवादी जनवादियों की प्रगतिशील श्रेणियों के बीच से आते थे। मार्क्स और एंगेल्स ने इस समाज की स्थापना में सक्रिय भाग लिया था। १५ नवंबर १८४७ को मार्क्स इसके उपाध्यक्ष चुने गये; इसके अध्यक्ष बेलजियम के जनवादी एल० जोट्रान थे। मार्क्स के क्रियाकलाप के फलस्वरूप ब्रसेल्स जनवादी समाज अंतर्राष्ट्रीय जनवादी आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। शुरू मार्च १८४८ में मार्क्स के बेलजियम से निर्वासित होने तथा बेलजियाई अधिकारियों द्वारा समाज के सबसे क्रांतिकारी तत्त्वों का दमन किये जाने के बाद इसके क्रियाकलाप का स्वरूप अधिक सीमित, शुद्धतः स्थानीय रह गया और १८४९ में इसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया।—पृ० २२४

139 «*La Réforme*» ('सुधार')—फ़ांसीसी दैनिक, जो निम्न-पूंजीवादी जनतंत्र-वादी जनवादियों तथा निम्न-पूंजीवादी समाजवादियों का मुखपत्र था। वह पेरिस में १८४३ से १८५० तक प्रकाशित होता रहा। अक्तूबर १८४७ और जनवरी १८४८ के बीच उसमें एंगेल्स के कई लेख प्रकाशित हुए।—पृ० २२४

140 «*Der Volks-Tribun*» ('जन-प्रवक्ता')—जर्मन "सच्चे समाजवादियों" द्वारा स्थापित न्यूयार्क का एक साप्ताहिक, जो ५ जनवरी से ३१ दिसंबर १८४६ तक निकलता रहा।—पृ० २२५

141 '**जर्मनी में कम्युनिस्ट पार्टी की मांगें**'—मार्क्स और एंगेल्स द्वारा पेरिस में २१ मार्च और २९ मार्च १८४८ के बीच लिखा गया एक परचा, जो भड़क उठनेवाली जर्मन क्रांति में कम्युनिस्ट लीग का राजनीतिक कार्यक्रम था। लीग के जो सदस्य स्वदेश लौट रहे थे, उनके हाथ में यह नीति-संबंधी दस्तावेज़ सौंप दी गयी। क्रांति के दौरान मार्क्स, एंगेल्स और उनके समर्थकों ने इस दस्तावेज़ का जनता के बीच प्रचार किया।—पृ० २२९

142 यहां इशारा जर्मन मज़दूर क्लब की ओर है जो पेरिस में कम्युनिस्ट लीग की पेशक़दमी पर ८—९ मार्च १८४८ को खोला गया। इस क्लब में मार्क्स ने नेतृत्वकारी भूमिका अदा की। क्लब का उद्देश्य पेरिस में उत्प्रवासी जर्मन मज़दूरों की पांतों को एकजुट और सुदृढ़ करना और उन्हें यह समझाना था कि आसन्न पूंजीवादी-जनवादी क्रांति में सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति क्या होनी चाहिए।—पृ० २३०

[134] फ़रवरी १८३४ में इटली के पूंजीवादी-जनवादी नेता जुज़ेप्पे माज़िनी ने १८३१ में अपने द्वारा संस्थापित "तरुण इटली" नामक संस्था के तथा क्रांतिकारी उत्प्रवासियों के कई दलों के समर्थन से स्विट्ज़रलैंड से सैवोय तक एक अभियान-मार्च संगठित किया। इन लोगों का उद्देश्य इटली की एकता के नाम पर जन-विद्रोह शुरू करना और इटली को स्वतंत्र पूंजीवादी जनतंत्र घोषित करना था। सैवोय में दाख़िल हुई टुकड़ी प्येमां के सैनिकों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दी गई। – पृ० २१८

[135] "**डिमागोग**" – जर्मनी में १८१९ के बाद यह शब्द जर्मन बुद्धिजीवियों के बीच विरोध आंदोलन में भाग लेनेवालों के लिये प्रयुक्त हुआ। इन लोगों ने जर्मन राज्यों की प्रतिक्रियावादी राजनीतिक व्यवस्था का खुलकर विरोध तथा जर्मनी के एकीकरण का समर्थन किया। अधिकारियों ने "डिमागोगों" का निर्मम दमन किया। – पृ० २१८

[136] यहां इशारा लंदन के "**जर्मन मजदूर शिक्षा संघ**" की ओर है, जिसे कार्ल शापर, जोज़ेफ़ मोल तथा "न्यायप्रियों की लीग" के अन्य नेताओं ने १८४० में स्थापित किया था। इसका कार्यालय ग्रेट विंडमिल स्ट्रीट पर था। १८४९–१८५० में मार्क्स और एंगेल्स ने इस संघ के क्रियाकलाप में सक्रिय भाग लिया। परंतु १७ सितंबर १८५० को मार्क्स, एंगेल्स और उनके अनुयायियों ने समाज से संबंध-विच्छेद कर लिया, क्योंकि उसके सदस्यों की एक बड़ी संख्या ने विलिख़ – शापर के संकीर्णतावादी तथा जोखिमबाज़ दल का पक्ष लिया था। १८६४ में इंटरनेशनल की स्थापना होने पर यह संघ लंदन में अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ की जर्मन शाखा बन गया। लंदन शिक्षा संघ का अस्तित्व १९१८ तक क़ायम रहा, जब उसे ब्रिटिश सरकार ने बंद कर दिया। – पृ० २१९

[137] «*The Northern Star*» – १८३७ में स्थापित एक अंग्रेज़ी साप्ताहिक, जो चार्टिस्ट आंदोलन का मुखपत्र था। १८४४ तक वह लीड्स से निकलता रहा और फिर नवम्बर १८४४ से १८५२ तक लंदन से। एफ़० ओ' कोनर उसके संस्थापक तथा संपादक थे। हार्नी भी इस पत्र के संपादकमंडल में थे। १८४३ और १८५० के बीच इसमें एंगेल्स के लेख निकला करते थे। – पृ० २२४

[138] **जनवादी समाज** – १८४७ की पतझड़ में ब्रसेल्स में स्थापित इस समाज के सदस्य सर्वहारा क्रांतिकारियों, मुख्यतः जर्मनी के सर्वहारा क्रांतिकारी उत्प्रवासियों,

नाम-निर्देशिका

अ

आ

[143] मार्क्स की रचना 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन' के १८८५ के संस्करण में, जिसमें एंगेल्स का प्रस्तुत लेख भूमिका के रूप में दिया गया है, उन्होंने कुछ परिशिष्ट भी शामिल किये, जिनमें कम्युनिस्ट लीग के नाम केन्द्रीय समिति की मार्च और जून १८५० की चिट्ठियां भी थीं। —पृ० २३३

[144] Sonderbund—एक विद्रूपात्मक नाम, जो मार्क्स और एंगेल्स ने विलिख़-शापर के संकीर्णतावादी तथा जोखिमबाज़ दल को दिया। यह नाम उन्हें १६वीं शताब्दी के पांचवें दशक में स्विट्ज़रलैंड के प्रतिक्रियावादी कैथोलिक कैंटनों (ज़िलों) के पृथक् संघ के नमूने पर दिया गया था। इस दल ने, जो फूट पड़ने के बाद कम्युनिस्ट लीग से अलग हो गया, अपना अलग संगठन बनाया, जिसकी अपनी केंद्रीय समिति थी। अपने क्रियाकलाप के सिलसिले में उसने प्रशा की पुलिस को जर्मनी में कम्युनिस्ट लीग की ग़ैरक़ानूनी शाखाओं का सुराग़ लगाने में मदद पहुंचायी और १८५२ में कोलोन में कम्युनिस्ट लीग के प्रमुख नेताओं पर चलाये गये मुक़दमे में उनके ख़िलाफ़ सबूत गढ़ने के लिए उसे मसाला दिया। —पृ० २३६

इ

इक्कैरियस (Eccarius), जोहान गेओर्ग (१८१८–१८८६) – जर्मन दर्ज़ी, अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के मशहूर नेता, न्याय-संघ के और बाद में कम्युनिस्ट लीग के सदस्य; पहले इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य; कालान्तर में ब्रिटेन के ट्रेड-यूनियन आंदोलन में भाग लिया। – २२६।

ए

एंगेल्स (Engels), फ़्रेडरिक (१८२०–१८९५)। – ७, ८, ९, ३३, ३८, ३९, ४१–४४, ६६, ६८, ९३, ९४, ११३, ११५–११७, १२०, २०४, १३३–१३५।

एपीक्यूरस (Epicurus) (अनुमानतः ३४१–२७० ई० पू०) – प्राचीन यूनान के विख्यात भौतिकवादी दार्शनिक, निरीश्वरवादी। – ७०।

एर्हार्ड (Ehrhardt), जोहान लुडविग अल्बर्ट (जन्म १८२०) – जर्मन वाणिज्य-लिपिक, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे (१८५२) में फंसाये जाने वाले लोगों में से एक। – २३६।

एल्सनेर (Elsner), कार्ल फ़्रेडरिक मोरिज़ (१८०९–१८९४) – सिलेशिया के पत्रकार और राजनीतिक कार्यकर्ता, उग्रवादी; १८४८ में प्रशियाई राष्ट्रीय सभा के सदस्य, वामपंथी; छठे दशक में *«Neue Oder-Zeitung»* के एक संपादक। – २११।

एवरबेक (Ewerbeck), अगस्त हर्मन (१८१६–१८६०) – जर्मन चिकित्सक तथा लेखक, न्यायसंघ की पेरिस की शाखाओं के नेता; बाद में कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, जिसे उन्होंने १८५० में छोड़ दिया। – २२४, २३५।

ओ

ओकेन (Oken), लोरेन्ज़ (१७७९–१८५१) – जर्मन प्रकृति विज्ञान तथा प्रकृति दर्शन के प्रतिनिधि। – ५५।

ओटो (Otto), कार्ल वुनिबाल्ड (जन्म लगभग १८०९) – जर्मन रसायन विज्ञानी, कोलोन के लेबर लीग के सदस्य (१८४८–१८४९) तथा कम्युनिस्ट लीग के

ट

टामसन (Thomson), विलियम (१८९२ से लार्ड केलविन) (१८२४–१९०७) – विख्यात अंग्रेज़ भौतिक विज्ञानी, ऊष्मागति विज्ञान, बिजली इंजीनियरी तथा गणितीय भौतिकी के क्षेत्र में काम किया; १८५२ में उन्होंने "विश्व की ताप-मृत्यु" का भाववादी प्रमेय प्रतिपादित किया। – ८२।

टोलेमी (Ptolomy), क्लाडियस (दूसरी शताब्दी) – प्राचीन यूनान के गणितज्ञ, खगोलशास्त्री तथा भूगोलशास्त्री, सूर्यकेंद्रीय सिद्धान्त के प्रणेता। – ४८।

ड

डंस स्कॉट (Duns Scotus), जोहान (लगभग १२६५–१३०८) – अंग्रेज़ वितंडावादी दार्शनिक, मध्ययुग में भौतिकवाद के प्रथम रूप, नामवाद के प्रतिनिधि; 'आक्सफ़ोर्ड' नामक पुस्तक के रचयिता। – ११७।

डाडवेल (Dodwell), हेनरी (मृत्यु १७८४) – अंग्रेज़ भौतिकवादी दार्शनिक। – ११९।

डायोजेनिज़ लाएर्तियस (तीसरी शताब्दी) – दर्शन के यूनानी इतिहासकार, पुराने दार्शनिकों के बारे में बड़ी संदर्भ-पुस्तक के लेखक। – ७०।

डार्विन (Darwin), चार्ल्स रॉबर्ट (१८०९–१८८२) – महान अंग्रेज़ विज्ञानी, विकास जीवविज्ञान के प्रवर्त्तक। – ५६, ६०, ७७, ८५, ११५, १६०, १७४, २०२।

डाल्टन (Dalton), जॉन (१७६६–१८४४) – अंग्रेज़ रसायनशास्त्री तथा भौतिकीविद, जिन्होंने रसायन के क्षेत्र में परमाणु संबंधी विचारों को विकसित किया। – ५४, ७०।

डिसरायली (Disraeli), बेंजामिन, लार्ड बेकनफ़ील्ड (१८०४–१८८१) – अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ तथा लेखक, कन्ज़रवेटिव पार्टी के नेता, प्रधानमंत्री (१८६८ तथा १८७४–१८८०)। – १३६।

डुंकेर (Dunker), फ़्रांज़ (१८२२–१८८८) – जर्मन पूंजीवादी राजनीतिज्ञ तथा प्रकाशक। – ९७।

डेमोक्राइटस (अनुमानत: ४६०–३७० ई० पू०) – प्राचीन यूनान के भौतिकवादी दार्शनिक; परमाणुवाद के प्रवर्त्तक। – ७०, ११८।

ग्लैडस्टन (Gladstone), विलियम एवर्ट (१८०९–१८९८)—अंग्रेज राजनीतिज्ञ, १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में लिबरल पार्टी के नेता, वित्तमंत्री (१८५२–१८५५ तथा १८५९–१८६६) तथा प्रधानमंत्री (१८६८–१८७४; १८८०–१८८५; १८८६, १८९२–१८९४)।–२९।

च

चार्ल्स प्रथम (Charles I), (१६००–१६४९)—ग्रेट ब्रिटेन के राजा (१६२५–१६४९), इंगलैंड की १७वीं शताब्दी की पूंजीवादी क्रांति के दौरान फांसी पर लटका दिये गये।–१२७।

ज

जसूलिच, वेरा इवानोव्ना (१८५१–१९१९)—रूस में नरोदनिक और बाद में सामाजिक-जनवादी आंदोलन की प्रमुख नेत्री, मार्क्सवादी "श्रम मुक्ति दल" की सक्रिय सदस्या, बाद में मेन्शेविक दल में शामिल हो गयीं।–१९०।

जिफ़ेन (Giffen), रॉबर्ट (१८३७–१९१०)—अंग्रेज पूंजीवादी अर्थशास्त्री और सांख्यिकीविद, वित्तीय मामलों के विशेषज्ञ, व्यापार मन्त्रालय के सांख्यिकी विभाग के अध्यक्ष (१८७६–१८९७)।–१८६।

जूल (Joulle), जेम्स प्रेस्काट (१८१८–१८८९)—अंग्रेज भौतिक विज्ञानी, विद्युत-चुम्बकत्व तथा ताप का अध्ययन किया।–५४।

जैकोबी (Jacobi), अब्राहम (१८३०–१९१९)—जर्मन चिकित्सक, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे (१८५२) में फंसाये गये लोगों में एक; १८५३ में इंगलैंड और बाद में संयुक्त राज्य अमरीका में उत्प्रवासी, अमरीकी अख़बारों में मार्क्सवादी विचारों का प्रचार किया; अमरीकी गृह-युद्ध में उत्तर अमरीका की ओर से भाग लिया; अनेक चिकित्सा-संस्थानों के प्राध्यापक तथा अध्यक्ष; चिकित्सा संबंधी अनेक पुस्तकों के रचयिता।–२३६।

जोहान (Johann), (फ़िलेलीथीस) (१८०१–१८७३)—सैक्सनी के राजा (१८५४–१८७३), दान्ते की कृतियों के अनुवादक।–९२।

दार्शनिक, यांत्रिक भौतिकवादी, फ़्रांस के क्रांतिकारी पूंजीपति वर्ग के एक सिद्धांतकार, विश्वकोशकारों के प्रधान। – १५७।

दीत्स (Diets), जोहान हेनरिक विल्हेल्म (१८४३–१९२२) – जर्मन सामाजिक-जनवादी, एक सामाजिक-जनवादी प्रकाशन गृह के संस्थापक, १८८१ से राइख़स्टाग के सदस्य। – ४२, ४४।

दूरेर (Dürer), अल्ब्रेख़्त (१४७१–१५२८) – पुनर्जागरण-काल के जर्मन चित्रकार। – ४६।

देकार्त (Descartes), रेने (१५९६–१६५०) – फ़्रांस के महान् द्वैतवादी दार्शनिक, गणितज्ञ तथा प्रकृतिविज्ञानी। – ४८, ५४, ७०, १५६।

देप्रे (Deprez), मरसैल (१८४३–१९१८) – फ़्रांसीसी भौतिक-विज्ञानी, बिजली-इंजीनियर, जिन्होंने बिजली के दूर-प्रेषण की समस्या के संबंध में कार्य किया। – २०३।

दोल्लेशाल (Dolleschall), लारेन्ज़ (जन्म १७९०) – कोलोन का पुलिस अफ़सर (१८१९–१८४७); *«Rheinische Zeitung»* ('राइनी समाचारपत्र') का सेंसर अधिकारी। – ९२।

न

नेगेली (Nägeli), कार्ल विल्हेल्म (१८१७–१८९१) – विख्यात जर्मन वनस्पतिविज्ञानी, डार्विनवाद-विरोधी, अज्ञेयवादी और अधिभूतवादी। – ६८।

नेपियर (Napier), जॉन (१५५०–१६१७) – स्काटलैंड के गणितज्ञ, लघुगणक (लागेरिथ्म) के आविष्कारक। – ४८।

नेपोलियन (Napoleon), प्रिंस – देखें बोनापार्त, नेपोलियन जोज़ेफ़ शार्ल पोल।

नेपोलियन प्रथम, बोनापार्त (Napoleon I, Bonaparte) (१७६९–१८२१) – फ़्रांस के सम्राट (१८०४–१८१४ तथा १८१५)। – १२१, १४५, १४७, १५३, १७९, २०८, २०९।

नेपोलियन तृतीय (Napoleon III) (लूई नेपोलियन बोनापार्त) (१८०८–१८७३) – नेपोलियन प्रथम के भतीजे, दूसरे जनतंत्र के राष्ट्रपति (१८४८–१८५१), फ़्रांसीसी सम्राट (१८५२–१८७०)। – २८, ९७।

नौथयुंग (Nothjung), पीटर (१८२१–१८६६) – जर्मन दर्ज़ी, कोलोन मज़दूर लीग तथा कम्युनिस्ट लीग के सदस्य; कोलोन में जिन कम्युनिस्टों पर झूठा मुक़दमा चलाया गया, उनमें से एक। – २३५, २३६।

त

थ

द

के तथा पहले इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य (१८६४–१८६७ तथा १८७०–१८७२); मार्क्स तथा एंगेल्स के मित्र तथा सहकर्मी।–२२६।

फ़ोग्ट (Vogt), कार्ल (१८१७–१८९५)–जर्मन प्रकृतिविद, भोंडा भौतिकवादी, निम्नपूंजीवादी जनवादी; जर्मनी में १८४८–१८४९ की क्रान्ति में भाग लिया; छठे तथा सातवें दशक में उत्प्रवास के दौरान लूई बोनापार्त के वेतनभोगी एजेंट।–७०, ७१, ७६।

फ़ोर्स्टर (Forster), विलियम एडवर्ड (१८१८–१८८६)–अंग्रेज़ कारख़ानेदार और राजनीतिज्ञ, उदारपंथी, पार्लमेंट के सदस्य, आयरलैंड के लिए सेक्रेटरी आफ़ स्टेट (१८८०–१८८२); राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के निर्मम दबाव की नीति चलायी।–१३४, १३६।

फ़्रेडरिक-विल्हेल्म तृतीय (Friedrich-Willhelm III) (१७७०–१८४०)–प्रशा के राजा (१७९७–१८४०)।–९२, १८०।

फ़्रैलिगराथ (Freiligrath), फ़र्दीनांद (१८१०–१८७६)–जर्मन कवि, पहले रोमांसवादी और फिर क्रांतिकारी कवि; १८४८–१८४९ में *«Neue Rheinische Zeitung»* ('नया राइनी समाचारपत्र') के एक संपादक, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य। १९ वीं शताब्दी के छठे दशक में क्रांतिकारी संघर्ष को छोड़कर अलग हो गये।–२३६।

फ़्लोकोन (Flocon), फ़र्दीनांद (१८००–१८६६)–फ़्रांसीसी राजनीतिज्ञ, निम्नपूंजीवादी जनवादी, *«Réforme»* अख़बार के एक संपादक, १८४८ में अस्थायी सरकार के सदस्य।–९४, २३०।

ब

बकलैंड (Buckland), विलियम (१७८४–१८५६)–अंग्रेज़ भूविज्ञानी और पादरी, जिन्होंने अपनी कृतियों में भूवैज्ञानिक तथ्यों और इंजील की कल्पनाओं के बीच संगति बैठाने की कोशिश की।–१२०।

बकूनिन, मिख़ाइल अलेक्सान्द्रोविच (१८१४–१८७६)–रूसी जनवादी, पत्रकार, जर्मनी की १८४८–१८४९ की क्रांति में भाग लिया; अराजकतावाद के एक सिद्धांतकार; पहले इंटरनेशनल में मार्क्सवाद के कट्टर विरोधी; १८७२ में हेग कांग्रेस में अपनी फूट डालनेवाली नीति के कारण इंटरनेशनल से निकाल दिये गये।–८, ६, ३८।

न्यूटन (Newton), आइज़क (१६४२–१७२७) – महान अंग्रेज़ भौतिकशास्त्री, नक्षत्रविज्ञानी तथा गणितशास्त्री, क्लासिकीय यांत्रिकी के जन्मदाता। – ४८, ५०, १६१, १६३।

प

पागानीनी (Paganini), निकोलो (१७८२–१८४०) – इटली के महान् वायलिन-वादक तथा संगीतकार। – ७९।

पामर्स्टन (Palmerston), हेनरी जॉन **टेम्प्ल**, वाइस्काउंट (१७८४–१८६५) – ब्रिटेन के टोरी दल के नेता; १८३० से ह्विग दल के नेता; विदेश मंत्री (१८३०–१८३४, १८३५–१८४१ तथा १८४६–१८५१), गृहमंत्री (१८५२–१८५५) तथा प्रधान मंत्री (१८५५–१८५८ तथा १८५९–१८६५)। – ६६।

प्रीस्टले (Priestley), जोज़ेफ़ (१७३३–१८०४) – प्रसिद्ध अंग्रेज़ रसायनज्ञ, भौतिकवादी दार्शनिक तथा प्रगतिशील जन-नेता। – ७५, ११६।

प्रूदों (Proudhon), पियेर जोज़ेफ़ (१८०९–१८६५) – फ़्रांसीसी पत्रकार, अर्थशास्त्री, समाजशास्त्री, निम्नपूंजीवादी विचारधारा के निरूपक तथा अराजकतावाद के एक प्रवर्त्तक, १८४८ में संविधान सभा के प्रतिनिधि। – ३७, ६३, १५५, २३१।

फ

फ़ायरबाख़ (Feuerbach), लुड्विग (१८०४–१८७२) – मार्क्स से पहले के महान जर्मन भौतिकवादी दार्शनिक। – ७४।

फ़िशर (Fischer), रिहार्ड (१८५५–१९२६) – जर्मन सामाजिक-जनवादी, सामाजिक-जनवादी पार्टी के बोर्ड के सचिव (१८९०–१८९३), पार्टी के प्रकाशनगृह के संचालक (१८९३–१९०३)। – ४४।

फ़ुरिये (Fourier), शार्ल (१७७२–१८३७) – फ़्रांस के महान कल्पनावादी समाजवादी। – ७५, १४३, १४६, १५०, १५१, १७४, १७७, १७८।

फ़ैन्डर (Pfänder), कार्ल (१८१८–१८७६) – जर्मन तथा अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के एक नेता; कलाकार; लंदन में उत्प्रवासी (१८४५ से), लंदन में जर्मन मज़दूर शिक्षा संघ के सदस्य, कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति

के मिनिस्टर-प्रेज़िडेंट (१८६२–१८७१), जर्मन साम्राज्य के चांसलेर (१८७१–१८६०)।– २१, २२, ४०, ४४, १०८, १७६, १८०, २३७।

बुख़नर (Büchner), गेओर्ग (१८१३–१८३७) – जर्मन लेखक, क्रांतिकारी जनवादी, १८३४ में हेसन में मानव-अधिकार समाज नामक गुप्त संस्था के एक संगठनकर्त्ता तथा 'हेसन के किसानों के नाम अपील' के रचयिता; इस अपील का मूलमंत्र था: "झुग्गीझोंपड़ियों के लिए शांति, महलों के ख़िलाफ़ लड़ाई!" – २१८।

बुख़नर (Büchner), लुडविग (१८२४–१८६६) – जर्मन पूंजीवादी शरीरक्रियाविज्ञानी, भोंडा अर्थशास्त्री।– ७०, ७१।

बुजार (Bougeart), अलफ़्रेद (१८१५–१८८२) – फ़्रांसीसी पत्रकार, १८ वीं शताब्दी के अंत में हुई फ़्रांसीसी पूंजीवादी क्रांति के इतिहास के विषय में अनेक रचनाओं के लेखक।– २१२।

बुशे (Buchez), फ़िलिप (१७६६–१८६५) – फ़्रांसीसी राजनीतिज्ञ तथा इतिहासकार, पूंजीवादी जनतंत्रवादी, ईसाई समाजवाद के एक सिद्धांतकार।– २५, ३६।

बेकन दे वेरुलम (Bacon de Verulam), फ़्रांसिस (१५६१–१६२६) – महान अंग्रेज दार्शनिक, आंग्ल भौतिकवाद के जन्मदाता।– ७२, ७३, ११७–१२०, १५८।

बेकर (Becker), अगस्त (१८१४–१८७१) – जर्मन लेखक और पत्रकार, वाइटलिंग के समर्थक; स्विट्ज़रलैंड में न्याय-संघ के सदस्य; जर्मनी में १८४८–१८४६ की क्रान्ति में भाग लिया; १६ वीं शताब्दी के छठे दशक के आरंभ में अमरीका में उत्प्रवासी। वहां जनवादी समाचारपत्रों के लिए लेख लिखते रहे।– २१६।

बेकर (Becker), बर्नहार्ड (१८२६–१८६१) – जर्मन पत्रकार, लासालपंथी, जर्मन मज़दूरों की आम संस्था के अध्यक्ष (१८६४–१८६५)।– १०।

बेकर (Becker), हर्मन हेनरिक (१८२०–१८८५) – जर्मन क़ानूनवेत्ता और पत्रकार, १८५० के बाद कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, कोलोन के कम्युनिस्टों के मुक़दमे (१८५२) में अभियुक्तों में से एक; बाद में सामाजिक-उदारतावादी।– २३६।

बेबेल (Bebel), अगस्त (१८४०–१६१३) – जर्मन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के एक प्रसिद्ध नेता, १८६७ से जर्मन मज़दूर संघों की लीग के

बर्गर्स (Bürgers), हेनरिक (१८२०–१८७८) – जर्मन उग्रवादी पत्रकार, १८४२–१८४३ में *«Rheinische Zeitung»* ('राइनी समाचारपत्र') के लिए लिखते रहे, *«Neue Rheinische Zeitung»* ('नया राइनी समाचारपत्र') का संपादन किया; १८५० से कम्युनिस्ट लीग की केंद्रीय समिति के सदस्य, १८५२ में कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे में अभियुक्त; बाद में प्रगतिवादी। – २०८, २३५।

बर्न्सटीन (Börnstein), अर्नोल्ड बर्नहार्द कार्ल (१८०८–१८४९) – जर्मन निम्नपूंजीवादी-जनवादी, पेरिस में जर्मन उत्प्रवासियों के वालंटियर कोर के एक नेता, जिसने अप्रैल १८४८ में बेडेन के विद्रोह में भाग लिया। – २३०।

बर्न्सटीन (Bernstein), एडुअर्ड (१८५०–१९३२) – जर्मन सामाजिक-जनवादी, पत्रकार, *«Sozialdemokrat»* समाचारपत्र के संपादक (१८८१–१८९०); १८८९ और १८९३ की अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी मज़दूर कांग्रेसों में प्रतिनिधि; एंगेल्स की मृत्यु के पश्चात् सुधारवादी दृष्टिकोण से मार्क्सवाद के संशोधन की खुल्लमखुल्ला हिमायत की। – १०५।

बाब्योफ़ (Babeuf), ग्राख़ (असल नाम फ़्रांसुआ **नायल**) (१७६०–१७९७) – फ़्रांस के क्रांतिकारी, कल्पनावादी समतावादी कम्युनिस्ट, "बराबरों" की साज़िश के एक संगठनकर्ता। – १४३।

बायर (Baer), कार्ल एर्न्स्ट (कार्ल मक्सिमोविच) (१७९२–१८७६) – विख्यात रूसी प्रकृतिविज्ञानी, भ्रूण विज्ञान के प्रवर्त्तक; जर्मनी और रूस में काम किया। – ५५।

बार्बेस (Barbès), आर्मान (१८०९–१८७०) – फ़्रांसीसी क्रांतिकारी, निम्नपूंजीवादी जनवादी, १८४८ की क्रांति में सक्रिय भाग लिया, १५ मई १८४८ की घटनाओं में भाग लेने के लिए आजीवन कारावास मिला, १८५४ में क्षमादान। – २१७।

बावेर (Bauer), ब्रूनो (१८०९–१८८२) – जर्मनी के भाववादी दार्शनिक, विख्यात "तरुण हेगेलपंथी"; पूंजीवादी आमूलपरिवर्तनवादी; १८६६ के बाद राष्ट्रीय उदारतावादी। – ९३।

बावेर (Bauer), हेनरिक – जर्मन मज़दूर आंदोलन के मशहूर नेता; न्याय-संघ के नेता, कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति के सदस्य। १८५१ में आस्ट्रेलिया में उत्प्रवासी। – २१७, २१८, २२९, २३३, २३५।

बिस्मार्क (Bismarck), ओटो, प्रिंस (१८१५–१८९८) – प्रशा तथा जर्मनी के राजनीतिज्ञ तथा कूटनीतिज्ञ, प्रशा के ज़मींदारों के हितों के पक्षधर, प्रशा

र

रिकार्डो (Ricardo), डेविड (१७७२–१८२३) – अंग्रेज़ अर्थशास्त्री, क्लासिकीय पूंजीवादी राजनीतिक अर्थशास्त्र के एक प्रमुख प्रतिनिधि। – ३६।

रूगे (Ruge), आर्नोल्ड (१८०२–१८८०) – जर्मन पत्रकार, "तरुण हेगेलपंथी"; पूंजीवादी उग्रवादी; फ़्रैंकफ़ुर्ट की राष्ट्रीय सभा के वामपंथी सदस्य (१८४८); छठे दशक में इंगलैंड में जर्मन निम्न-पूंजीवादी उत्प्रवासियों के एक नेता; १८६६ के बाद राष्ट्रीय उदारतावादी। – ९३, २३४।

रूसो (Rousseau), जान जाक (१७१२–१७७८) – फ़्रांस के विख्यात ज्ञानप्रसारक, निम्नपूंजीवादी विचारधारा के निरूपक। – १२, १४२, १४५, १५७।

रेनां (Renan), एर्न्स्ट (१८२३–१८९२) – फ़्रांस के भाषा-विज्ञानी तथा ईसाई धर्म के इतिहासकार, भाववादी दार्शनिक। – २३२।

रैफ़ (Reiff), विल्हेल्म जोज़ेफ़ (जन्म १८२४) – कोलोन लेबर लीग तथा कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, १८५० में कम्युनिस्ट लीग से निकाले गये; कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे (१८५२) में फंसाये गये लोगों में से एक। – २३६।

रोज़र (Röser), पीटर गेर्हार्ड (१८१४–१८६५) – जर्मनी के मज़दूर आंदोलन में सक्रिय रहे, कोलोन लेबर लीग के उपाध्यक्ष (१८४८–१८४९); कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे (१८५२) में फंसाये गये लोगों में से एक; बाद में लासालपंथियों से मिल गये। – २३५।

ल

लफ़ार्ग (Lafargue) पाल (१८४२–१९११) – अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन की एक प्रमुख हस्ती, मार्क्सवाद के प्रचारक, इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य, स्पेन के लिए सह-सचिव (१८६६–१८६९); फ़्रांस में (१८६९–१८७०) और स्पेन तथा पुर्तगाल में (१८७१–१८७२) इंटरनेशनल की शाखाएं संगठित करने में सक्रिय भाग लिया; हेग कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि (१८७२); फ़्रांस में मज़दूर पार्टी के संस्थापकों में से एक; मार्क्स तथा एंगेल्स के शिष्य तथा सहयोगी। – ११५।

लांगे (Lange) फ़्रेडरिक अलबर्ट (१८२८–१८७५) – जर्मन पूंजीवादी दार्शनिक, नवकांटवादी, भौतिकवाद तथा समाजवाद के विरोधी। – २३।

पहले इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य; मार्क्स और एंगेल्स के मित्र तथा सहकर्मी। – २२६।

ल्युसिप्पस (५वीं सदी ई० पू०) – प्रसिद्ध यूनानी भौतिकवादी दर्शनशास्त्री, परमाणविक सिद्धांत के जनक। – ७०।

ल्येल (Lyell), चार्ल्स (१७९७–१८७५) – विख्यात अंग्रेज भूवैज्ञानिक। – ५३।

व

वाइटलिंग (Weitling), विल्हेल्म (१८०८–१८७१) – जर्मन मज़दूर आन्दोलन के प्रारम्भिक काल के विख्यात नेता, कल्पनावादी समतावादी कम्युनिज़्म के सिद्धांतकार। – १५५, २१९, २२०, २२१, २२२, २२५, २३३, २३५।

वाट (Watt), जेम्स (१७३६–१८१९) – स्काटलैंड के महान् इंजीनियर, भाप के आधुनिक संघनन-इंजन के आविष्कारक। – १३२।

विक्टोरिया (Victoria) (१८१९–१९०१) – ब्रिटेन की महारानी (१८३७–१९०१)। – १५४।

विर्खोव (Wirchow), रुडोल्फ़ (१८२१–१९०२) – विख्यात जर्मन प्रकृति-विज्ञानी और पूंजीवादी राजनीतिज्ञ; डार्विनवाद-विरोधी। – ६८।

विलिख (Willich), अगस्त (१८१०–१८७८) – प्रशा के एक अफ़सर, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, १८४९ में बाडेन-फ़ाल्ज़ विद्रोह में भाग लिया; १८५० में जो संकीर्णतावादी-दुस्साहसिकतावादी दल कम्युनिस्ट लीग से अलग हुआ था, उसके एक नेता; १८५३ में अमरीका में बस गये, अमरीकी गृहयुद्ध में उत्तर की ओर से भाग लिया। – २१५, २३२, २३३, २३४, २३६।

वेनेडे (Venedey), जैकोब (१८०५–१८७१) – जर्मन आमूलपरिवर्तनवादी पत्रकार तथा राजनीतिज्ञ, उदारतावादी। – २१७।

वेर्मुथ (Wermuth) – हैनोवेर के पुलिस डायरेक्टर, कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे (१८५२) में गवाह; श्तीबर के साथ 'उन्नीसवीं शताब्दी के कम्युनिस्ट षड्यंत्र' के लेखक। – २१६, २२७।

वेस्तफ़ालेन (Westphalen), फ़र्दीनांद, फ़ॉन (१७९९–१८७६) – प्रशा के प्रतिक्रियावादी राजनीतिज्ञ, गृहमंत्री (१८५०–१८५८), जेनी मार्क्स के सौतेले भाई। – ९३।

स

वोल्फ़ (Wolff), कैस्पर फ़्रेडरिक (१७३३–१७६४) – विख्यात प्रकृति-विज्ञानी, जीव-विकास के सिद्धान्त के एक प्रवर्त्तक, जर्मनी और रूस में काम किया। – ५५।

वोल्फ़ (Wolff), क्रिस्टियन (१६७६–१७५४) – जर्मनी के भाववादी दार्शनिक, अधिभूतवादी। – ५०, ७२।

वोल्फ़ (Wolff), विल्हेल्म (१८०६–१८६४) – जर्मनी के सर्वहारा क्रान्तिकारी, मार्च १८४८ से कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति के सदस्य, १८४८–१८४६ में «*Neue Rheinische Zeitung*» के एक सम्पादक, फ़्रैंकफ़ुर्ट राष्ट्रीय सभा के सदस्य, बाद में इंगलैंड चले गये; मार्क्स तथा एंगेल्स के सहयोगी। – २१३, २१५, २२७, २२६, २३१।

श

शापर (Schapper), कार्ल (१८१२–१८७०) – जर्मन तथा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के विख्यात कार्यकर्ता, न्याय-संघ के नेता, कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति के सदस्य, जर्मनी में १८४८–१८४६ की क्रांति में भाग लिया, १८५० में कम्युनिस्ट लीग में फूट पड़ने के समय संकीर्णतावादी-दुस्साहसिकतावादी दल के एक नेता, १८५६ से मार्क्स के सहयोगी, पहले इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य। – २१७, २१८, २२४, २२६, २३२, २३४, २३६।

शुर्ज (Schurz), कार्ल (१८२६–१६०६) – जर्मन निम्न-पूंजीवादी जनवादी, १८४६ के बाडेन-फ़ाल्ज़ विद्रोह में भाग लिया, स्विट्ज़रलैंड में उत्प्रवासी; बाद में संयुक्त राज्य अमरीका के राजनीतिज्ञ। – २३४।

शुल्ज़े-डेलिच (Schulze-Delitzsch), फ़ांज़ हर्मन (१८०८–१८८३) – जर्मन राजनीतिज्ञ तथा पूंजीवादी भोंडे अर्थशास्त्र के प्रतिनिधि; प्रशा की राष्ट्रीय सभा के सदस्य (१८४८); सातवें दशक में पूंजीवादी प्रगतिवादी पार्टी के नेता; सहकारी समितियां संगठित कर मज़दूरों को क्रान्तिकारी संघर्ष से भटकाने का प्रयास किया। – २११।

शैफ़्ट्सबरी (Shaftesbury), एन्टनी, काउंट (१६७१–१७१३) – अंग्रेज़ दार्शनिक, नीतिशास्त्री, निर्गुणवाद के प्रमुख निरूपक तथा व्याख्याकार; व्हिग दल के नेता। – १२६।

ह

साहित्यिक और पौराणिक पात्रों की सूची

एरियाद्‌ने (यूनानी पुराण) – क्रीट के राजा मीनोस की कन्या, जिसकी सहायता से थीसियस उस भूलभुलैयां से निकल सका, जहां उसने मीनोटार नामक राक्षस का वध किया। – ५५।

प्रोमीथियस (यूनानी पुराण) – अतिमानवों में एक, जिसने देवताओं से अग्नि चुरायी और उसे जनसाधारण को सौंप दिया, जिसके लिए उसे भीषण दंड दिया गया, उसे ज़ंजीर से एक चट्टान के साथ बांध दिया गया, जहां हर रोज़ एक गिद्ध आकर उसकी बोटी नोचता था। – १७५।

वलकन (यूनानी पुराण) – अग्नि देवता, लोहारों का आराध्य देव। – १७५।

शाइलाक – शेक्सपियर के नाटक, 'वेनिस का व्यापारी' का पात्र; लोलुप सूदख़ोर, जिसने मांग की कि उसका क़र्ज़दार, जिसने वादे पर रुपया नहीं चुकाया था, अपने शरीर का एक पौंड गोश्त देकर क़र्ज़ की शर्त्त पूरी करे। – ३६।

सिंड्रेला – अनेक जातियों के बीच प्रचलित एक परी कहानी की नायिका, जो सलज्ज, उद्यमी लड़की के चरित्र का मूर्तिमान रूप है। – २२०।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर आपका अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। कृपया हमें इस पते पर लिखिये :

प्रगति प्रकाशन,
२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।